श्रीजवाहिर स्मारक साहित्य

का

प्रथम पुष्प

(श्री मज्जैनाचार्य पूज्य श्रीजवाहिराचार्य के व्याख्यानों में से)

★

जवाहिर-किरणावली

की

किरण ७ वीं

सम्पादक

(श्रीजवाहिर स्मारक फंड तरफ से)

पं. पूर्णचन्द्र दक न्यायतीर्थ

प्रकाशक

श्री जैन साधुमार्गी

पूज्य श्रीहुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय

का

श्री जैन हितेच्छु श्रावक मंडल ऑफिस

रतलाम—मालवा

मुद्रक

राधाकृष्ण बालमुकुन्द शर्मा

अध्यक्ष-श्री शारदा प्रिन्टिंग प्रेस, रंगरेज़-रोड़ रतलाम

प्रथमावृत्ति १००० | मूल्य १॥) | वि संवत् २००३

* श्री *

किञ्चिद् वक्तव्य



पानी ऐसा पदार्थ है जिसपर किसी का एकाधिपत्य नहीं हो सकता वह सबके अधिकारकी उपयोगी वस्तु है। फिरभी जो उसे संग्रह करता या उसके संग्रहार्थ खर्च व परिश्रम ऊठाता है वह व्यक्ति व्यवहार में उस संग्राहित पानी का अधिकारी बन जाता है उस भोग या उपभोग रूप उपयोग से कोई इन्कार नहीं कर सकता तदनुसार महापुरुषों के आप्त वचनामृत या उनकी उपदेशमयी वाणी पर किसी का एकाधिकार नहीं हो सकता। महापुरुषों की वाणी सर्वदा सबके लिये ही होती है। वे किसी खास जाति व्यक्ति या देश को सम्बोधन करके कोई वचन नहीं निकालते। पानी की तरह उनकी वाणी सर्वोपयोगी और जीवनदायिनी है फिर उस प्रवचनरूप वाणी का जो व्यक्ति संग्रह नहीं करताहै परिश्रम नहीं उठाताहै या खर्च करनेसे हाथ खिंचता है वह अनन्तर चाहे लाभ उठाले परम्पर में लाभ नहीं उठा सकता किन्तु जो संग्रह कर लेता है वही उससे अनन्तर एवं परम्पर दोनों लाभ ऊठाता है इतना ही नहीं उससे अन्य स्थान की जनता और भविष्य की प्रजा भी लाभ उठाती है।

आज जैन समाज या जैन धर्म का जो अस्तित्व है और संसार की धर्म क्रांतियों में से गुजरकर टिक रहा है वह इसके संग्राहित साहित्य के बल पर ही। जैन दर्शन के मूलभूत सिद्धान्त द्वादशांगी में से दृष्टिवाद का संग्रह नहीं होसका इससे वह विच्छेद हो गया है और एकादश अंग जो श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के समय में संग्राहित कर लिये गये वे आज भी जैन धर्म एवं जैन समाज को टिकाये रखने में आधारभूत बन रहे हैं और भविष्य में भी टीकाकार रखने में समर्थ बनेंगे।

सूत्रों में अंग सूत्रों के लिये जो वर्णन किया गया है आज उतने अंश में पूर्ण रूपेण उपलब्ध न भी हो परन्तु जो संग्रह हुवा है जैन समाज के ही लिये नहीं समस्त मानव समाज के लिये एवं प्राणी मात्र के लिये उपकारक सिद्ध हुवा है।

भगवान महावीर के शासन में समय २ पर अनेक ज्योतिर्धर महापुरुष हुए है उन्होंने जो प्रवचन किये है वे उस समय अद्भुत चमत्कारिक एवं प्रभावोत्पादक माने जाते थे परन्तु वे तत्सामयिक मनुष्यों को ही उपयोगी हो सके भविष्य की प्रजा उसके लाभ से सर्वथा वंचित ही है क्योंकि उनका संग्रह नहीं होसका।

जैन दर्शन के अन्तर्गत साधुमार्गी जैन समाज और उसके अन्तर्गत प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय सुप्रसिद्ध है इस सम्प्रदाय के आचार्यों में से स्वर्गस्थ पूज्य श्री उदयसागरजी महाराज बड़े ही प्रवचनी और सुप्रसिद्ध वक्ता थे उनके प्रभावोत्पादक ललित व्याख्यानों को श्रवण करने के लिये जनता उमड़ी पड़ती थी जिस रोज व्यास पीठ पर पूज्य महाराज साहब का पाटिया लगता कि बाजार में हर्ष की उर्मियें उछलने लगती थीं और जनता खचाखच भर जाती थी ऐसा पूर्व पुरूषों से सुना जाता है। उनके परम्पर उत्तराधिकारी स्वर्गीय पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज साहब के प्रवचनों का तो मुझे स्वतः अनुभव है तथा अन्य लोगों को भी है। उनकी वाणी में भी जादू का सा असर था उनका वचनातिशय भी उत्कृष्ट श्रेणीका था किन्तु अफसोस है कि उस समय उनके वचनामृत सग्रह करने की भावना ही पेदा नही हुई।

उन्ही के उत्तराधिकारी स्वर्गीय पूज्य श्री जवाहिराचार्य भी अद्वितीय वक्ता थे। आप केवल वक्ता ही नही थे किन्तु कलाकार भी थे कलाकार जिस प्रकार रत्नों को स्थानापन्न करते समय उसके साथ जिस सामग्री की जरूरत होती है वैसे ही साज से उस रत्न की शोभा बढा देता है इसी तरह श्रीमज्जवाहिराचार्य भी जैन सिद्धान्तो के अन्दर रहे हुए वाक्यरूपी रत्नों को वर्तमान समय के विज्ञान द्वारा तुलनात्मक दृष्टि से अनुसन्धान करके उनको सर्व ग्राह्य बना देते थे और प्रत्येक सूत्र की तलस्पर्शी व्याख्या करते थे यह देखकर जिस समय पूज्य श्री दक्षिण खानदेश से मालवा में पधारें उस समय यानि सं० १९८२ की मण्डल की चतुर्थ बैठक रतलाम मे यह प्रश्न आया था कि पूज्य श्री के व्याख्यान नोट कराये जायं तो जनता को भविष्य में बहुत लाभ हो सकेगा उसी समय एक प्रस्ताव द्वारा व्याख्यानों को नोट कराया जाना ठहराया गया तदानुसार मंडल आफ़िस ने सं. १९८३ के ब्यावर चातुर्मास से ही व्याख्यानों का लिखाया जाना शुरू कराया गया था सो सं. १९९६ के अहमदाबाद चातुर्मास तक नोट हुए है। इस कार्य में मंडल के हजारों रूपये व्यय हुए हैं। मंडल के अन्य कार्यो में यह कार्य वर्तमान तथा भविष्य की प्रजा के लिये अत्युपयोगी सिद्ध हुवा है।

श्रीमज्जवाहिराचार्य संसार के नियमानुसार अपने भौतिक शरीर से आज ... बीचमें नही रहे है किन्तु उनकी लिपि बद्ध हुई वाणी विद्यमान है। पूज्यश्री के ...नो मे से पृथक २ विषयों पर तात्विक विभाग एवं कथा विभाग की बीस पुस्तकें ...ऑफिस ने प्रसिद्ध की है तथा भीनासर देहली आदि के चातुर्मास में के ...ख्यानों की कुछ पुस्तके श्री जवाहिर किरणावली के नाम से प्रसिद्ध ... देखकर जैन एवं जैनेतर जनता की रूची इतनी बढ़ गई है कि ...की कुछ पुस्तकें तो स्टाक मे भी नही रही है। और कोई २ साहित्य तीन और चार २ संस्करण निकल चुके है फिर भी मांग बढ़ती है।

सं० २००० के आषाढ़ मास में पूज्य श्री का स्वर्गवास हो जाने पर चौतरफ से यह आवाज ऊठी की ऐसे महापुरुष का स्मारक कायम किया जाय और उनके उपदेशों को मूर्त रूप में परिणत किये जायं जिसके लिये विद्वानों की तरफ से अनेक योजनाएं आयी थी वे मंडल की देशनौक की बैठक के समय रजू की गई और विचार करके श्रीमान् सेठ चम्पालालजी साहब बांठिया का अदम्य उत्साह देखकर इस कार्य को वेग देने का भार उन्हीं के ऊपर छोडकर मंडल ने ठहराव नं० १८ किया था परन्तु लोगों की इच्छा के अनुकूल वह कार्य आगे न बढ़कर केवल बीकानेर भीनासर गंगाशहर तक ही रह गया।

गत वर्ष ब्यावर की मंडल की बैठक में फिर वह प्रश्न उपस्थित हुआ उस पर बहुत विचार होकर सर्व सम्मति से यही ठहरा कि पूज्यश्री का सच्चा स्मारक उनके प्रवचनों को सुन्दर ढंग से सम्पादन कराके प्रचार करना है जिसके लिये प्रस्ताव होकर एक फंड कायम हुआ है और उसकी व्यवस्था करने व साहित्य तैयार कराने के लिये एक कमिटी भी कायम हुई है उस विभाग के तरफ से श्री जवाहिर स्मारक का प्रथम पुष्प एवं श्री जवाहिर किरणावली की किरणों मे से यह सातवीं किरण आपके कर कमलों में पहुंचाते हुए हमें परमानन्द का अनुभव होता है। और आशा रखते हैं कि इस साहित्य द्वारा जहां सन्त सतियों का सदा सर्वदा योग नहीं रहता वहा के बन्धुओं की आवश्यकता पूर्ति का यह साहित्य उत्तम साधन साबित होगा।

यह साहित्य ऐसे ढंग से सम्पादन एवं प्रकाशित किया गया है कि जिससे पाठक व्याख्यान का पुरा पुरा आनन्द ले सकें। आगे के व्याख्यान भी इसी ढग से प्रकाशित किये जावेंगे इसलिये सर्व पाठकों एवं साहित्य प्रेमियों से हमारा अनुरोध है कि आप अपना नाम स्थायी ग्राहकों में दर्ज करवा दें। ताकि साहित्य का पुष्प प्रकाशित होते ही आपको भेज दिया जाय। स्व पूज्य श्री के प्रवचन रूप यह साहित्य इतना मर्म स्पर्शी ठोस और उच्च कोटि का है कि पुस्तकाकार में प्रकाशित होते ही हाथो हाथ पुस्तके बिक जाती है अतः हमारा यही अनुरोध है कि आप अपना नाम स्थायी ग्राहकों मे दर्ज करादें। इत्यलम्।

भवदीय
बालचन्द श्रीश्रीमाल
सेक्रेटरी
हीरालाल नांदेचा
प्रेसिडेन्ट

श्री जैन
हितेच्छु श्रावक मण्डल ऑफिस
रतलाम
आश्विन शुक्ला १ सं० २००३

अमृतमय स्वादिष्ट फल !

आपको मालूम है कि महापुरुषों के प्रवचनरूप ये अमृतमयी स्वादिष्टफल कहां से प्राप्त हो रहे हैं। श्री जैन हितेच्छु श्रावक मंडल आफिस रतलाम के परिश्रमका प्रताप है कि हमें ऐसा उत्तम साहित्य अध्ययन करने को मिलरहा है अतः हमारा यह प्रथम कर्तव्य होजाता है कि मंडल को तन मन धन से सहायता देकर इसे व्यापक एवं सुदृढ बनावे। भारत के कोने कोने में इसके सभ्य बनाकर इससे समुन्नत करें। मंडल के सभ्य बनने के तरीके।

१ जो महानुभाव मंडल को रूपये पांचसो से अधिक देंगे वे मंडल के प्रथम श्रेणी के वंशपरम्परा के सभ्यमाने जावेंगे।

२ जो महानुभाव मंडल को रूपये एकसो से अधिक भेंट करेंगे वे मंडल के द्वितीय श्रेणिके आजीवन सभ्य माने जावेंगे।

३ जो महानुभाव मंडल को रूपये दो प्रति वर्ष देते रहेंगे या एक साथ देंगे वे तृतीय श्रेणिके जितनी तादादमें देंगे उतने वर्ष के सभ्य माने जावेंगे।

४ जो मंडल की किसी भी प्रवृतिमें आर्थिक मदद देंगे वे रकम की तादाद पर से उसी श्रेणिके सभ्य माने जावेंगे।

मंडल की मुख्य २ प्रवृतियां निम्न प्रकार हैं

१ श्री जवाहिराचार्य के प्रवचनोपर से साहित्य सम्पादन करा कर उसको प्रकाशित करके अल्प मूल्य में प्रचार किया जाता है।

२ अपनी सामाजिक धार्मिक सस्थाओं में अभ्यास करते हुए छात्र छात्राओं की परीक्षा लेकर उनको पारितोषिक एवं प्रमाण पत्र देता है।

३ अपनी सामाजिक संस्थाओं को आर्थिक सहायता देकर उनका गौरव बढ़ाया जाता है।

४ मंडल आफिस से प्रतिमाह रिपोर्ट रूपमें 'निवेदन पत्र' निकलता है जो प्रत्येक श्रेणिके सभ्योंको बिना शुल्क भेजा जाता है।

५ सम्प्रदाय तथा समाज के गौरव के कार्यों मे भी प्रयत्नकरता है सन्त सतियोंके ज्ञान दर्शन चारित्र की विशुद्धि बढ़ाने में सहायक है।

भवदीय—

मन्त्री.

विषय सूचि

१	वास्तविक शान्ति		१
२	सूत्रारम्भ में मंगल	...	२६
३	महा निर्ग्रन्थ व्याख्या	...	३२
४	धर्म का अधिकार	..	४६
५	सिद्ध साधक	...	६१
६	स्वतन्त्रता	..	७७
७	अरिष्टनेमी की दया	...	९४
८	आतम-विश्रम	...	११३
९	धर्म प्राप्ति	..	१२५
१०	वृक्षों की उपयोगिता	...	१३७
११	जन्मभूमि	..	१४९
१२	फूल और लेश्या का समन्वय	...	१५६
१३	मुनि का प्रभाव	...	१६७
१४	चत्य व्याख्या		१७८
१५	साधुता का आदर्श	..	१९०
१६	वर्ण और रुप	...	२००
१७	आर्यत्व का वर्णन	..	२०९
१८	सच्ची क्षमा	...	२१९
१९	सची जय	..	२२९
२०	मानव धर्म	.	२३८
२१	सच्ची साधुता	...	२५५
२२	राजा का आश्चर्य	...	२६६
२३	मनुष्य शरीर	.	२७८
२४	परमात्म प्रीति	.	२९१



जवाहिर किरणावली

किरण ७वीं

श्रीजवाहिराचार्य

के

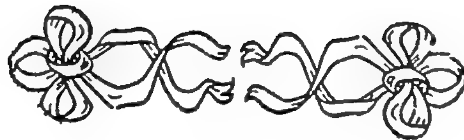
व्याख्यान

दो शब्द और



इस पुस्तक के छपते छपते कितनेक हितैषियों का ऐसा आग्रह हुआ कि मंडल ऑफिस से अब जो भी साहित्य प्रकाशित हो, वह श्री जवाहिर किरणावली के किरणारूप में-ही हो उनके आग्रह को मान देकर इस पुस्तक को श्री जवाहिर किरणावली की छठी किरण पुस्तक के प्रारम्भ के पृष्ठ पर छपवाया है परन्तु पीछे से खबर मिली कि छठी किरण दूसरी जगह छप रही है। इस लिये इसे सातवीं किरण जाहिर किया जाता है।

प्रकाशक--



॥ श्री महावीरायनमः ॥

श्री जवाहिर किरणावली

किरण ६

(जवाहिर स्मारक पुष्प प्रथम)



वास्तविक शांति

"श्री शांति जिनेश्वर सायब सोलवाँ................"



यह भगवान शान्तिनाथ की प्रार्थना है। भक्त भगवान् से क्या चाहता है? यह कि 'हे प्रभो ! तू शांति का सागर है, तू स्वयं शान्ति का स्वरूप है, तेरे में शान्ति का भण्डार भरा है, मैं अशान्त हूं (आशा और तृष्णा के कारण) मुझे शान्ति की आवश्यकता है, अतः मेरे शान्ति रहित हृदय को शान्ति प्रदान कर'।

जिसको शान्ति की जरूरत होती है, जिसके हृदय में अशान्ति भरी पड़ी हो, वही व्यक्ति शान्ति की चाहना करता है। पानी की चाह प्यासा ही रखता है। रोटी की मांग भूखा ही रखता है। जिसमें जिस बात की कमी होती है वह उसे दूर करना चाहता है। तदनुसार भक्त भी भगवान् से कहते हैं (प्रार्थना करते हैं) कि 'हे प्रभो ! तू शान्ति का

सागर है, किन्तु मुझ में अशान्ति है, अतः मैं तुझ से शान्ति चाहता हू। यों तो ससार में शान्ति देने वाले अनेक पदार्थ माने हुए हैं। मैंने उन सब पदार्थों को खोजा किन्तु किसी भी पदार्थ में मुझे शान्ति नही मिली। वास्तव में ससार के किसी भी जड़ पदार्थ में शान्ति है ही नहीं।

यह कहा जा सकता है कि जब प्यास लगी हो तब ठण्डा पानी और भूख लगने पर रोटी मिलजाने से शाति मिलती है और यह प्रत्यक्ष अनुभूत बात भी है। वैसी हालत में यह कैसे कहा जा सकता है कि ससार के किसी भी पदार्थ में शाति नहीं है? इसका उत्तर यह है कि सयाने लोग शान्ति उसी को कहते है जिसमें अशान्ति का लवलेश भी न हो। जो शान्ति एकान्तिक और आत्यन्तिक है वही सच्ची शान्ति है। जिस पदार्थ में एकान्तिक और आत्यंतिक शान्ति नहीं है, वह शान्ति दायक नहीं कहा जा सकता। पदार्थों में शान्ति का आभास होता है, किन्तु शान्ति का वास्तविक स्रोत अन्य ही है। उदाहरण के लिए समझ लीजिये कि किसी को प्यास लगी है और उसने पानी पी लिया है। यदि उसी व्यक्ति को उसी समय पुनः पानी पीने के लिए कहा जाय तो क्या वह पानी पीयेगा? नही पियेगा। यदि पानी में शान्ति है तो वह व्यक्ति पुनः पुनः पानी पीने से क्यों इन्कार करता है। दूसरी बात-एक बार पानी पीने से उस समय उसकी प्यास बुझ गई थी, उस समय उसने पानी में शान्ति का अनुभव किया था किन्तु दो एक घण्टा बीत जाने पर वह फिर पानी पीता है या नही? फिर पानी पीने का क्या कारण है? यही कि उस समय पानी पीने से उस समय की प्यास बुझ गई थी लेकिन कायम के लिए उस पानी से प्यास न बुझी थी। कल रोटी खाई थी। क्या आज पुनः खानी पडेगी? यदि रोटी से भूख मिट जाती है तो पुनः क्यों खानी पडती है! इससे ज्ञात होता है कि रोटी पानी आदि भौतिक पदार्थों में सुख नही है किन्तु सुख का आभास मात्र है। शान्ति नहीं है किन्तु शान्ति का आभास है। ससार के किसी भी पदार्थ में एकान्तिक या आत्यन्तिक सुख नही है। जब भूख लगी हो तब लड्डू कितने प्यारे लगते हैं। यदि भूख न हो तो क्या लड्डु खाये जा सकते है। भूख में प्यारे लगनेवाले ये ही लड्डु भूख के अभाव में कितने बुरे लगते है? इस बुरे लगने का कारण क्या है? यह कि अब भूख जन्य दुःख नही है। जब मनुष्य दुःखी होता है तब उसे सासारिक पदार्थों में शाति मालूम देती है। लेकिन जब वह दुःख मिट जाता है तब सासारिक पदार्थ में शान्ति नही मालूम पडती बल्कि अशाति जान पडने लगती है। इसी से कि ज्ञानीजन कहते हैं कि सासारिक पदार्थों में एकान्तिक या आत्यतिक शान्ति नहीं है। किसी दुःख के समय उनमें शान्ति जान पडती है मगर वास्तव में ससार के किसी

भी पदार्थ में न पहले सुख था और न अब। भौतिक पदार्थ शान्ति या सुख के निमित्त कारण अवश्य है। शान्ति का उपादान कारण कुछ अन्य ही है।

भक्त कहते हैं कि हे प्रभो! मैंने संसार के समस्त पदार्थों को छानबीन कर खोज डाला किन्तु किसी भी पदार्थ में शान्ति नहीं मिली। अतः अब मैं तेरी शरण आया हूं। और तेरे से शान्ति के लिए प्रार्थना करता हूं।

वेदादि ग्रन्थों में "ॐ शान्तिः, शान्ति, शान्ति" इस प्रकार तीन बार शान्ति का उच्चारण किया गया है। तीन बार शान्ति का उच्चारण इसलिए किया गया है कि आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक इस तरह तीन प्रकार की शान्ति की कामना (चाहना) कीगई है। आधिभौतिक शान्ति चाहने का अर्थ यह है कि अभी हमारा आत्मा शरीर में निवास करता है। अभी आत्मा का काम शरीर की सहायता से चलता है। अभी आत्मा को अतीन्द्रिय शक्ति प्राप्त नहीं हुई है। इन्द्रियों की सहायता से ही आत्मा जानना, सुनना, देखना आदि क्रियाएं करता है। आत्मा को अतीन्द्रिय शक्ति प्राप्त होजाय तब की बात अलग है। किन्तु अभी तो अतीन्द्रिय शक्ति न होने से शरीर, आंख, कान, नाक, जिह्वा से आत्मा सहायता लेकर अपना निर्वाह करता है।

इस प्रकार यह भौतिक शरीर आत्मा के लिए सहायक है। किन्तु इस भौतिक शरीर के पीछे अनेक भौतिक अशान्तियां लगी हुई हैं। इन भौतिक अशान्तियों को मिटाने के लिए भी शान्ति का उच्चारण किया जाता है और परमात्मा से शान्ति चाही जाती है। इस शरीर को अनेक रोग दुःख और शस्त्रघात आदि कारणों से अशान्ति रहती है। शान्ति के उच्चारण द्वारा इन सब कारणों को मिटाकर अशान्ति मिटाना इष्ट है।

यह शंका की जा सकती है कि ये आधिभौतिक अर्थात् शारीरिक कष्ट तो अन्य उपायों के द्वारा भी मिटाये जा सकते हैं। जैसे रोग वैद्यराज की शरण लेने से और शस्त्रघात का भय किसी वीर योद्धा की शरण में जाने से। फिर इन दुःखों से बचने के लिए परमात्मा की शरण में जाने और उससे शान्ति की चाहना करने की क्या आवश्यकता है? अन्य स्थूल उपायों के होते हुए परमात्मा तक पुकार पहुंचाने की क्या जरूरत है?

इस शंका का समाधान सच्ची शान्ति का मर्म जानने और अनुभव करने वाले [illegible] इस प्रकार करते हैं कि यदि वैद्य या योद्धा की सहायता ली जायगी और हम

में शान्ति प्राप्त की जायगी तो उनका गुलाम बन जाना पड़ेगा। वैद्य की सहायता लेने पर पदे पदे वैद्यराज की आवश्यता होगी और उनके वश हो जाना पडेगा और वीर योद्धा की सहायता लेने से खुद की शक्ति का भरोसा न होने से कायरता प्राप्त होगी। अतः इस प्रकार की अशांति मिटाने के लिए भी परमात्मा की प्रार्थना करना ही उचित मार्ग है। तब किसी ऐसी जगह के ही द्वार क्यों न खटखटाए जाय जहां हमारी सब अशान्तियां दूर होकर वास्तविक सुख प्राप्त हो। वह स्थान परमात्मा की शरण के सिवा अन्य नहीं हो सकता। शान्ति का सच्चा और पूर्ण कारण वही है। इस विषय का विशद और विस्तृत वर्णन श्री मुनि के चरित्र वर्णन के प्रसंग में समय २ पर किया जायगा। यहां तो केवल इतना ही कहना है कि ज्ञानी लोग परमात्मा के सिवा अन्य किसी से अपने दुःख दूर करवाना नहीं चाहते।

कर वह बहुत प्रसन्न हुआ। प्रशंसा करने लगा कि यह कैसा सुन्दर देश है। यहां जमीन पर पड़ी हुई बेल में ही ऐसे सुन्दर फल लगते हैं। मेरे देश में तो ऊँचे वृक्ष पर ही फल लगते हैं। उस वक्त उसे भूख लग रही थी अतः एक फल तोडकर खाया। किन्तु फल उसे कडुआ लगा। वह थू थू करता हुआ सोचने लगा कि इतने सुंदर फल में यह कडुआपन कहाँ से आ गया? यह सोचकर कि देखू फल कडुआ है पर पत्ते कैसे हैं, उसने पत्ते चखे। पत्ते भी कडुए निकले। फिर उसने फूल चखा तो वह भी कडुआ मालूम हुआ। अन्त में उसने उस बेल का मूल (जड) चखा। बडे दुख के साथ उसने अनुभव किया कि उस बेल का मूल भी कडुआ ही था। उस व्यक्ति ने निर्णय किया कि जिसका मूल ही कडुआ होगा उसके सब अंग कडुए ही होंगे।

साराश यह है कि आप लोग अपने पुत्र को तो शान्तिदायक पसन्द करते हैं किन्तु खुद को भी तपासिये कि आप स्वय कैसे हैं? कोई अच्छे कपडे पहन कर अच्छा बनना चाहे तो इससे उसकी अच्छा बनने की मुराद पूरी नहीं हो जाती। कपडों के परिवर्तन करने से या सुन्दर साज सजाने से आत्मा अच्छा नहीं बन जाता। इससे तो शरीर अच्छा लग सकता है। यदि खुद के आत्मा में दूसरों को शान्ति पहुचाने का गुण होगा तभी मनुष्य अच्छा लगेगा और तभी सतान भी शान्तिदायिनी हो सकती है।

महाराजा विश्वसेन सब को शांति पहुँचाने के इच्छुक रहते थे इसी से उनकी रानी अचिरा के गर्भ में भगवान् शान्तिनाथ ने जन्म धारण किया। जिस समय भगवान् शांतिनाथ गर्भ में थे उस समय महाराजा विश्वसेन के राज्य में महामारी का भयंकर प्रकोप हुआ। प्रजा महामारी का शिकार होने लगी। यह देख सुन कर महाराजा बहुत चिन्तित हुए और विचार करने लगे कि जिस प्रजा की रक्षा और वृद्धि के लिए मैंने इतने कष्ट उठाये हैं वह किस प्रकार काल कवलित हो रही है। मेरी कितनी कमजोरी है कि जो मेरे सामने मरती हुई प्रजा का मै रक्षण नहीं कर पाता हूँ। इस प्रकार महामारी का प्रकोप होना और प्रजा का विनाश होना केवल प्रजाके पापों का ही परिणाम नहीं है किन्तु मेरे पापों का भी परिणाम है। जो कुछ हो, मुझे पाप पाप करके ही न बैठे रहना चाहिए किन्तु ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि जिससे प्रजा की रक्षा हो और उसे शान्ति प्राप्त हो। यदि मेरे शरीर से यह कार्य न हो सके तो फिर इस शरीर का धारण करना ही व्यर्थ है। मैं निश्चय करता हूँ कि जब तक प्रजा में कोई नया रोगी न होगा और जो रोगी है वे जब तक अच्छे न हो जाएँगे तब तक मै अन्न जल ग्रहण न करूँगा।

से शान्ति प्राप्त की जायगी तो उनका गुलाम बन जाना पड़ेगा। वैद्य की सहायता लेने पर पदे पदे वैद्यराज की आवश्यता होगी और उनके वश हो जाना पड़ेगा और वीर योद्धा की सहायता लेने से खुद की शक्ति का भरोसा न होने से कायरता प्राप्त होगी। अतः इस प्रकार की अशाति मिटाने के लिए भी परमात्मा की प्रार्थना करना ही उचित मार्ग है। तब किसी ऐसी जगह के ही द्वार क्यों न खटखटाए जाय जहां हमारी सब अशान्तिया दूर होकर वास्तविक सुख प्राप्त हो। वह स्थान परमात्मा की शरण के सिवा अन्य नहीं हो सकता। शान्ति का सच्चा और पूर्ण कारण वही है। इस विषय का विशद और विस्तृत वर्णन अनाथी मुनि के चरित्र वर्णन के प्रसग में समय २ पर किया जायगा। यहा तो केवल इतना ही कहना है कि ज्ञानी लोग परमात्मा के सिवा अन्य किसी से अपने दुःख दूर करवाना नहीं चाहते।

भगवान् शांतिनाथ का नाम लेने से शाति कैसे प्राप्त हो सकती है यह बात कथा द्वारा बताई जाती है। कथा द्वारा बताने से स्त्री बाल वृद्ध आदि सब लोग सुगमता से समझ सकेंगे। भगवान् शांतिनाथ के पिता हस्तिनापुर में राज्य करते थे। उनका नाम महाराज विश्वसेन था। वे कोरे नाम के ही विश्वसेन न थे किन्तु विश्व को शाति पहुचाने के लिए प्रयत्न किया करते थे। वे विश्व-ससार के मित्र थे। वे रात दिन सोचा करते थे कि मैं अच्छे २ अच्छे पदार्थ भोगने के लिए राजा नही बना हू किन्तु मुझ में जो शक्ति मौजूद है वह खर्च करके प्रजा को शाति पहुचा सकू तब सच्चा राजा कहलाऊ। वे हर क्षण ससार को शाति पहुचाने का विचार किया करते थे। यही कारण है कि उनके यहा साक्षात् शाति के अवतार भगवान् शातिनाथ का जन्म हुआ था।

महाराजा विश्वसेन के विचारों पर आप लोग भी ग़ौर कीजिये। आप शान्ति दायक पुत्र चाहते है या अशान्ति दायक? चाहते तो होंगे आप भी शान्दिायक ही। शान्तिदायक पुत्र प्राप्त करने की इच्छा वालों को स्वय कैसा बनना चाहिए? दूसरों को शान्ति प्रदान करने वाले या दूसरों की शान्ति में अशान्ति उत्पन्न करने वाले? यदि अशान्तिदायक बनोगे तो पुत्र भी अशान्तिदायक ही उत्पन्न होगा। जैसी बेल होती है उसका फल भी वैसा ही होता है। "**बोये पेड़ बबूल के आम कहां ते होय।**"

एक आदमी दूसरे देश में गया। उसके देश में इन्द्रायण का फल नही होता था अत उसने कभी वह फल देखा न था। नये देश मे इन्द्रायण का फल देख

कर वह बहुत प्रसन्न हुआ । प्रशसा करने लगा कि यह कैसा सुन्दर देश है । यहा जमीन पर पडी हुई वेल में ही ऐसे सुन्दर फल लगते हैं। मेरे देश में तो ऊँचे वृक्ष पर ही फल लगते हैं। उस वक्त उसे भूख लग रही थी अतः एक फल तोडकर खाया । किन्तु फल उसे कडुआ लगा । वह थू थू करता हुआ सोचने लगा कि इतने सुदर फल में यह कडुआपन कहाँ से आ गया ? यह सोचकर कि देखू फल कडुआ है पर पत्ते कैसे हैं, उसने पत्ते चखे। पत्ते भी कडुए निकले । फिर उसने फूल चखा तो वह भी कडुआ मालूम हुआ । अन्त में उसने उस वेल का मूल (जड) चखा। बडे दुख के साथ उसने अनुभव किया कि उस वेल का मूल भी कडुआ ही था। उस व्यक्ति ने निर्णय किया कि जिसका मूल ही कडुआ होगा उसके सब अश कडुए ही होंगे।

साराश यह है कि आप लोग अपने पुत्र को तो शान्तिदायक पसन्द करते हैं किन्तु खुद को भी तपासिये कि आप स्वय कैसे हैं? कोई अच्छे कपडे पहन कर अच्छा बनना चाहे तो इससे उसकी अच्छा बनने की मुराद पूरी नहीं हो जाती । कपडों के परिवर्तन करने से या सुन्दर साज सजाने से आत्मा अच्छा नही बन जाता । इससे तो शरीर अच्छा लग सकता है । यदि खुद के आत्मा में दूसरों को शान्ति पहुचाने का गुण होगा तभी मनुष्य अच्छा लगेगा और तभी सतान भी शान्तिदायिनी हो सकती है ।

महाराजा विश्वसेन सब को शाति पहुँचाने के इच्छुक रहते थे इसी से उनकी रानी अचिरा के गर्भ में भगवान् शान्तिनाथ ने जन्म धारण किया । जिस समय भगवान् शातिनाथ गर्भ में थे उस समय महाराजा विश्वसेन के राज्य में महामारी का भयकर प्रकोप हुआ । प्रजा महामारी का शिकार होने लगी । यह देख सुन कर महाराजा बहुत चिन्तित हुए और विचार करने लगे कि जिस प्रजा की रक्षा और वृद्धि के लिए मैंने इतने कष्ट उठाये हैं वह किस प्रकार काल कवलित हो रही है । मेरी कितनी कमजोरी है कि जो मेरे सामने मरती हुई प्रजा का मैं रक्षण नही कर पाता हूँ । इस प्रकार महामारी का प्रकोप होना और प्रजा का विनाश होना केवल प्रजाके पापों का ही परिणाम नहीं है किन्तु मेरे पापों का भी परिणाम है। जो कुछ हो, मुझे पाप पाप करके ही न बैठे रहना चाहिए किन्तु ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि जिससे प्रजा की रक्षा हो और उसे शान्ति प्राप्त हो । यदि मेरे शरीर से यह कार्य न हो सके तो फिर इस शरीर का धारण करना ही व्यर्थ है । मै निश्चय करता हू कि अब प्रजा में कोई नया रोगी न होगा और जो रोगी है वे जब तक अच्छे न हो जायगें तब तक मैं अन्न जल ग्रहण न करूँगा ।

महाराजा विश्वसेन ने इस प्रकार सत्याग्रह या अभिग्रह किया, वह अपने निजी स्वार्थ या हित के लिये नहीं किन्तु जनता के हित के लिए किया था। जन हित के लिए इस प्रकार का दृढ़ निश्चय करके महाराजा परमात्मा के ध्यान में बैठ गये। ध्यान में यह विचारने लगे कि मेरे किस पाप के कारण यह माहमारी उपस्थित हुई है और प्रजा मरने लगी है। मेरी किस कमी या असावधानी के कारण प्रजा को यह दुःख सहन करना पड रहा है।

जो अपने दुःख का तो दुःख समझता है किन्तु दूसरों के दुःख को महसूस नहीं करता वह धर्म का अधिकारी नहीं हो सकता। वस्तुतः धर्म का अधिकारी वह है जो अपने दुःखों की चिन्ता न करे किन्तु दूसरों के दुःखो को दूर करने की कोशिश करे। दूसरों को सुखी देखकर प्रसन्न हो और दुःखी देखकर दुःखी हो वही सच्चा धर्माधिकारी है। यदि आप धर्मात्मा बनने की ख्वाहिश रखते है तो यह निश्चय करिये कि हे दीनानाथ! हम हमारा दुःख सहन कर लेंगे किन्तु अज्ञानी लोग जो कि दुःख से घबडाते हैं उसको सहन न करेंगे। उसे दूर करने का भरसक प्रयत्न करेंगे। "अत्तसमं मन्निज्ज छप्पि कायं" अर्थात् पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और चलते फिरते त्रस जीव इन छः काया के जीवों को अपनी आत्मा के समान मानना चाहिए। ज्ञानी जन ही यह विचार कर सकता है कि कोई प्राणी दुःख से पीडित न हो। अज्ञानी लोग ऐसा विचार नहीं कर सकते।

महाराजा विश्वसेन अन्न जल त्याग का अभिग्रह ग्रहण कर के परमात्मा के ध्यान में तल्लीन होकर बैठे हुए थे। उधर महारानी अचिरा भोजन करने के लिए पतिदेव की प्रतीक्षा कर रही थी। भारतीय सभ्यता के अनुसार पतिव्रता स्त्री पति के भोजन करने के पूर्व भोजन नहीं करती है। गुजराती भाषा में कहावत है कि '**माटी पहली बैयर खाय, तेनो जमारो एले जाय**' आज भी भले घरों की स्त्रियॉ पति के भोजन करने के पहले भोजन नहीं करती किन्तु पति के भोजन कर चुकने पर भोजन करती है।

भोजन करने का समय हो चुका था और भोजन भी तैय्यार था फिर भी महाराजा के न पधारने से महारानी अचिरा ने दासी को बुलाकर उससे कहा कि तू जाकर महाराजा से अर्ज कर कि भोजन तय्यार है। राजा को भोजन निश्चित समय पर ही करना चाहिए ताकि शरीर रक्षा हो और शरीर रक्षा होने से प्रजा की भी रक्षा हो सके। दासी महाराजा के पास गई किन्तु उन्हें ध्यान में तल्लीन देखकर बोलने की हिम्मत न कर सकी। साधारण लोगों को तेजस्वी महापुरुषों की ओर देखने की हिम्मत न होती है। तेजस्वियों के मुख से एक प्रभा मण्डल निकलता है जिसके कारण साधारण आदमी उनकी ओर नहीं देख सकता।

दासी महाराजा विश्वसेन का ध्यान भंग न कर सकी। वह दूर से ही धीरे २ कहने लगी कि भोजन तय्यार है, आप आरोगने के लिए पधारिये। उसका शब्द इतना धीमा था कि वह महाराजा के कान में पड़ा हो या न पडा हो। महाराजा का ध्यान भग न हुआ। वे तो ध्यान में यही सोच रथे कि हे प्रभो! मेरे किस पाप के उदय के कारण मेरी प्यारी प्रजा महामारी का शिकार बन रही है। मैं राजा हू। प्रजा मुझे पिता कहती है, मेरे पैरों पड़ती है। और अपनी शक्ति मुझे सौंपती है। फिर उसका कल्याण कर सकू तो मुझ पर बड़ा भार बढता है।

राजकोट श्री संघ के सेक्रेटरी मुझसे कहने लगे कि महाराज! आप यहा क्या पधारे है, हमारे लिए तो साक्षात् गगा अवतीर्ण हुई है। मैं कहता हू कि गगा तो यहा का श्री संघ है। यहा का सघ या समाज मुझको जो मान बडाई प्रदान करता है उससे मुझ पर भार बढता है, मेरी जिम्मेवरी बढती है। यदि मैं यहा की समाज का वास्तविक कल्याण न कर सकू तो आपका दिया हुआ मान मुझपर भार ही है। आप लोग बेंक में रूपये रखते हैं। बेंक का काम आपके रूपयों की रक्षा करना है। यदि वह रक्षा न करे तो उस पर भार है। बेंक तो कभी दिवाला भी निकाल दे किन्तु क्या हम साधु लोग भी दिवाला निकाल सकते है। आप लोग हम साधुओं के लिए कल्याण मगल आदि शब्द कहते हैं। हमारा ऊपरी साधु भेष देखकर ही आप लोग ऐसा कहते है। कल्याण मगल आदि शब्द कहला कर भी यदि हम आपका कल्याण न करें तो सचमुच हम पर भार बढ़ता है। आपके दिए हुए मान के बदले में हमारा कुछ कर्तव्य हो जाता है और वह आपके लिए कल्याण कार्य करना ही है।

यह तो हम साधुओं की बात हुई। अब आपकी बात कहता हू। आप भी तीर्थ कहलाते हैं। तीर्थ उसे कहते हैं जो दूसरों को तारे-पार उतारें। दूसरों को वही तार सकता है जो खुद तरता है। जो स्वय न तरता हो वह दूसरों को क्या तारेगा। रेल यदि आप लोगों को अपने में बैठाकर दूसरी जगह न पहुचाये तो क्या आप उसे रेल कहेंगे। इसी तरह तीर्थ होकर भी यदि दूसरों को न तारो तो तीर्थ कैसे कहला सकते हो। दूसरों को तभी तार सकते हो जब स्वय तीरो।

एक भाई का मुह बासता था। मैंने पूछा क्या बीडी पीते हो? उसने उत्तर दिया, जी हा पीता हू। मेरे पीछे यह दुर्व्यसन लग गया है। मैने कहा कि भगवान् महावीर के श्रावक होकर आपमें यह कमजोरी कैसी। बिना कष्ट सहन किये कोई कार्य नहीं होता।

कष्ट सहन करके भी यदि इस दुर्व्यसन को तिलाञ्जली दे सको तो उसमें तुम्हारा और हमारा दोनों का कल्याण है। आपके तीर्थङ्कर की माता पिता जनत के कल्याण के लिए अनन्त त्याग देते हैं और आप बीडी जैसी तुच्छ वस्तु को भी न छोड़ सकें यह मुझ पर कितना भार है। मैं इस विषय में क्या कहूं। यदि आप लोग बीडी पीना छोड़ दें तो मैं कह सकता हूं कि राजकोट का सब बीडी नहीं पीता है।

बीडी पीने वाले कहते हैं कि बीडी पीने से दस्त साफ आता है। पेट में किसी प्रकार की गड़बड़ नही रहती। पहले से लोग पीते आये हैं अत: हम भी पीते हैं। यदि यह कथन ठीक है तो मैं पूछता हू कि बहिने बीड़ी क्यों नहीं पीती। उन से यदि बीड़ी पीने के लिए कहा जाय तो वे यही उत्तर देंगी कि हम क्यों पीयें, हमारी बलाय पीये। स्त्रियों तो यों कहती है और आप लोग पगडी बांधने वाले पुरुष होकर उनकी बलाय बनते है। क्या यह ठीक है। पेट साफ रहता है आदि कथन बीडी पीने का बहाना मात्र है। बीडी पीने से लाभ नहीं होता। बीड़ी न पीने से किसी प्रकार की हानी होगी तो इस बात को मैं जिम्मे-वारी लेता हू। मैं कहता हू कि बीड़ी न पीने से किसी भी प्रकार की हानि न होगी। अत: भाइयों! बीडी पीना छोड दीजिये। डाक्टरों का कहना है कि तमाखू में निकोटाइन नामक जहर रहता है जो पेट में जाकर भयकर हानि पहुचाता है। डाक्टरों का यह भी कहना है कि एक बीडी में जितनी तमाखू होती है यदि उसका अर्क निकाला जाय तो उससे सात मेंढक मर सकते हैं। इस प्रकार हानि पहुचाने वाली तमाखू से क्या लाभ हो सकता है। हॉ, हानि अवश्य होती है। आप की देखा देखी आपके बच्चे भी बीडी पीने लगते हैं। आपके फेंके हुए टुकडे को उठाकर बच्चे पीते हैं और इस बात की जाच करते है कि हमारे पिताजी जिस बीड़ी को दिन में कई बार पिया करते हैं उसमें क्या मजा रहा हुआ है। बीडी त्याग देना ही उचित है। जो लोग बीडी नहीं पीते है वे धन्यवाद के पात्र हैं। जो पीते है उनसे हमारा अनुरोध है कि वे इसे छोड दें। बीडी दुःख का कारण है। ऐसे दु:ख के कारणों को आप परमात्मा के समर्पण करते जाओ। इससे आपकी आत्मा में आनद की वृद्धि होगी। मैं दिल्ली से जमना पार गया था। वहा तमाखू पीने का बहुत रिवाज है। यहातक कि बहुतसी स्त्रियॉ भी बीडी पीती हैं। मैंने तमाखू त्याग का उपदेश दिया। उस उपदेश से हमारे कई श्रावकों ने तमाखू पीना छोड दिया। किन्तु मुझे यह जानकर ताज्जुब हुआ कि एक मुसलमान जो कि साठ सालों से हुक्का पीता था यह कहकर कि जब मेरा मालिक तमाखू नहीं पीता है, मैं कैसे पी सकता हू, तमाखू छोड देता है। जब वह मुसलमान दुबारा मुझे

से मिला तब कहने लगा कि महाराज आपके उपदेश से मैंने हुक्का पीना क्या छोड़ दिया है गोया एक बीमारी छोड दी है ।

बीड़ी न पीने से रोग रहता है । यदि यह बात ठीक मानी जाय तो बहोरे लोग जोकि बीडी नहीं पीते हैं, क्या रोगी रहते है ? मारवाड में विश्नोई जाति लोग रहते हैं, जो न मांस खाते, न दारू पीते, न बीडी ही पीते है वे बडे तन्दुरुस्त रहते हैं ! वे फुरसद के समय पुस्तकें पढ़ते हैं । किसी भी दुर्व्यसन में नही फसते । इससे वे बडे सुखी हैं ।

कहने का मतलब यह है कि आप लोग दुर्व्यसन त्यागो ! यह न सोचो कि हमारा नाम तीर्थ में लिखा हुआ ही है अब हम चाहे जैसे काम किया करें । यह विचार करो कि यदि हम ऐसे दुर्व्यसन को भी न त्यागेंगे तो श्रावक नाम कैसे धरायेंगे । आज मै इस विषय पर थोडाही कहता हू । बीडी तमाखू पर एक स्वतन्त्र और पूरा व्याख्यान हो सकता है ।

महाराजा विश्वसेन का ध्यान दासी की आवाज से नही टूटा । दासी की हिम्मत इससे अधिक कुछ करने की नहीं हुई । वह महारानी के पास चली गई । महारानी ने पूछा कि आज महाराजा कहाॅ व्यस्त है ? दासी ने उत्तर दिया कि आज महाराजा बडे गभीर बने बैठे हैं । आज की तरह गभीर बने हुए महाराजा को मैंने कभी नहीं देखा । मैं उन का ध्यान भंग न कर सकी । यदि उनका ध्यान भग करना है तो आप स्वय पधारिये। आप उनकी अर्धाङ्गिना हैं अत' आपको अधिकार है कि आप उनका ध्यान भी भग कर सकती हैं । मुझ दासी से यह काम नहीं हो सकता ।

यह बात सुन कर महारानी सोचने लगी कि अवश्य आज महाराजा किसी गहरे विचार सागर में डूबे हुए हैं । किसी नये मसले पर विचार करते होंगे । उनकी ध्यान मुद्रा को देखकर दासी इतनी चकित हो गई है ।

इस प्रकार विचार कर महारानी स्वय महाराजा के पास चली गई । वे गर्भवती हैं फिर भी इस नियम को नहीं तोडा कि पति के जीमाये बिना पत्नि नही जीम सकती । गर्भवती होने के कारण रानी भूखी भी नहीं रह सकती थी । यदि उनका खुद का प्रश्न होता तो वे भूखी भी रह सकती थी किन्तु गर्भ के भूखा रहने का प्रश्न था । गर्भ का भोजन माता के भोजन पर निर्भर होता है । और गर्भ को भूखा नहीं रखा जा सकता था ।

यहाॅ पर इस प्रसग में मै कुछ कहना आवश्यक समझता हू । मै तपस्या का पक्षपाती हू । लेकिन गर्भवती स्त्री तप करती है यह में ठीक नही

गर्भ का भोजन माता के भोजन पर निर्भर होता है। जब माता भूखी होती है तब गर्भ को भी भूखा रहना पडता है। वैद्यक शास्त्र में कहा है कि गर्भ की माता प्रथम पहर में नहीं खाती लेकिन द्वितीय पहर का उल्लघन नहीं कर सकती। इसके उपरान्त गर्भवती के भूखी रहने से गर्भ पर उससे दया नहीं हो सकती। प्रथम अहिंसा व्रत मे '**भत्तपाण वुच्छेए**' अर्थात् भोजन और पानी का विच्छेद करना-अन्तराय डालना अतिचार कहा गया है। यदि गर्भवती तपस्या करके भूखी रहेगी तो बलात् गर्भ को भी भूखे रखना पडेगा और इस तरह वह गर्भ पर दया नहीं कर सकती। आप लोग सवत्सरी का उपवास करते हैं। क्या उस दिन घरमें रही हुई गाय को भी उपवास कराते हैं या घास डालते हैं ? स्वय चाहे उपवास करो किन्तु गाय को तो घास डालते ही हो। यदि गाय को घास न डालो तो '**भत्तपाण वुच्छेए**' नामक अतिचार लगेगा। और इस प्रकार दया का लोप होगा। गर्भवती को भूखा रहने से गर्भ को भूखा रहना पडेगा और इस तरह गर्भ की दया न रहेगी। भगवती सूत्र में कहा है कि गर्भ का भोजन वही है जो माता का भोजन है। अतः गर्भवती को तपस्या करके गर्भ को भूखा नहीं रखना चाहिए।

महारानी अचिरा महाराज के पास गई। उसने देखा कि महाराज ध्यान मग्न है। उसने कहा, मेरी सखी ठीक ही कहती थी और ऐसी अवस्था में उसकी क्या हिम्मत हो सकती थी कि वह महाराजा का ध्यान भग करती। रानी ने अपने अधिकार का खयाल करके कहा कि हे महाराज ! आज आप इस प्रकार ध्यानमग्न अवस्था में क्यो बैठे हुए हैं। किस बात की चिन्ता में लीन है। चिन्ता का क्या कारण है। यदि चिन्ता का कोई कारण है तो वह मुझे बताइये और यदि कारण नहीं है तो चलिये भोजन करिये। भोजन का समय हो चुका है।

महारानी की बात सुन कर महाराज का ध्यान भग हुआ। महारानी को देख कर उन्होंने सोचा कि महारानी नीचे खडी रहे और मैं सिंहासन पर बैठा रहू यह ठीक नही है। उसी समय उन्होंने भद्रासन मंगवाया और उस पर महारानी को बिठाया।

जिस घर में पति पत्नी को और पत्नी पति को आदर सत्कार नहीं देते, समझ लेना चाहिए कि उन्होंने लग्न का महत्व नही समझा है। जहा पारस्परिक आदर सत्कार देने का साधारण नियम भी न पाला जाता हो वहां अन्य नियमों की बात ही क्या करना।

ससार का सब के बडा पाया लग्न पद्धति । लेकिन आज इस पद्धति की क्या दुर्दशा हो रही है ।

महाराज ने कहा कि आज मैं किसी विचार में डूब गया था । अतः भोजन करने का भी खयाल न रहा । कहिये आपने तो भोजन कर लिया है न ! महारानी ने कहा, क्या मैं आपके पूर्व ही भोजन कर लेती । महाराजा ने कहा—हॉ, आप गर्भवती हैं । अतः आपको भूखी न रहना चाहिए । हम पुरुष हैं । हम पर राज्य के अनेक कठिन कामों का बोझा है । आप स्त्री हैं और आप पर गर्भ रक्षा का बड़ा भारी बोझा है । इसकी हर प्रकार रक्षा करना आपका कर्तव्य है । निमित्तिये ने कहा था कि आपके गर्भ में महापुरुष हैं । अत आपको भूखी न रहना था ।

महाराजा की बात के उत्तर में महारानी ने कहा कि मेरे गर्भ में महापुरुष है तो इसकी चिन्ता आपको भी तो होनी चाहिए । न मालूम आज आप किस चिन्ता में पडे हुए हैं । अपनी चिन्ता का कारण मुझे भी तो बताइये । महाराजा ने कहा कि हे रानी ! आज मुझे बहुत बडी चिन्ता हो रही है । '**प्राण जाय पर प्रण नहीं जाई**' के अनुसार आज मुझे बर्ताव करना है । मुझे प्रजा की रक्षा करने विषयक चिन्ता है । आप इस चिन्ता का कारण जानने के उलझन में न पडो । पहले जाकर भोजन करलो । रानी ने उत्तर दिया कि हे महाराज ! जिस प्रकार प्रजा रक्षा के नियम पर आप अटल हैं उसी प्रकार मैं भी आपके भोजन किए बिना भोजन न करने के नियम पर अटल हू । आप को प्रजा रक्षा की चिन्ता है मगर कृपा कर के मुझे भी यह बतलाइये कि किस बात के कारण चिन्ता है । रानी का आग्रह देखकर महाराजा विश्वसेन असमञ्जस में पड़गये । कुछ देर सोच कर बोले कि महारानी ! मेरे राज्य में महामारी रोग फैला हुआ है और प्रजा मर रही है । प्रजा में बहुत भय छाया हुआ है । कौन कब मर जायगा इस का कुछ भी विश्वास नहीं है । सारी प्रजा में त्राहि त्राहि मची हुई है । अतः मैंने प्रतिज्ञा ली है कि जब तक प्रजा का यह कष्ट दूर न होगा, मैं अन्न जल ग्रहण न करूगा । महारानी ने उत्तर दिया कि जो प्रतिज्ञा आपकी है वह मेरी भी है । मैं आपकी अर्धाङ्गना हू । जो पुरुष स्त्री की शक्ति को विकासित नहीं होने देता वह अपनी ही शक्ति का ह्रास करता है । स्त्री को पतिपरायणा और धर्मनिष्ठ बनाने के लिए पति को भी कुछ त्याग करना पडता है । पति को नियमोपनियम का पालन करना पड़ता है ।

महारानी ने कहा—मैं केवल भोजन करने के लिए ही अर्धाङ्गना नहीं हू । किन्तु

आपके कर्तव्य में हिस्सा बटाने के लिए रानी हू। जो जबाबदारी आपके सिर पर है वह मेरे सिर पर भी है। सीता को वनवास करने के लिए किसी ने नही कहा था। न सीता पर वनवास करने की जिम्मेवरी ही थी। फिर भी सीता वन गई थी। क्योंकि उन्होंने यह अनुभव किया था कि जो जबाबदारी मेरे पति पर है वह मुझ पर भी है। अतः जिस प्रजा को आप पुत्रवत् मानते हैं वह मेरे लिए भी पुत्रवत् है। जो प्रतिज्ञा आपने ली है वह मेरे लिए भी है।

रानी का कथन सुनकर महाराजा ने कहा कि महारानी आप गर्भवती हैं। आपके लिए अन्न जल त्यागना ठीक नहीं है। रानी ने कहा आप चिन्ता मत करिये। अब प्रजा पर आई हुई आफत गई ही समझिये। रानी के मन में कुछ विचार आये। उन विचारों के सम्बन्ध में कहने का समय नहीं है। इतना अवश्य कहता हू कि लोग बाहरी बातों का विचार करते हैं और बाहरी बातें ही देखते हैं। किन्तु खयाल करना चाहिये कि बाहरी बातों के सिवाय आन्तरिक बातें भी हैं और उनका प्रभाव बहुत अधिक है। उन पर विचार करना चाहिये।

'अब आप प्रजा में से रोग गयाही समझिये' कहकर रानी ने स्नान किया और हाथ में जल पात्र लेकर महल पर चढगई। उस समय उनकी आखों में अपूर्व ज्योति थी। वे हाथ में जल लेकर कहने लगी कि यदि मैंने यावज्जीवन पतिव्रता धर्म का पालन किया हो, मेरे गर्भ में महापुरुष हो, तथा मैंने कभी झूठ कपट का सेवन न किया हो तो हे रोग! तू मेरे पति की रक्षा के लिए गर्भस्थ बालक के प्रभाव से चला जा। यह कह कर रानी ने पानी छिड़का। रानी के द्वारा पानी छिड़कते ही प्रजा में से रोग-महामारी चली गई।

महारानी ने जो पानी छिडका था उसमें महामारी को भगाने की शक्ति नहीं थी। यह शक्ति रानी के शील में थी। पानी कोई भी छिड़क सकता है। पानी छिडकने मात्र से से रोग नहीं चले जाते। पानी छिड़कने के पीछे सदाचार की शक्ति चाहिये। सुना है कि महाराना प्रताप का भाला उदयपुर में रखा है। दो आदमियों के उठाने से वह उठता है। वह भाला प्रताप का है। उसके उठाने के लिए प्रताप की सी शक्ति चाहिए। इसी प्रकार पानी के साथ भीतर के पानी की भी जरूरत है।

पानी के छींटे डालकर महारानी चारों ओर महाशक्ति की तरह देखने लगी। चारों

ओर देखती हुई वे उस तरह ध्यान मग्न हो गई जिस तरह राजा हुए थे। रानी इस प्रकार ध्यान मग्ना थीं कि इतने में लोगों ने महाराजा से आकर कहा कि महामारी के रोगी अच्छे होगये हैं और अब प्रजा में शाति बरत रही है। राजा विचार कर रहे थे कि रानी गर्भवती है अतः भूखे रखने से गर्भ को न मालूम क्या होगा किन्तु यह समाचार सुनकर प्रसन्न हुए और गर्भस्थ आत्मा का ही यह चमत्कारिक प्रभाव है, ऐसा माना। रानी के गर्भ में रहे हुए महा-पुरुष के प्रताप से ही प्रजा में शांति छायी है। महाराजा ऐसा सोच रहे थे कि इतने में दासी ने आकर कहा कि महारानी देवी या शक्ति की तरह महल के ऊपर खड़ी है। इस समय की उनकी मुद्रा के विषय में कुछ कहा नही जा सकता। दासी से यह समाचार सुनकर महाराजा रानी के पास दौड़े गये और कहने लगे कि हे देवि! अब क्षमा करो। अब प्रजा में शाति है। आपके प्रताप से सब रोग दूर हो गये हैं।

बन्धुओं! राजा रानी को इस प्रकार बढ़ावा देते है, उनकी कदर करते हैं। आप लोगों के घरों में इसके विपरीत तो नही होता है न! ज्ञातासूत्र में मेघकुमार के अधिकार में यह पाठ आया है कि "उरालेणं तुमे देवी सुविणे दिट्ठे" आदि। मेघकुमार की माता स्वप्न देखकर जब पतिदेव को सुनाने गई थी तब उनके द्वारा कहे हुए ये प्रशसा वचन हैं। स्त्री और पुरुष को परस्पर किस प्रकार ऊची सभ्यता से बर्ताव करना चाहिए उसका यह नमूना है। शास्त्र में पारस्परिक बर्ताव में कैसी सभ्यता दिखानी चाहिए शिक्षा दी हुई है। यदि शास्त्र ठीक ढग से सुनाये और सुने जाय तो बहुत कुछ सुधार हो सकता है। मेघकुमार के पिता ने कहा कि हे रानी तुमने जो स्वप्न देखे हैं वे बहुत उदार, सुखकारी तथा मगलकारी है। इन स्वप्नों के प्रताप से तुम को राज्य और पुत्र का लाभ होगा। रानी को लाभ होने से राजा को लाभ है ही। फिर भी ऐसा न कहा कि मुझे लाभ होगा। किन्तु यह कहा कि रानी तुम्हे लाभ होगा।

महाराजा विश्वसेन ने प्रजा में शान्ति होने का सारा यश रानी के हिस्से में ही बताया और स्वय यश के भागी न बने। रानी चलो, अब भोजन करें। रानी ने कहा महाराज इस प्रकार बड़ाई करके मुझ पर बोझा क्यों डाल रहे हैं। मै तो आपके पीछे हू। आपके कारण मै रानी कहाती हू। मेरे कारण आप राजा नही कहलाते। जो कुछ हुआ है वह सब आप के ही प्रताप से हुआ है। मुझ में जो शील की शक्ति है वह आपकी प्रदान की हुई है। आप मुझ पर इस प्रकार बोझा न डालिये। इस प्रकार दोनों एक दूसरे को यश का भागी बनाने लगे। ऐसे घर में ही महापुरुष जन्म धारण करते हैं।

पुन. राजा कहने लगे। हे रानी यदि मेरे प्रताप से प्रजा में शान्ति हुई होती तो जब मै ध्यानमग्न होकर बैठा था तब क्यों नहीं हुई। अतः जो कुछ हुआ है वह मेरे प्रताप नहीं किन्तु तुम्हारे प्रताप से हुआ है। आप साक्षात् शक्ति हैं। आपके कारण ही यह सब आनन्द हुआ है। राजा की दलील के उत्तर में रानी ने कहा कि शक्ति शिव की ही होती है। आप शिव हैं तभी मै शक्ति बन सकी हू। अतः कृपया मुझ पर यह बोझा न डालिये।

राजा ने कहा-अच्छा, अब मेरी तुम्हारी दोनों की बात रहने दो। इस प्रकार इस बात का अन्त न आयेगा। एक दूसरे को यश प्रदान करने का यह गेंद का सा खेल ऐसे समाप्त न होगा। जैसे गेंद दूसरे को दी जाती है उसी प्रकार यह यश किसी तीसरी शक्ति को दे डाले। इस कीर्ति का भागी तुम हम नहीं है किन्तु तुम्हारे उदर में विराजमान महा-पुरुष है। उस महापुरुष के प्रताप से ही प्रजा में शान्ति हुई है। यह सब यश हम हमारे पास न रखकर उस महापुरुष को समर्पण कर हलके बन जाय।

महाराजा और महारानी की तरह आप लोग भी सब यशः कीर्ति परमात्मा को सौंप दो। अपने लिए न रखो। यदि आप ऐसा करें कि हे प्रभो! जो कुछ है वह सब आप ही का है तो कितना अच्छा रहे। विचार इस बात का करना चाहिये कि परमात्मा को अच्छे काम समर्पण करने या बुरे। अच्छे कामों का परिणाम सुनकर मनुष्य को गर्व आ जाता है कि मैंने ऐसा किया है अतः अच्छे कामों का फल ईश्वर के समर्पण कर देना चाहिए। बुरे कामों की जिम्मेवारी खुद पर लेनी चाहिए ताकि भविष्य में बुराई से बचें।

महाराजा की बात सुनकर महारानी ने कहा कि अच्छी बात है जो कुछ शुभ हुआ है वह गर्भ के प्रताप से ही हुआ है। जिसका ऐसा प्रताप है उसका जन्म होने पर क्या नाम रखना चाहिये। राजा ने कहा उस प्रभु के प्रताप से राज्य में शान्ति हुई है अतः शान्तिनाथ नाम रखना बहुत उपयुक्त है। वैसे संसार में जितने भी अच्छे २ नाम हैं वे सब परमात्मा के ही नाम हैं। आपने भगवान् शान्तिनाथ को पहचाना है या नहीं? भगवान् शान्ति नाथ को मारवाड़ की इस कहावत के अनुसार तो नहीं जाना है कि **"शान्तिनाथ सोलमा, लाडू देवे गोलमा, कृपा करे तो कसार का, दया करे तो दाल का,, मीठा मोती-चूर का, लेरे भूंडा लट, उतर जाय गट"**। इस प्रकार सासारिक कामना के लिए भगवान् के नाम का प्रयोग करना ठीक नहीं है। खुद की और संसार की वास्तविक शान्ति के लिए भगवान् का नाम का प्रयोग करना चाहिये। अपनी की हुई सब अच्छाइयां परमात्मा

के समर्पण करनी चाहिये और सकल संसार की शान्ति की कामना करनी चाहिये। आप दूसरों के लिये शान्ति चाहेंगे तो आपको खुद को शान्ति जरूर मिलेगी। महाराज विश्वसेन ने प्रजा को शान्ति पहुचाने के लिए कष्ट सहन किये तो उनको खुद को भी शान्ति प्राप्त हुई है। भक्त भगवान् से यही चाहता है:—

नत्वहं कामये राज्यं, न स्वर्गं ना पुन र्भवम्।
कामये दुःख तप्तानां, प्राणि नामार्ति नाशनम्॥

अर्थः—हे परमात्मन्! मुझे राज्य नहीं चाहिये, न स्वर्ग और न अपुनर्भव। दुःख से तपे हुए प्राणियों के दुःख दूर करने की शक्ति चाहता हू।

"अपने सब दुःखों को सह लूं, परदुःख सहा न जाय" यह चाहता हूँ। परमात्मा की प्रार्थना करने का यही रहस्य है। उसके दरबार में से यही भिक्षा मांगना चाहिए। भगवान् शान्तिनाथ की प्रार्थना यही बात सीखाती है।

राजकोट
५—७—३६ का
व्याख्यान



सूत्रारम्भ में मंगल



"कुन्थु जिनराज तू ऐसो नहीं कोई देव तों जैसो………। "



यह भगवान् कुन्थुनाथ की प्रार्थना की गई है। भगवान् की प्रार्थना हम हमारी बुद्धि के अनुसार करें चाहे पूर्व के महात्माओं द्वारा मागधी भाषा में जिस प्रकार प्रार्थना की गई है तदनुसार करें, एक ही बात है। आज मैं उन्हीं विचारों को सामने रखकर प्रार्थना करता हूँ जो पूर्व के महात्माओं ने प्राकृत भाषा में कहे हैं। शास्त्रानुसार परमात्मा की प्रार्थना करना ही ठीक है। शास्त्र में प्रत्येक स्थल पर परमात्मा की प्रार्थना ही है, ऐसा मैं मानता हूँ। मेरी इस मान्यता से किसी का मतभेद भी हो सकता है लेकिन पूरी तरह से विचार करने पर कोई मतभेद नहीं रह सकता। अर्हन्तों के द्वारा कहे हुए द्वादशांगी में से जो ग्यारह अंग इस समय मौजूद हैं, उन में परमात्मा की प्रार्थना ही भरी हुई है। आत्मा से परमात्मा बनने के उपाय ही तो शास्त्रों में वर्णित हैं। आत्म स्वरूप का वर्णन प्रार्थना रूप ही है। भगवान् महावीर ने जगत् कल्याण के लिए निर्वाण से पूर्व जो सब से अन्तिम वाणी कही है वह (उत्तराध्ययन) के नाम से प्रसिद्ध है। इस उत्तराध्ययन सूत्र को यदि

समस्त जैन शास्त्रों का सार कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। इस में छत्तीस अध्ययन हैं।

सारे उत्तराध्ययन सूत्र को क्रमशः आद्योपान्त पढने में बहुत समय की आवश्यकता होती है। अकेले उत्तराध्ययन के लिए यह बात है तो समस्त द्वादशागी वाणी के लिए बहुत समय शक्ति और ज्ञान की आवश्यकता है। भगवान् की समस्त वाणि को समझाना और समझना हमारी शक्ति के बाहर है। हमारी शक्ति गागर उठाने की है। सागर उठाने की हमारी शक्ति नहीं है। हमारा सद्भाग्य है कि पूर्वाचार्यों ने हम अल्प शक्ति वाले लोगों के लिए भगवान् की द्वादशागी वाणी रूपी सागर को इस उत्तराध्ययन रूपी गागर में भर दिया है। इस गागर को हम उठा सकते हैं, समझ सकते है पूर्व के उपकारी महात्माओं ने यह प्रयत्न किया है मगर शास्त्रों को समझने की असली कुंजी हमारी आत्मा में है। शास्त्र तो निमित्त कारण है। कागज और स्याही के लिखे होने से जड़ वस्तु है। शास्त्र समझने का वास्तविक कारण–उपादान कारण हमारी आत्मा है। उदाहरण के लिए, सब लोग पुस्तकें पढ़ते है किन्तु जिनका हृदय विकासित हो, पूर्व भव के निर्मल संस्कार हो, उन्हीं की समझ में पुस्तकों में रही हुई गूढ बातें आती हैं। हर एक को समझ नहीं पडती। इसी बात को ध्यान में रख कर कक्षा–दर्जा के अनुसार पुस्तकें बनाई जाती है। सातवीं कक्षा में पढाई जाने वाली पुस्तक यदि पहले दर्जे वाले विद्यार्थी को पढाई जाय तो उसकी समझ में कुछ न आयगा।

कारण कि प्रथम कक्षा के विद्यार्थी का दिमाग अभी उतना विकसित नहीं हुआ है। यही बात शास्त्र के विषय में भी है। जिसकी बुद्धि का जितना विकास हुवा होगा उतना ही उसे शास्त्र ज्ञान हासिल हो सकता है। शास्त्र समझने का असली उपादान कारण आत्मा है और जिसका आत्मा जितना निर्मल-वासना रहित होगा उतना ही वह समझ सकेगा। हृदय में धारण करके आचरण में भी उतार सकेगा।

समस्त उत्तराध्ययन का वर्णन करना, उसमें रहे हुए गूढ विषयों का भावार्थ समझाना बहुत कठिन है। समय भी अधिक चाहिये सो नहीं है अतः उत्तराध्ययन के वीसवें अध्ययन का वर्णन किया जाता है।

यह बीसवाँ अध्ययन इस जमाने के लोगों के लिए (नौका) समान है। मानव हृदय में जितनी भी शकाए उठती हैं उन सब का समाधान इस अध्ययन में है, ऐसी मेरी

धारणा है। इस अध्ययन का वर्णन मैंने पहले बीकानेर में किया था अतः अब पुनः वर्णन करने की जरूरत नहीं है। किन्तु मेरे सन्तों का आग्रह है कि उसी अध्ययन का यहा भी-पुनः विवेचन किया जाय। सन्तों के कहने से मैं इसपर व्याख्यान प्रारम्भ करता हू। इस अध्ययन को आधार बनाकर मै कुछ कहना चाहता हू।

उन्नीसवें अध्ययन में मृगापुत्र का वर्णन है। उस में कहा गया है कि साधु महात्माओं को वैद्य डाक्टरों की शरण में न जाकर अपनी आत्मा का ही सुधार करना चाहिए। आत्मा का हा सुधार करना या जगाना इसका अर्थ यह नही है कि स्थविर कल्पी साधु वैद्य डाक्टरों की सहायता न ले। स्थविर कल्पी साधु वैद्य डाक्टरों की सहायता ले सकते हैं मगर यह अपवाद मार्ग है। शारीरिक बीमारी मिटाने के लिए दवा दारु देना उत्सर्ग मार्ग नहीं है। उत्सर्ग मार्ग तो यही है कि सिवा भगवान् या अपनी आत्मा या अन्य किसी की सहायता न लेकर आत्म जागृति में ही तल्लीन रहे। इस बीसवें अध्ययन में इसी बात का वर्णन है कि साधु वैद्यों की शरण न ले। वैद्य या अन्य कुटुम्बी कोई भी इस आत्मा का त्राण करने में समर्थ नही है। इस अध्ययन मे यह बताया गया है कि आत्मा में बहुत शक्ति रही हुई है। भूतकाल मे आत्मा कैसी भी स्थिति में रहा हो, वर्तमान में कैसी भी स्थिति में हो और भविष्य में भी कैसी भी स्थिति में रहे इस बात की चिन्ता नहीं किन्तु इस स्थिति का यदि त्याग कर दिया जाय तो आत्मा में अनन्त शक्ति का विकास हो सकता है और वह सब कुछ करने में समर्थ भी हो सकता है।

इस बीसवें अध्ययन में जो कुछ कहा हुआ है उस सब का सार यह है कि खुद के डाक्टर खुद बनो। ऐसा करने से किसी का आसरा (शरण) लेने की आवश्यकता न रहेगी। आत्मा की शक्ति से आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार के ताप—कष्ट दूर हो सकते है। त्रयताप के विनाश हो जाने पर आत्मा में किसी प्रकार का सन्ताप नहीं रहता। ससार का कोई भी प्राणी सन्ताप नही चाहता। कोई भी आत्मा अशान्ति नही चाहता। सब कोई शान्ति चाहते है। किन्तु शान्ति प्राप्त करने के लिए किस प्रकार के प्रयत्न अब तक किये हैं, यह शास्त्रीय दृष्टि से देखना चाहिए। हमारे प्रयत्नों में क्या कमी है कि जिससे चाहने पर भी सुख शान्ति हम से दूर भागती है।

इस बीसवें अध्ययन का वर्णन किस प्रकार किया गया है यह बताते हुए मै इसी अध्ययन की प्रथम गाथा द्वारा परमात्मा की प्रार्थना करता हू।

सिद्धाणं नमो किच्चा, संजयाणं च भावओ।
अत्थ धम्म गइं तच्चं, अणुसिट्ठिं सुणेह मे।

यह मूल सूत्र है।

गुरु शिष्य से कहते हैं कि मैं तुम्हें शिक्षा देता हू। तुम्हे मुक्ति का मार्ग बताता हूँ। किन्तु यह कार्य मैं अपनी शक्ति पर ही भरोसा रख कर नहीं करता। सिद्ध और सयतियों को नमस्कार करके, उनकी शरण लेकर, उनके आधार पर यह काम करता हू।

वैसे तो जहाँ का मार्ग पूछा जाता है वहीं का मार्ग बताया जाता है किन्तु यहा मुक्ति का मार्ग बताया जाता है। गुरु कहते हैं कि मैं अर्थ धर्म का मार्ग बताता हू। पहले अर्थ का--अर्थ समझ लेना चाहिए।

अर्थ्यते प्रार्थ्यते धर्मात्मभिरिति अर्थ। स च प्रकृते मोक्ष',
संयमादिर्वा। स एडु धर्मः। तस्य गतिः ज्ञानम्
यस्यां तां अनुशिष्टिं मे शृणुत इत्यर्थः॥

अर्थः—धर्मात्मा लोगों के द्वारा जिसकी चाहना की जाय वह अर्थ है। यहा अर्थ से मतलब मोक्ष या सयम से है। मोक्ष या सयम ही धर्म है। उसकी गति या मार्ग ज्ञान है। उस ज्ञान का वर्णन मुझ से सुनो।

जिसकी इच्छा की जाय उसे अर्थ कहते हैं। सामान्य-मोटी बुद्धि वाले लोग अर्थ का मतलब धन करते है। और धन के लिए ही रात दिन दौड धूप किया करते हैं। किन्तु यहा अर्थ का मतलब धन नहीं है। आप लोग मेरे पास धन लेने नहीं आये है। धन का मैं कतई त्याग कर चुका हू। धन के अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु आप चाहते हैं। और वही ग्रहण करने के लिए यहां आये हो। कदाचित् किसी गृहस्थ की यह मशा हो सकती है कि महाराज के व्याख्यान श्रवण करने से या किसी अन्य बहाने से धन मिल सकता है किन्तु ये सन्त और सतियाँ जो यहा आये हुए है किसी भौतिक पौद्गलिक चाहना से नहीं आये हैं किन्तु परमार्थ की भावना से आये है। सन्त और सतिया आई है इसी से मालूम होजाता है कि अर्थ का अर्थ धन नही किन्तु कोई अन्य वस्तु है। वह अन्य वस्तु मुक्ति से जुदा नही हो सकती। मुक्ति संसार के बधनों से छुटकारा पाने की इच्छा-ही वास्तविक अर्थ है।

जिसकी इच्छा की जाय वह अर्थ है। किन्तु इस में इतना और बढा देना चाहिए कि धर्मात्मा लोग जिसकी इच्छा करें वह अर्थ है। धर्मात्मा लोग धर्म की ही इच्छा करते हैं। अतः सिद्ध हुआ कि यहा अर्थ का मतलब धर्म है। आगे और स्पष्ट कहा है कि धर्म रूपी अर्थ में जिससे गति होती है वह शिक्षा देता हू। धर्म रूपी अर्थ में ज्ञान से गति होती है। ज्ञान द्वारा ही धर्म रूपी अर्थ प्राप्त किया जा सकता है। अतः सारे कथन का यह भावार्थ निकलता है कि मै ज्ञान की शिक्षा देता हू। ज्ञान प्रकाश है और अज्ञान अधकार। ज्ञान रूपी प्रकाश से आत्मदेव के दर्शन सुलभ हैं।

ज्ञान का अर्थ भी बडा लम्बा होता है। ससार-व्यवहार का ज्ञान भी ज्ञान ही कहलाता है। आधुनिक भौतिक विज्ञान भी ज्ञान ही है। किन्तु यहां कहा गया है कि धर्म रूपी अर्थ मे गति कराने वाले तत्त्व का ज्ञान देता हू। अर्थात् ससार प्रपच का ज्ञान नहीं देता किन्तु तत्त्व का ज्ञान देता हूं। यह ज्ञान शिष्य में भी मौजूद है मगर जागृत अवस्था में नहीं है, दबा हुआ है। उस छिपे हुए ज्ञान को मै प्रकट करने की कोशिश करूंगा। शिक्षा देकर उस ज्ञान को जगाऊँगा।

दीपक में तैल भी हो और बत्ती भी हो किन्तु यदि अग्नि का सयोग न हो तो दीपक जल नही सकता। प्रकाश नही कर सकता। इसी प्रकार हर आत्मा में ज्ञान रूपी प्रकाश मौजूद है मगर गुरु अथवा महापुरुष के सत्सग बिना विकसित नहीं हो सकता। महापुरुष का सत् समागम हमारे ज्ञान को विकसित करता है किन्तु ज्ञान हमारे में ही मौजूद है। यदि हमारे में ज्ञान मौजूद न हो तो अनेक महापुरुष मिल कर भी कुछ नहीं कर सकते। ज्ञान, बीज रूप में आत्मा में विद्यमान है। महापुरुष रूपी बाह्य निमित्त कारण के मिलने से बीज वृक्ष का रूप धारण करता है और फलता-फूलता है। यदि दीपक में न तैल हो और न बत्ती हो तो दूसरे दीपक से भेंटने पर भी वह जल नहीं सकता। तैल बत्ती होने पर दूसरा दीपक सहायक हो सकता है। कहावत भी है कि खाली चूल्हे में फूक मारने से आखों मे राख ही पहुँचती है। इसी प्रकार यदि आत्मा में ज्ञान शक्ति मौजूद न हो तो महापुरुष की भेंट या उनके द्वारा दी हुई शिक्षा कुछ भी कारगर नहीं हो सकती।

यहाँ यह कहा गया है कि **"मैं शिक्षा देता हूं"**। इस से हमें समझ लेना

चाहिए कि हमारे में शक्ति विद्यमान है इसीसे आचार्य हमें शिक्षा देते हैं। ऊसर भूमि में बीज बोने का कष्ट जानबूझ कर महापुरुष नहीं करते। हमारे में अविकसित रूप में रही हुई शक्ति का विकास करने के लिए अथवा राख में दबी हुई अग्नि को गुरु ज्ञान रूपी फूंक से प्रज्वलित करने के लिए हमे गुरु की दी हुई शिक्षा बड़ी सावधानी से सुननी चाहिए।

शिक्षा देने वाले महापुरुष ने कहा है कि--मैं सिद्ध और सयति को नमस्कार करके शिक्षा देता हू। स्वय शिक्षक जिन्हें नमस्कार करता हो और बाद में शिक्षा शुरू करता हो उनका स्वरूप समझ लेना आवश्यक है। पहले सिद्ध शब्द का अर्थ समझ लेना चाहिए। नवकार मत्र में एक पद में सिद्ध को नमस्कार किया गया है और शेष चार पदों में साधु को नमस्कार किया है। अर्थात् सिद्ध और साधक दोनों को ही नमन किया गया है। यहा भी आचार्य ने सिद्ध और साधक दोनों को नमस्कार किया है।

पहले सिद्ध किसे कहते हैं यह देखलें। '**षिञ् बन्धने**' धातु से सित् शब्द बना है। इसका अर्थ यह है कि अष्ट कर्म रूपी बन्धे हुए लकडी के भारे को जिसने '**ध्मातम्**' यानी शुक्लध्यान रूपी जाज्वल्यमान अग्नि से जला दिया है वह सिद्ध है। अथवा '**षिधुगतौ**' से भी सिद्ध शब्द बन सकता है। जिस स्थान पर पहुँच कर फिर वहाँ से नही लौटना पडता, उस स्थान पर जो पहुँच गये हैं उन्हें भी सिद्ध कहते हैं।

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि सिद्ध होकर भी पुनः ससार में लौट आते हैं। जैसे कहा है:—

ज्ञानिनो धर्म तीर्थस्य, कर्त्तारः परमंपरम्।
गत्वाऽऽगच्छान्ति भूयोऽपिभवं तीर्थ निकारतः॥

अर्थात्—धर्मरूपी तीर्थ के कर्त्ता ज्ञानी लोग अपने तीर्थ का पराभव देखकर परम पद को पहुँच कर भी पुनः संसार में लौट आते हैं।

यदि सिद्धि स्थल में पहुँच कर भी वापस ससार में आ जाते हों तो वह स्थल सिद्धि ही न कहा जायगा। सिद्धि--मुक्ति तो उसे ही कहते है कि जहाँ पहुँच कर वापस नहीं लौटना पडता। कहा है—

यत्र गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।

अर्थात्—जहा जाकर वापस न आना पड़े वह परम धाम है और वही सिद्धों का स्थान है। उसे ही सिद्धि कहते हैं। जहा जाकर वापस आना पड़े वह तो ससार ही है।

व्युत्पत्ति के अनुसार सिद्ध शब्द का तीसरा अर्थ भी होता है। '**षिधु संराद्धौ**' जो कृतकृत्य हो चुके है, जिनको अब कोई काम करना बाकी न रहा है, वे भी सिद्ध कहे जाते हैं।

जैसे पकी हुई खिचडी को पुनः कोई नही पकाता। यदि कोई पकी हुई खिचडी को पकाता है तो उसका यह काम व्यर्थ समझा जाता है। इसी प्रकार जिसने सब काम कर लिए हैं और करने के लिए शेष कुछ नहीं रहा है वह सिद्ध है। इस प्रकार सिद्ध शब्द के ये तीन अर्थ हैं। शब्द एक ही है किन्तु जैसे एक शब्द में नाना घोष होते हैं उसी प्रकार एक शब्द के अनेक अर्थ भी हो सकते है।

सिद्ध शब्द का एक चौथा अर्थ भी किया जाता है। '**षिधून शास्त्रे मांगल्ये वा**' इसका अर्थ है जो दूसरों को कल्याण मार्ग का उपदेश देता है और उपदेश देकर मोक्ष को पहुचा है वह साक्षात् सिद्ध है। शासिता अर्थात् दूसरों को उपदेश देने वाला।

यदि दूसरे को उपदेश देकर मुक्ति जाने वाले को सिद्ध कहा जायगा तो अरिहन्त होकर जिन्होंने मुक्ति पाई है वे ही सिद्ध कहे जायगे अन्य नहीं। किन्तु सिद्ध तो पन्द्रह प्रकार के कहे गये है। इसके उपरान्त मूक केवली जो कि किसी को उपदेश नही देते तथा अन्तकृत् केवली जो कि अन्तिम समय में केवल ज्ञान प्राप्त कर मुक्ति पहुच जाते हैं, जिनके लिए दूसरों को उपदेश देने का अवसर ही नहीं रहता, क्या वे सिद्ध नही कहे जायगे? क्या ध्यान मौन द्वारा आत्म कल्याण करने वाले महात्मा के लिए (सिद्ध शब्द के लिए) प्रयुक्त यह शास्ता शब्द लागू नहीं होगा?

इसका उत्तर यह है कि जो महात्मा मौन रहकर जीवन व्यतीत करते हैं तथा जिन्हें उपदेश देने का अवसर ही न मिला हो, वे भी जगत् का कल्याण करते ही हैं। उनके लिए भी यह शास्ता शब्द लागू होता है। ध्यान मौन द्वारा मोक्ष प्राप्त करने वाले महात्मा भी ससार को शिक्षा देते हैं और वह शिक्षा भी महान् है। ससार को मौन शिक्षा की भी बहुत आवश्यकता है। हिमालय की गुफा में बैठकर या किसी एकान्त शान्त स्थान में ध्यानस्थ होकर एक योगी संसार को जो सहायता पहुँचाता है और उसके द्वारा जगत् का

जो कल्याण साधता है, उसकी बराबरी बहुत उपदेश झाडने वाले किन्तु आचरण शून्य व्यक्ति कभी नहीं कर सकते। यह ससार अधिकतर न बोलने वालों की सहायता से ही चलता है। मूक सृष्टि के आधार पर ही यह बोलने वाली सृष्टि निर्भर रही है। पृथ्वी पानी आदि के जीव मूक ही हैं। ये मूक जीव ही इस बोलती हुई सृष्टि का पालन करते है। इस से यह बात समझ में आ जायगी कि उपदेश न देने वाले महात्मा भी जगत् का कल्याण करते ही है। वासनाओं से रहित उनकी शान्त, दान्त और सयत आत्मा से वह प्रकाश-आध्यात्मिक तेज निकला है कि जिससे आधि व्याधि और उपाधि से सतप्त आत्माओं को अपूर्व शांति मिल सकती है।

गुरोस्तु मौनं शिष्यास्तु छिन्न संशयाः

अर्थात्—गुरु के मौन होने पर भी उनकी आकृति आदि के दर्शन मात्र से सशय छिन्न भिन्न हो जाते हैं। नास्तिक से नास्तिक शिष्य भी गुरु की ध्यानावस्थित आकृति से आस्तिक बनने के दृष्टान्त मौजूद है। अतः यह बात सिद्ध हो जाती है कि मौखिक उपदेश न देने वाले महात्मा भी जगत का कल्याण करते ही हैं। उनके आचरण से जगत बहुत शिक्षा ग्रहण करता है।

दूसरी बात सिद्ध भगवान मोक्ष गये है इसीसे लोग मोक्ष की इच्छा करते है। यदि वे मोक्ष न पहुचते तो कोई मोक्ष की इच्छा नही करता। वे महात्मा मन, वचन और काया को साध कर मोक्ष गये और इस तरह ससार के लोगों को अपना आदर्श रख कर मोक्ष का मार्ग बताया। ससार के प्राणियों में मुक्ति की ख्वाहिश पैदा की। अतः उनको शासिता कहा जा सकता है।

'**पिधून् शास्त्रे मांगल्ये वा**' में शास्ता के साथ ही साथ जो मांगलिक है वे भी सिद्ध है, कहे गये हैं। मागल्कि का अर्थ पाप नाश करने वाला होता है। **मां आर्थात् पापं गालयतीति मांगलिक**। जो पाप का नाश करने वाले हैं वे सिद्ध हैं।

यहा यह शका होती है कि जो पाप का नाश करने वाला है, वह सिद्ध है तो बडे बड़े महात्मा, जो कि पाप के नाश करने वाले थे उनको पाप का उदय कैसे हुआ? उन महात्माओं को रोग तथा दुःख कैसे हुए? गज सुकुमार मुनि के सिर पर खीरे रखे गये और भगवान् महावीर को लोहीठाण की बीमारी हुई। क्या उनमें सिद्धों की मागलिकता न थी?

बात यह है कि कष्ट पाने वाला व्यक्ति कष्ट देने वाले व्यक्ति के प्रति राग द्वेष पूर्ण भावना लाता है तब तो उसकी मागलिकता नष्ट होती है। रागद्वेष करने के कारण वह मगल रूप न रहकर अमगलरूप बन जाता है। किन्तु जो महापुरुष कष्ट देनेवाले के प्रति प्रेम की वर्षा करता है, उसके लिए सदभाव रखता है, उसके सुधार की कामना करते है, वे सदा मांगलिक ही है। गजसुकुमार मुनि ने सिर पर अग्नि के अगारे रखने वाले को मन में बड़ा उपकार माना कि इस सोमिल ब्राह्मण ने मेरी शीघ्र मुक्ति में बडी सहायता की है। तथा भगवान् महावीर ने अपने पर तेजोलेश्या फेंकने वाले गोशालक पर क्रोध नही किया था। वे मगलरूप ही बने रहे। इस प्रकार उनमें मागलिकता घटित होती है। पूर्व जन्म के वेर बदले के कारण वेदना या दुःख आदि हो सकते हैं मगर उन वेदनाओं और दुखों में जो अविचल रहता है वह सदा मागलिक है।

सिद्ध भगवान् में भाव मागलिकता है। द्रव्य मागलिकता नहीं है। आप लोग द्रव्य मगल देखते हैं। जिसमें भाव मगल हो वह द्रव्य मगल जन्य चमत्कार दिखा सकता है किन्तु सिद्धि पद को पाने वाले महात्मा ऐसा नही करते। न ऊचे पहुँचे हुए महात्मा ही चमत्कार दिखाने की झमझट में पड़ते है। वे अपनी आत्म शाति में मशगुल रहते हैं। यदि उन्हें चमत्कार दिखाने की इच्छा होती तो वे चक्रवर्ती का राज्य और सोलह २ हजार देवों की सेवा का त्याग क्यों करते और सयम क्यों लेते। चमत्कार करने वाले देव ही स्वय सेवक हो तब क्या कमी रह जाती है।

जिस प्रकार सूर्य की कोई पूजा करता है और कोई उसे गाली देता है। किन्तु सूर्य पूजा करने वाले और गाली देने वाले को समान रूप प्रकाश प्रदान करता है। वह पूजा करने वाले पर प्रसन्न नहीं होता और गाली देने वाले पर अप्रसन्न भी नहीं होता। दोनों पर सम्भाव रखता हुआ अपना प्रकाश प्रदान रूप कर्त्तव्य करता रहता है। इसी प्रकार सिद्ध भगवान् भी किसी की बुराई पर ध्यान न देते हुए सब का कल्याण रूप मगल करते हैं।

सिद्ध शब्द का पॉचवा अर्थ यह भी होता है कि जिनकी आदि तो है लेकिन अन्त नहीं है।

गुरू महाराज शिष्य से कहते हैं कि मैं ऐसे सिद्ध भगवान् को नमस्कार करके धर्मरूपी अर्थ का सच्चा मार्ग बताता हू।

सिद्ध को नमस्कार करके सूत्रकार भाव से सयति को नमस्कार करते हैं। सयति शब्द का अर्थ साधु होता है। साधु दो प्रकार के हो सकते हैं। द्रव्य साधु और भाव साधु। यहा शास्त्रकार द्रव्यसाधु को नमस्कार नहीं करते मगर जो भावसाधु हैं उन्हें नमस्कार करते है। शास्त्र के रचनेवाले गणधर चार ज्ञानके स्वामी थे फिर भी वे उनको नमस्कार करते है जो भाव से सयति हो। आजकल के साधुओं को ख्याल करना चाहिए कि यदि उनमें भाव साधुता है तो गणधर भी उनको नमन करते हैं। भाव साधुता से ही द्रव्य साधुता शोभती है। कोरा वेष शोभा नहीं देता। गुणों के साथ वेष देदीप्यमान होता है। भाव साधुता न हो तो कुछ भी नहीं है।

इस बीसवें अध्ययन में जो कुछ कहा गया है वह सब शास्त्रकार ने संक्षेप में इस पहली गाथा में ही कह डाला है। पहली गाथा में सारे अध्ययन का सार किस प्रकार दिया गया है यह बात कोई विशेषज्ञ ही समझ सकता है। केवल जैन सूत्रों के विषय में ही यह बात नहीं है किन्तु जैनेतर ग्रन्थों में भी यह परिपाटी देखी जाती है कि सूत्र के आदि में ही सारे ग्रथ का सार कह दिया जाता है।

मैंने कुरानशरीफ का अनुवाद देखा है। उसमें बताया गया है कि १२४ इलाही पुस्तकों का सार तोरत, एंजिल, जबूर और कुरान इन पुस्तकों में लाया गया और इन चारों का सार कुरान में लाया गया है। सारे कुरान का सार उसकी पहली आयत में है:——

बिस्मिल्लाह रहिमाने रहीम

सारे कुरान का सार इस एक ही आयत में कैसे समाया हुआ है। यह बात समझने लायक है, जब कि इस आयत में रहमान और रहीम दोनों आगये तब कुरान में और क्या रह जाता है? हिन्दु धर्म ग्रन्थों में भी कहा गया है कि '**दया धर्म का मूल है**'। यद्यपि इस शब्द में केवल दो ही अक्षर हैं किन्तु इसमें धर्म का सपूर्ण सार आगया है। दया में सपूर्ण धर्म का सार आगया है, यह बात कुरान, पुरान, वेद या आगम से तो सिद्ध होती ही है मगर हमारी आत्मा इसका सब से बडा प्रमाण है।

मान लीजिये कि आप एक निर्जन जगल में जा रहे हैं। वहा कोई व्यक्ति नंगी तलवार लेकर आपके सामने उपस्थित होता है और आपकी जान लेना चाहता है। उस समय आप उस व्यक्ति में किस बात की खामी अनुभव करेंगे। यही कि उस व्यक्ति में दया नहीं है। ठीक उसी वक्त एक दूसरा व्यक्ति उपस्थित होता है और आप दोनों के बीच में

होकर उस आततायी—हत्यारे से कहता है कि ऐ पापी ! इस व्यक्ति को मत मार । यदि तू खून का ही प्यासा है तो मुझे मार कर अपनी प्यास बुझाले मगर इस व्यक्ति को मत मार । कहिये यह दूसरा व्यक्ति आपको कैसा मालुम देगा । इसमें आपको क्या विशेषता नजर आयगी । आप कहेंगे यह दूसरा व्यक्ति बडा दयालु है इसमें दया बसी है इस व्यक्ति में दया है और उस व्यक्ति में हिंसा है यह बात आपने कैसे जानी । किस प्रमाण से जानी । मानना होगा कि इसमें हमारी आत्मा ही प्रमाण है । आत्मा अपनी रक्षा चाहता है अतः रक्षण और भक्षण करने वाले को वह तुरत पहचान जाती है । दया—अहिंसा आत्मा का धर्म है । यदि आपको धर्मात्मा बनना हो तो दया को अपनाइये । शास्त्र में कहा है:—

एवं खु नाणिणो सारं, जं न हिंसइ किंचणम् ।

यदि तू अधिक न जाने तो इतना तो अवश्य जान कि जैसा तेरा आत्मा है वैसा ही दूसरे का भी है । जो बात तुझे बुरी लगती है वह दूसरे को भी वैसी ही लगती है । एक फारसी कवि ने कहा है कि—

ख्वाहि कि तुरा हेच बदी न आयद पेश ।
तात्वानी बदी मकुन अज कमोबेश ॥

यादि तू चाहता है कि मुझपर कोई जुल्म न करे तो जिन्हें तू जुल्म मानता है, वे जुल्म तू स्वय दूसरों पर मत कर ।

यदि कोई आपको मार पीटकर आपके पास की वस्तु छीनना चाहे या झूठ बोलकर आपको ठगना चाहे अथवा आपकी बहू बेटी पर बुरी नजर करे तो आप उसे जुल्मी मानोगे न ? ऐसी बातें समझने के लिए किसी पुस्तक या गुरू की जरूरत नहीं होती । आत्मा स्वय गवाही दे देता है कि अमुक बात भली है या बुरी । ज्ञानी कहते हैं कि जिन कार्मों को तू जुल्म मानता है वे दूसरों के लिए मत कर । किसी का दिल न दुखाना, झूठ न बोलना, चोरी न करना, पराई स्त्री पर बुरी निगाह न करना और आवश्यकता से अधिक भोगोपभोग वस्तुए सग्रह करके न रखना ये पाच महा नियम है जिनके पालन करने से कोई जुल्मी नहीं बनता । जो बात हमें अच्छी लगती है वही दूसरे के लिए करना चाहिये यदि आप जुल्मी न बनोगे तो दूसरा भी जुल्म करना छोड देगा । इस बात को जरा गहराई से सोचिये । केवल दूसरे के जुल्मों की तरफ ही खयाल न करो, अपने आपको भी देखो । करीमा में कहा है.—

चहल साल उम्रे अज़ीजो गुजश्त।
मिजाजे तो अज हाल तिफ़ली न गश्त ॥

यानी तेरी उम्र के चालीस साल बीत गये तब भी तेरा बचपन नहीं गया। अब तो बचपन छोडकर बात समझो। जिनको तुम जुल्म या अत्याचार मानते हो वे कार्य यदि दूसरे त्यागें या न त्यागें किन्तु यदि तुम्हें धर्मी बनना है तो तुम स्वय ऐसे काम छोड दो।

कोई राजा यह कभी नही सोचता कि मैं अकेला ही राजा क्यों हू, सब लोग राजा क्यों नहीं हैं। दूसरे ने जुल्म त्यागे है या नहीं इसका विचार न करके जो बात बुरी है उसे हमें त्याग देना चाहिए।

सिद्ध या बिस्मिल्लाह कह कर किसी बात के शुरू करने का क्या अर्थ है ? क्या सिद्ध से कोई बात छिपी हुई रह सकती है ? सिद्ध का नाम लेकर कोई कार्य शुरू किया जाय, किन्तु हृदय में पाप रखा जाय, कपट पूर्वक कार्य किया जाय तो क्या सिद्ध का नाम लेना सार्थक है ? कभी नहीं। रहम और रहमान को जान लेने पर कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता।

विद्वान् लोग कहते है कि–कयामत के वक्त या और किसी वक्त जो मोमिन और काफिर पर रहम करता है वह रहमान है। वह रहमान है इसीलिए बिना भेद भाव के सब पर दया करता है कोई कह सकता है कि रहमान मोमिनों पर दया करे यह तो ठीक है मगर काफिरों पर दया कैसी ? काफिरों पर क्यों दया की जाय। इसका उत्तर यह है कि मोमिन और काफिर अपने अपने कामों से होते है। कोई हिन्दु है अतः काफिर है और कोई मुसलमान है अतः मोमिन है, यह बात नहीं है। यदि दो मुसलमान आपस में लड रहे हों और कोई तीसरा हिन्दु आकर उनकी लडाई मिटादे तो उस हिन्दु को काफिर कहा जायगा ? कदापि नहीं। और क्या लडने वाले उन दोनों मुसलमानों को मोमिन कहा जायगा ? नही। काफिर और मोमिन किसी जाति विशेष में जन्म लेने से नही होता किन्तु जिसमें रहम–दया हो, शैतानियत का अभाव हो वह मोमिनः है और जिस में रहम–दया न हो, शैतानियत हो वह काफिर है।

शास्त्र में यह कहा गया है कि—मैं कल्याण की शिक्षा देता हू। क्या यह शिक्षा केवल साधुओं के लिए ही है अथवा केवल श्रावकों के लिए ही। या सब के लिए है। जब सूर्य बिना भेद भाव के सब के लिए प्रकाश प्रदान करता है तब जिन भगवान् के लिए

सूर्यातिशायि महिमासि जिनेन्द्र लोके

हे जिनेन्द्र ! जगत् में आपकी महिमा सूर्य से भी बढकर है, इत्यादि कहा गया हो, वे भगवान् जगत् में शिक्षा देने में क्या भेद भाव कर सकते हैं अनन्त महिमा वाले भगवान् की वाणी किसी व्यक्ति विशेष के लिए न होगी। सब के लिए होगी।

सूर्य सब के लिए प्रकाश करता है फिर भी यदि कोई यह कहे कि हमें सूर्य प्रकाश नहीं देता, अन्धेरा देता है, तो क्या यह कथन ठीक हो सकता है ? कदापि नहीं। चिमगादड़ और उल्लू यह कहें कि हमारे लिए सूर्य किस काम का ? सूर्य के उदय होने पर हमारे लिए अधिक अन्धेर छा जाता है इस के लिए कहना होगा कि इस में सूर्य का कोई दोष नहीं है, वह तो सब के लिए समान रूप से प्रकाश प्रदान करता है। किन्तु यह उनकी प्रकृति का दोष है कि जिससे प्रकाश देने वाली किरणें भी उनके लिए अन्धकार का काम देती है।

सूर्य के समान ही भगवान् की वाणी सब के लाभ के लिए है। किसी की प्रकृती ही उल्टी हो और वह लाभ न ले सके तो दूसरी बात है। जिनके हृदय में अभिमान भरा हो वे लोग भगवान् की वाणी से लाभ नही उठा सकते। भगवान् की वाणि रूपी किरणें ऐसे लोगों के हृदय प्रदेश में प्रकाश नही पहुँचा सकती।

भगवान् की वाणी का सहारा और लाभ किस प्रकार लिया जा सकता है यह बात चारित्र कथन के द्वारा समझाता हू जिससे कि सब की समझ में आ जाय। चारित्र के जरिये प्रत्येक बात की समझ बहुत जल्दी पडती है। जो लोग तत्त्वज्ञान की बातें इस तरह नहीं समझ सकते उनके लिए चरितानुवाद बहुत सहायक है। यदि कोई मनुष्य अपने हाथ में रग लेकर कहे कि मेरे हाथ में हाथी है या घोड़ा है, तो सामान्य मनुष्य को इस में गतागम न पडेगी। किन्तु यदि वही मनुष्य रग में पानी डाल कर उससे हाथी या घोडा का चित्र बनाकर पूछे कि यह क्या है तो बडी सरलता से कोई भी बता सकता है कि क्या है। जो चित्र बनाया गया है वह रग ही का है। किन्तु साधारण बुद्धि वाला व्यक्ति उस रग के पीछे रही हुई कर्त्ता की शक्ति विशेष को नही पहचान सकता।

उसे रग में हाथी घोडा नहीं दिखाई दे सकता। इसी प्रकार भगवान् की वाणी जब सीधी तरह समझ में नहीं आती तब उसे समझाने के लिए चरितानुवाद का सहारा लेना पड़ता है। चरित्र प्रथमानुयोग कहा जाता है। अर्थात् प्रथम सीढी वालों के लिए यह बहुत लाभ प्रद है। मैं चरितानुयोग का कथन वहुत कठिन मानता हू, चरित्र के द्वारा सुधार भी किया जा सकता है और बिगाड़ भी। अत चरित्र वर्णन में बहुत सावधानी रखने की आवश्यक्ता है।

धर्म की गूढ बातें समझाने के लिए चरित्र वर्णन करता हू। इस चरित्र के नायक साधु नही किन्तु एक गृहस्थ हैं जो अपनी पिछली अवस्था में साधु बने हैं। गृहस्थ के चरित्र का वर्णन करके महापुरुषों ने यह बता दिया है कि गृहस्थ भी कितने ऊचे दर्जे तक धर्म का पालन करते हैं। साधुओं को, ग्रहण किये हुए पच महाव्रत किस प्रकार पालन करने चाहिए यह इस से शिक्षा लेनी होगी। चरित्र नायक का नाम सेठ सुदर्शन है मेरी इच्छा इन्ही के गुणानुवाद करने की है अत आज से प्रारभ करता हू।

सिद्ध साधु को शीश नमा के, एक करूं अरदास।
सुदर्शन की कथा कहूं मैं, पूरो हमारी आस॥
धन सेठ सुदर्शन, शीयल शुद्ध पाली, तारी आतमा॥

धर्म के चार अग हैं। दान, शील, तप और भावना। चारों का वर्णन एक साथ नही किया जा सकता अत कथा द्वारा शील का कथन किया जाता है। शील के साथ २ गौण रूप से दान तप और भाव का भी कथन रहेगा किन्तु मुख्य कथा शील की है। जैसे नाटक दिखाने वाले यह कहते हैं कि आज राम का राज्याभिषेक दिखाया जायगा। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि राज्याभिषेक के सिवा अन्य दृश्य न दिखाये जायगें। राज्याभिषेक मुख्य रूप से वताया जाता है किन्तु गौण रूप से अन्य दृश्य भी दिखाये जाते हैं। इस कथा के नायक ने मुख्यत: शील का पालन किया है अत प्रत्येक कडी में उसे धन्यवाद दिया गया है। कितनी कठिनाई के समय भी चरितनायक शील धर्म से विचलित न हुए और अपना यह आदर्श चरित्र पीछे वालों के लिए छोड़ गये है।

शील का पालन करके अनन्त जीव अपना कल्याण साध चुके हैं। उन सब के चरित्र का वर्णन शक्य नहीं है। किसी एक के चरित्र का ही वर्णन किया जा सकता है। रग से अनेक हाथी घोड़े चित्रित किये जा सकते है मगर जिस समय जितने की आवश्यकता

होती है उतने ही चित्रित किये जाते है। एक समय में एक का ही चरित्र कहा जा सकता है अतः सुदर्शन का चरित्र कहा जाता है।

साधारण तया शील का अर्थ स्त्री--प्रसग या अन्य तरीकों से वीर्यनाश न करना लिया जाता है। किन्तु यह अर्थ एकागी है। शील का पूर्ण अर्थ नहीं है। शील की व्याख्या बहुत विस्तृत है। बुरे काम से निवृत्त होकर अच्छे काम में प्रवृत्त होने को शील कहते हैं। कार्य के प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप दो अग हैं बिना प्रवृत्ति के निवृत्ति नहीं हो सकती और बिना निवृत्ति के प्रवृत्ति भी शक्य नहीं है। साधु के लिए समिति हो और गुप्ति न हो अथवा गुप्ति हो और समिति न हो तो काम नहीं चल सकता। समिति और गुप्ति दोनों की आवश्यकता है। समिति प्रवृत्ति है और गुप्ति निवृत्ति।

यदि सूर्य आपको प्रकाश न दे, पानी प्यास न बुझाये और आग भोजन न पकाये तो आप इनकी प्रशसा न करेंगे। इसी प्रकार यदि महापुरुष अपना ही कल्याण साध ले किन्तु लोक कल्याण के लिए प्रवृत्त न होंतो आप उनको वदना क्यों करने लगेंगे। महापुरुष यदि जगत् कल्याण के कार्यों में भाग न लें तो बडा गजब हो जाय। तब ससार न मालूम किस रसातल तक पहुँच जाय।

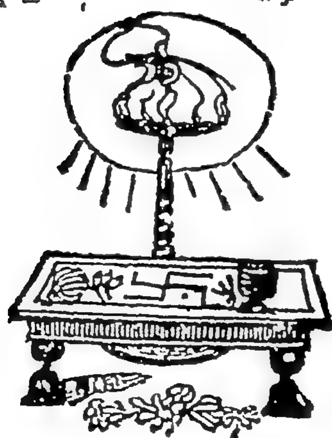
शील का अर्थ बुरे काम छोड कर अच्छे काम करना है। पहले यह देखें कि बुरे काम क्या हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, आवश्यकता से अधिक भोगोपभोग, शराब आदि का नशा तथा अन्य दुर्व्यसन ये बुरे काम हैं। बीडी, तमाखू, भग आदि नशैली वस्तुओं का सेवन भी बुरे काम में गिना जाता है। इन सब कामों का त्याग करना सक्षेप में बुराई से निवृत्त होना कहा जाता है।

दूसरे के साथ बुरा काम करना अपनी आत्मा के साथ बुराई करना है। दूसरे को ठगना अपनी आत्मा को ठगना है। अत· किसी की हिंसा न करना, किसी से झूठ बात न कहना, किसी की बहन बेटी पर बुरी निगाह न करना किन्तु मां बहिन समान समझना, नशे से तथा जुआ आदि व्यसनों से बचना, बुरे कामों से बचना है। इन बुरे कामों से बचकर दया, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि गुण धारण करना तथा खान पान में गृद्धि न रखना अच्छे कामों में प्रवृत्त होना है। पर स्त्री त्यागी भी यदि स्वस्त्री से ब्रह्मचर्य का खण्डन करता है तो वह अपूर्णशील है। जो स्व पर दोनों का त्याग करता है वह पूर्ण

शील पालने वाला है। शील की यह व्याख्या भी अधूरी है। शील की व्याख्या में पाचों महाव्रत भी आ जाते हैं।

सुदर्शन सेठ करोड़ों की सम्पत्ति वाला था। फिर भी वह किस प्रकार अपने शील व्रत पर दृढ़ रहा यह यथा शक्ति और यथावसर बताने का प्रयत्न किया जायगा। इस कथा को सुनकर जो अशुभ से निवृत्त होंगे और शुभ में प्रवृत्त होंगे वे अपनी आत्मा का कल्याण करेंगे तथा सब सुख उनके दास बन कर उपस्थित रहेंगे।

राजकोट
६—७—३६ का
व्याख्यान



महा निर्ग्रन्थ व्याख्या



चेतन भज तू अरहनाथ ने ते प्रभु त्रिभुवन राया ।



यह अठारहवें तीर्थंकर भगवान् अरहनाथ की प्रार्थना है । समय कम है अतः इस प्रार्थना पर विशेष विचार न करके शास्त्रीय प्रार्थना पर विचार करता हूँ । कल से उत्तराध्ययन का बीसवा अध्ययन शुरू किया है । इसका नाम महा निर्ग्रन्थ अध्ययन है। महान् और निर्ग्रन्थ शब्दों के अर्थ समझने है । पूर्वाचार्यों ने महान् शब्द के अर्थ बताते हुए अनेक बातें समझाई हैं । उन सब का विवेचन करने जितना समय नही है । सूत्र समुद्र के समान अथाह हैं । उनका पार हम जैसे कैसे पा सकते हैं । फिर भी कुछ कहना तो चाहिए अतः कहता हूँ ।

शास्त्रों में महान् आठ प्रकार के बताये गये हैं । १ नाम महान् २ स्थापना महान् ३ द्रव्य महान् ४ क्षेत्र महान् ५ काल महान् ६ प्रधान महान् ७ अपेक्षा महान् ८ भाव महान् । बीसवें अध्ययन में इन आठ प्रकार के महान् में से किस प्रकार का महान् कहा गया है यह जानने के पूर्व इनका अर्थ समझ लेना ठीक होगा ।

१ **नाम महान्**—जिसमें महानता का कोई गुण नहीं है किन्तु केवल नाम से महान् हो वह नाम महान् है। जैन शास्त्रों ने आरम्भ और अन्त समझाने का बहुत प्रयत्न किया है। वस्तु पहले नाम ही से जानी जाती है। मगर नाम जानकर ही न बैठ जाना चाहिए किन्तु उसका स्वरूप भी जानना समझना चाहिए।

२ **स्थापना महान्**—किसी भी वस्तु में महानता का आरोपण कर लेना स्थापना महान् है।

३ **द्रव्य महान्**—द्रव्य महान् का अर्थ समझाने के लिए यह दृष्टान्त बताया गया है कि केवल ज्ञानी अन्त समय में जब केवली समुद्घात करते हैं तब उनके कर्म प्रदेश चौदहराजू प्रमाण समस्त लोकाकाश में छा जाते हैं। उस समय उनके शरीर से निकला हुआ कार्माण शरीर रूप महास्कन्ध चौदह राजू लोक में पूर जाता है। यह द्रव्य महान् है।

४ **क्षेत्र महान्**--समस्त क्षेत्र में आकाश ही महान् है। आकाश लोक और अलोक दोनों में व्याप्त है।

५ **काल महान्**—काल में भविष्य काल महान् है। जिसका भविष्य सुधरा उसका सब कुछ सुधर गया। भूत काल चाहे जैसा रहा हो वह बीती हुई बात हो गया। अतः भविष्य ही महान् है। वर्तमान तो समय मात्र का है।

६ **प्रधान महान्**—जो प्रधान-मुख्य माना जाता है। वह प्रधान महान् है। इसके सचित्त, अचित्त और मिश्र ये तीन भेद है। सचित्त भी द्विपद, चतुष्पद और अपद के भेद से तीन प्रकार का है। द्विपद में तीर्थंकर महान् हैं। चतुष्पद में सरभ अर्थात् अष्टापद पक्षी महान् है। अपद में पुण्डरीक-कमल महान् है। वृक्षादि अपद जीवों में कमल महान् है। अचित्त महान् में चिन्तामणि रत्न महान् है। मिश्र महान् में राज्य सपदा युक्त तीर्थङ्कर का शरीर महान् है। तीर्थंकर का शरीर तो दिव्य होता ही है किन्तु वे जो वस्त्राभूषणादि धारण करते है वे भी महान् हैं। स्थापना के कारण वस्तु का महत्त्व बढ जाता है। अतः मिश्र महान् में वस्त्राभूषण युक्त तीर्थंकर शरीर है।

७ **प्रतीत्य अपेक्षा महान्**—सरसों की अपेक्षा चना महान् है और चने की अपेक्षा बेर महान् है।

८ भाव महान्—टीकाकार कहते हैं कि प्रधानता से क्षायिकभाव महान् है और आश्रय की अपेक्षा पारिणामिक भाव महान् है। पारिणामिक भाव के आश्रित जीव और अजीव दोनों हैं किसी आचार्य का यह भी मत है कि आश्रय की दृष्टि से उदय भाव महान् है। क्योंकि ससार के अनन्त जीव उदय भाव के ही आश्रित हैं। इस प्रकार जुदा जुदा मत है। किन्तु विचार करने से मालूम होता है कि आश्रय की अपेक्षा पारिणामिक भाव महान् है।। इस में सिद्ध और ससारी दोनों प्रकार के जीव आ जाते हैं। अतः प्रधानता से क्षायिक भाव और आश्रय से पारिणामिक भाव महान् है।

यहा महा निर्ग्रन्थ कहा गया है सो द्रव्य क्षेत्र आदि की दृष्टि से नहीं किन्तु भाव की दृष्टि से कहा गया है। जो महा पुरुष पारिणामिक भाव से क्षायिक में वर्तते है उनको महान कहा है।

अब निर्ग्रन्थ शब्द का अर्थ समझ लेना चाहिये। ग्रन्थ शब्द का अर्थ होता है गाठ। गाठें दो प्रकार की होती है। द्रव्य गाठ और भाव गाठ। जो द्रव्य और भाव दोनों प्रकार के बधनों से रहित होता है उसे निर्ग्रन्थ कहते हैं। द्रव्य ग्रन्थी नौ प्रकार की है और भाव ग्रन्थी १४ चौदह प्रकार की है।

कोई व्यक्ति द्रव्य ग्रन्थी अर्थात् धन दौलत स्त्री पुत्र मकानादि छोडदे किन्तु भाव ग्रन्थी अर्थात् क्रोधमानादि विकार न छोड़े तो वह निर्ग्रन्थ न कहा जायगा। निर्ग्रन्थ होने के लिये निश्चय और व्यवहार दोनों प्रकार की ग्रन्थी छोडना आवश्यक है। यह बात ठीक है कि सिद्ध पन्द्रह प्रकार के होते है और उनमे गृहलिङ्ग सिद्ध भी होते हैं जो द्रव्य परिग्रह नहीं छोडते किन्तु वे भाव की अपेक्षा से सिद्ध होते हैं। द्रव्य से तो स्वलिङ्गी ही सिद्ध होते है। जिन्होने द्रव्य और भाव दोनों प्रकार के बधन या ग्रन्थी छोड़दी है वे निर्ग्रन्थ है और जिन्होने सर्वथा प्रकार से ग्रन्थी परिग्रह का त्याग कर दिया है वे महा निर्ग्रन्थ हैं। कोई द्रव्य ग्रन्थी को छोडता है तो कोई भाव ग्रन्थी को। अतः यहा यह समझ लेना चाहिये कि जिन्हों ने दोनों प्रकार की गुत्थिया छोड दी है वे महानिर्ग्रन्थ हैं।

ऐसे महान् निर्ग्रथ के चरित्र का आश्रय ले कर गुरु शिष्य को उपदेश देते है। कहते हैं—

सिद्धाणं नमो किच्चा, सजयाणं च भावओ। इत्यादि

अर्थात्—मैं अर्थ की शिक्षा देता हू । गृहस्थ लोग अर्थ का मतलब धन करते हैं किन्तु यहा धन कमाने की शिक्षा नहीं दी जाती किन्तु सब सुखों का मूल स्रोत रूप धर्म की शिक्षा दी जाती है। निर्ग्रंथ धर्म की शिक्षा देता हू ।

आज कल के बहुत से लोग जो कोई उपदेशक आता है उसी के बन बैठते हैं । किन्तु शास्त्र कहते हैं कि तुम किसी व्यक्ति विशेष के अनुयायी नही हो । तुम निर्ग्रन्थ धर्म के अनुयायी हो । जो निर्ग्रन्थ धर्म की बात कहे उसे मानो और जो इस के विपरीत कहे उसे मत मानो । निर्ग्रन्थ धर्म का प्रतिपादन निर्ग्रन्थ प्रवचन करते है । निर्ग्रन्थ प्रवचन द्वादशागों में विद्यमान है । जो शास्त्र या ग्रन्थ द्वादश अंगों में रही हुई वाणी का समर्थन करते हैं या पुष्टि करते हैं वे निग्रन्थ प्रवचन हा है । किन्तु जो ग्रंथ बारह अंगो की वाणी का खण्डन करते हों उन में प्रतिपादित किसी भी सिद्धान्त के विरूद्ध प्ररूपणा करते हों वे निर्ग्रन्थ प्रवचन नहीं है । जो निर्ग्रन्थ प्रवचन का अनुयायी होगा वह ऐसे किसी ग्रंथ या शास्त्र को न मानेगा जो द्वादशाग वाणी से समर्थित न हो । मैं निर्ग्रंथ प्रवचन से मिलती हुई सभी बातें मानता हू चाहे वे किसी भी ग्रंथ या शास्त्र में कही गई हों । निर्ग्रन्थ प्रवचन से विरूद्ध कोई बात मानने के लिए मै तैय्यार नही हू ।

शास्त्र के आरभ में चार बातें होना जरूरी है । इन चारों बातों को अनुबन्ध चतुष्टय कहा गया है । वे चार बातें ये हैं । **१ प्रवृत्ति २ प्रयोजन ३ सम्बन्ध ४ अधिकारी** । किसी भी कार्य की प्रवृत्ति के विषय में पहले विचार किया जाता है । किसी नगर में प्रवेश करने के पूर्व उसके द्वार का पता लगाया जाता है । यदि द्वार न हो तो नगर में नही जाया जा सकता । अनुबन्ध चतुष्टय में कही गई चार बातों का विचार रखने से शास्त्र में सुख से प्रवृत्ति हो सकती है । अनुबध चतुष्टय से शास्त्र की परीक्षा भी हो जाती है। जैसे लाखों मन अनाज और हजारों गज कपडे की परीक्षा उनके नमूने से हो जाती है । शास्त्र में जो कुछ कहा जाने वाला हो उनकी बानगी प्रथम गाथा में ही बतादी जाती है जिससे वाचकों को मालूम हो जाता है कि अमुक ग्रंथ में क्या विषय होगा ।

पहले प्रवृत्ति होना चाहिए । अर्थात् यह शास्त्र वाचक को कहा ले जायगा उसका कोई उद्देश्य होना चाहिए । किस मकसद को लेकर ग्रंथ आरभ किया जाता है यह पहले बताना चाहिए । आप जब घर से बाहर निकलते हैं तब कोई न कोई उद्देश्य जरूर नक्की कर लेते हैं कि अमुक स्थान पर जाना है यह बात अलग है कि उद्देश्य भिन्न भिन्न हो

८ भाव महान्—टीकाकार कहते हैं कि प्रधानता से क्षायिकभाव महान् है और आश्रय की अपेक्षा पारिणामिक भाव महान् है। पारिणामिक भाव के आश्रित जीव और अजीव दोनों हैं किसी आचार्य का यह भी मत है कि आश्रय की दृष्टि से उदय भाव महान् है। क्योंकि ससार के अनन्त जीव उदय भाव के ही आश्रित हैं। इस प्रकार जुदा जुदा मत है। किन्तु विचार करने से मालूम होता है कि आश्रय की अपेक्षा पारिणामिक भाव महान् है।। इस में सिद्ध और ससारी दोनों प्रकार के जीव आ जाते हैं। अतः प्रधानता से क्षायिक भाव और आश्रय से पारिणामिक भाव महान् है।

यहा महा निर्ग्रन्थ कहा गया है सो द्रव्य क्षेत्र आदि की दृष्टि से नहीं किन्तु भाव की दृष्टि से कहा गया है। जो महा पुरुष पारिणामिक भाव से क्षायिक में वर्तते है उनको महान कहा है।

अब निर्ग्रन्थ शब्द का अर्थ समझ लेना चाहिये। ग्रन्थ शब्द का अर्थ होता है गांठ। गाठें दो प्रकार की होती है। द्रव्य गाठ और भाव गाठ। जो द्रव्य और भाव दोनों प्रकार के बधनों से रहित होता है उसे निर्ग्रन्थ कहते हैं। द्रव्य ग्रन्थी नौ प्रकार की है और भाव ग्रन्थी १४ चौदह प्रकार की है।

कोई व्यक्ति द्रव्य ग्रन्थी अर्थात् धन दौलत स्त्री पुत्र मकानादि छोडदे किन्तु भाव ग्रन्थी अर्थात् क्रोधमानादि विकार न छोडे तो वह निर्ग्रन्थ न कहा जायगा। निर्ग्रन्थ होने के लिये निश्चय और व्यवहार दोनों प्रकार की ग्रन्थी छोड़ना आवश्यक है। यह बात ठीक है कि सिद्ध पन्द्रह प्रकार के होते है और उनमे गृहालिङ्ग सिद्ध भी होते हैं जो द्रव्य परिग्रह नहीं छोडते किन्तु वे भाव की अपेक्षा से सिद्ध होते हैं। द्रव्य से तो स्वालिङ्गी ही सिद्ध होते हैं। जिन्होने द्रव्य और भाव दोनों प्रकार के बधन या ग्रन्थी छोडदी है वे निर्ग्रन्थ हैं और जिन्होने सर्वथा प्रकार से ग्रन्थी परिग्रह का त्याग कर दिया है वे महा निर्ग्रन्थ हैं। कोई द्रव्य ग्रन्थी को छोडता है तो कोई भाव ग्रन्थी को। अतः यहा यह समझ लेना चाहिये कि जिन्हों ने दोनों प्रकार की गुथिया छोड दी है वे महानिर्ग्रन्थ हैं।

ऐसे महान् निर्ग्रथ के चरित्र का आश्रय ले कर गुरु शिष्य को उपदेश देते है। कहते हैं—

सिद्धाणं नमो किच्चा, सजयाणं च भावओ। इत्यादि

अर्थात्—मैं धर्म की शिक्षा देता हू । गृहस्थ लोग अर्थ का मतलब धन करते है किन्तु यहा धन कमाने की शिक्षा नहीं दी जाती किन्तु सब गुणों का मूल स्रोत रूप धर्म की शिक्षा दी जाती है । निर्ग्रंथ धर्म की शिक्षा देता हू ।

आज कल के जमाने मे लोग जो कोई उपदेशक आता है उसी के बन बैठते हैं । किन्तु शास्त्र कहते हैं कि तुम किसी व्यक्ति विशेष के अनुयायी नहीं हो । तुम निर्ग्रन्थ धर्म के अनुयायी हो । जो निर्ग्रन्थ धर्म की बात कहे उसे मानो और जो इस के विपरीत कहे उसे मत मानो । निर्ग्रन्थ धर्म का प्रतिपादन निर्ग्रन्थ प्रवचन करते हैं । निर्ग्रन्थ प्रवचन द्वादशांगों में विद्यमान है । जो शास्त्र या ग्रन्थ द्वादश अंगों में रही हुई वाणी का समर्थन करते हैं या पुष्टि करते हैं वे निग्रन्थ प्रवचन ही है । किन्तु जो ग्रथ बारह अंगो की वाणी का खण्डन करते हों उन म प्रतिपादित किसी भी सिद्धान्त के विरुद्ध प्ररूपणा करते हों वे निर्ग्रन्थ प्रवचन नहीं हैं । जो निर्ग्रन्थ प्रवचन का अनुयायी होगा वह ऐसे किसी ग्रथ या शास्त्र को न मानेगा जो द्वादशाग वाणी से समर्थित न हो । मैं निर्ग्रंथ प्रवचन मे मिलती हुई सभी बातें मानता हू चाहे वे किसी भी ग्रथ या शास्त्र में कही गई हों । निर्ग्रन्थ प्रवचन से विरुद्ध कोई बात मानने के लिए मै तैय्यार नहीं हू ।

शास्त्र के आरम्भ में चार बातें होना जरूरी है । इन चारों बातों को अनुबन्ध चतुष्टय कहा गया है । वे चार बातें ये हैं । १ प्रवृत्ति २ प्रयोजन ३ सम्बन्ध ४ अधिकारी । किसी भी कार्य की प्रवृत्ति के विषय में पहले विचार किया जाता है । किसी नगर में प्रवेश करने के पूर्व उसके द्वार का पता लगाया जाता है । यदि द्वार न हो तो नगर में नहीं जाया जा सकता । अनुबन्ध चतुष्टय में कही गई चार बातों का विचार रखने से शास्त्र में सुख से प्रवृत्ति हो सकती है । अनुबध चतुष्टय से शास्त्र की परीक्षा भी हो जाती है । जैसे लाखों मन अनाज और हजरों गज कपडे की परीक्षा उनके नमूने से हो जाती है । शास्त्र में जो कुछ कहा जाने वाला हो उनकी बानगी प्रथम गाथा में ही बतादी जाती है जिससे वाचकों को मालूम हो जाता है कि अमुक ग्रथ में क्या विषय होगा ।

पहले प्रवृत्ति होना चाहिए । अर्थात् यह शास्त्र वाचक को कहा ले जायगा उसका कोई उद्देश्य होना चाहिए । किस मकसद को लेकर ग्रथ आरभ किया जाता है यह पहले बताना चाहिए । आप जब घर से बाहर निकलते हैं तब कोई न कोई उद्देश्य जरूर नक्की कर लेते हैं कि अमुक स्थान पर जाना है यह बात अलग है कि उद्देश्य भिन्न भिन्न हो

सकते हैं। किन्तु यह निश्चित है कि हर प्रवृत्ति का कोई न कोई उद्देश्य जरूर होता है। दूध दही लेने के इरादे से निकला हुआ व्यक्ति दूध दही मिलने के स्थान की तरफ जायगा और शाक भाजी के इरादे से निकला हुआ व्यक्ति शाक मार्केट की ओर जायगा। जो जिस उद्देश्य से निकला है वह उसकी पूर्ति जिधर होती है उधर ही जाता है जिसने मुक्ति पाने के लिए घर छोड़ा है वह मुक्ति की ओर जायगा अत. प्रथम शास्त्र का उद्देश्य बताया जाता है।

शास्त्र का उद्देश्य अर्थात् विषय जान लेने के बाद प्रयोजन जानना जरूरी है। इस शास्त्र के पढने से किस प्रयोजन की सिद्धि होगी यह बात दूसरे नम्बर पर है। प्रयोजन के बाद अधिकारी का विचार किया जाना है। इस शास्त्र का अध्ययन मनन करने के लिए कौन व्यक्ति पात्र है और कौन अपात्र है। इसके बाद शास्त्र का सम्बन्ध बताना चाहिए। किस प्रसंग से यह शास्त्र बना है, कौन वस्तु कहां से ली गई है, इस शास्त्र का कहने वाला कौन है और सुनने वाला कौन है आदि बताया जाना चाहिए।

इन चारों बातों से शास्त्र की परीक्षा भी हो जाती है यह पहले कह दिया गया है। इस महा निर्ग्रंथ अध्ययन में ये चारों बातें है, यह बात इस के नाम से ही प्रकट है। अभी समय कम है अतः फिर कभी अवसर होने पर अपनी बुद्धि के अनुसार यह बताने की चेष्टा करूँगा कि किस प्रकार अनुबन्ध चतुष्टय का इस अध्ययन में समावेश है।

अब इसी बात को व्यावहारीक ढग से कहा जाता है जिससे कि सामान्य समझ वाले व्यक्ति भी सरलता से समझ सकें। यह सब की इच्छा रहती है कि महान् पुरुष की सेवा की जाय लेकिन महान् का अर्थ समझ लेना चाहिए। भागवत में कहा है कि

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितांसंगिसंगम् ।
महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता विमन्यवः सुहृदः साधवो ये ॥

अर्थ—मुक्ति का द्वार महान् पुरुषों की सेवा करना है और नरक द्वार कामिनी की सगति करने वाले की सोबत करना है। महान् वे है जो समचित्त हैं, प्रशान्त है, क्रोध रहित हैं, सब के मित्र और साधु चरित हैं।

महान् पुरुष की सेवा को मोक्ष का द्वार बताया गया है और कनक कामिनी में फंसे हुओं की सेवा को नरक का द्वार। इस पर से हमारी उत्सुकता बढ़ जाती है कि महान् पुरुष कौन है जिसकी उपासना करने से हमारे बधन टूट जाते हैं। जो बडी २ जागीरे

भोगते हैं, अच्छे गहने और कपड़े पहनते हैं, आलीशान नगरों में निवास करते हैं, उन्हें महान् समझें अथवा किन्हीं दूसरों को।

जैन शास्त्रानुसार इस का खुलासा किया जायगा किन्तु पहले भागवत पुराण के अनुसार महापुरुष की व्याख्या समझ लें। भागवत पुराण कहता है कि इस प्रकार की उपाधि वालों को महान् नहीं मानना चाहिए। महान् उसे समझना चाहिए जो समचित्त हो। महान् पुरुष का चित्त सम होना चाहिए। शत्रु और मित्र पर समभाव होना चाहिए। जिसका मन आत्मा में हो, पुद्गल में न हो वह समचित्त है और वही महान् भी है।

समचित्त का अर्थ जो वस्तु जैसी है उसे वैसा ही मानना भी है। आत्मा चैतन्य स्वरूप है और जड पदार्थ पुद्गल रूप है। इन दोनों को जुदा मानना तथा इनके धर्म भी जुदा २ मानना समचित्त का लक्षण है। कोई यह शंका कर सकता है कि कार्मण शरीर की अपेक्षा से संसारी जीव के पीछे अनादि काल से उपाधि लगी हुई है जिससे यह मेरा कान है, यह मेरी नाक है, यह मेरा मुख है, आदि रूप से जड वस्तुओं को भी अपनी मानता है तब वह समचित्त कैसे रहा। यह ठीक है कि उपाधि के कारण जीवात्मा परवस्तु को भी अपनी कहता है लेकिन उपाधिको उपाधि मानना यह भी समचित्त का लक्षण है।

यदि कोई व्यक्ति रत्न को कंकर कहे और कंकर को रत्न कहे तो वह मूर्ख गिना जाता है। जब कि रत्न और कंकर दोनों ही जड वस्तु हैं। कोई व्यक्ति जंगल में जा रहा था। भ्रमवश उसने सीप को चांदी मान लिया और चांदी को सीप। उसके मान लेने से सीप चांदी नहीं हो गई और न चांदी ही सीप होगई। किसी के उल्टा मान लेने से वस्तु अन्यथा नहीं हो जाती। किन्तु ऐसा मानने या कहने वाला जगत् में मूर्ख गिना जाता है। इसी प्रकार जड़ को चैतन्य और चैतन्य को जड कहने मानने वाले भी अज्ञानी समझे जाते हैं। इसी अज्ञान के कारण जीव मेरा तेरा कहा करता है। जो इस प्रकार की उपाधि में फँसे हैं वे महान् नहीं है। वे जड पदार्थ के गुलाम है। वे आत्मानंदी नहीं कहे जा सकते। महान् वे हैं जो खुद के शरीर को भी अपना नहीं मानते। अन्य वस्तुओं के लिए तो कहना ही क्या। व्यावहारिक भाषा से ज्ञानी जन भी मेरा शरीर, मेरा कान, नाक आदि कहेंगे मगर निश्चय में वे जानते हैं कि ये सब हमारे नहीं हैं। कहने का सारांश यह है कि समचित्त वाले उपाधि को उपाधि मानते हैं।

अब इस बात पर भी विचार करें कि महान् की सेवा किस लिए करें? कोई यह खयाल करके महापुरुष की सेवा करे कि वे उसके कान में मंत्र फूंक देंगे या सिर पर हाथ धर

देंगे तो वह ऋद्धि शाली हो जायगा महान् पुरुष का अपमान करना है । यह महान पुरुष की सेवा नहीं गिनी जायगी किन्तु माया की सेवा गिनी जायगी । जो इस भावना से महान पुरुष की सेवा करता है कि मैं अनन्त काल से ससार की माया जाल में फसा हुआ हूँ, अज्ञान के कारण दुःख सहन कर रहा हू, जड को अपना मान बैठा हू, इन सब से महापुरुष की सेवा करके छुटकारा पाऊ, उसकी सेवा सफल है । ऐसी सेवा ही मुक्ति का द्वार है ।

समचित्त वालों को कोई लाखों गालिया दे तो भी उनके मन में किंचित् विकार नहीं आता । कहते हैं कि एक बार पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज रतलाम शहर में सेठजी के बाजार में और शायद उन्ही के मकान में विराजते थे । उस समय रतलाम बहुत उन्नत शहर माना जाता था, और सेठ भोजाजी भगवान् की खूब चलती थी । पूज्यश्री की प्रशसा सुनकर एक मुसलमान भाई के मन में उनकी परीक्षा लेने की भवना पैदा हुई । अवसर देखकर वह एक दिन उनके ठहरने के मकान पर उपस्थित हुआ । उस समय पूज्यश्री स्वाध्याय तथा अन्य धर्मक्रियाए कर रहे थे उस मुसलमान ने जैसी उसके मन में आई वैसी अनेक गालियां दी । उसकी गालियां ऐसी थी कि सुनने वाले को गुस्सा आये बिना न रहे । किन्तु पूज्यश्री समचित्त थे । वे गालिया सुनकर भी विकृत न हुए । हँसते ही रहे । उनके चेहरे पर किसी प्रकार की तब्दीली के चिह्न नजर न आये । आखिर वह मुसलमान हाथ जोड कर पूज्यश्री से कहता है कि आप सचमुच वैसे ही हैं जैसी मैंने आपकी प्रशसा सुनी है । वास्तव में आप सच्चे फकीर हैं । माफी मागकर वह चला जाता है ।

लेक्चर झाड़ते वक्त श्रोताओं को प्रशान्त रहने का उपदेश देना बडा सरल है किन्तु प्रशान्त रहने का मौका आये तब प्रशान्त रहना बडा कठिन है । महान् वह है जो सहन करने के अवसर पर सहन शीलता दिखाता है । कोई पूछ सकता है कि क्या दूसरों की गालियॉ सुनते रहना और उनकी उदण्डता में सहायता करना सहन शीलता है । हाँ, महान् पुरुष वह है जो गालियॉ सुनते वक्त भी शान्तचित रहता है महान् इन गालियों को अपने लिए नहीं मानते । वे उनमें से भी अपने अनुकूल सार बात ग्रहण कर लेते हैं । जब उनमें कोई यह कहे कि **"ओ दुष्ट यह क्या करते हो"** तब वे अपने सम्बोधन में कहे हुए दुष्ट विशेषण से भी कुछ न कुछ नसीहत ग्रहण करते हैं । महान् पुरुष अपने लिये दुष्ट शब्द का प्रयोग सुनकर यह विचार करते हैं कि जिन कार्यों के करने से मनुष्य दुष्ट बनता है वे कार्य मुझ में तो नहीं पाये जाते । यदि दुष्टता कि कोई बात उनमें पाई जाती

हो तो वे आत्म निरीक्षण करके उसे बाहर निकाल फेंकते है और दुष्ट कहने वाले का उपकार मानते है, किन्तु यदि उन्हें आत्म निरीक्षण के बाद यह ज्ञात हो कि उनमें दुष्ट बनाने की कोई सामग्री नहीं है तो वे ख्याल करके दुष्ट कहने वाले को माफ कर देते हैं कि यह किसी अन्य के लिए कहता होगा अथवा भूल या अज्ञान से कह रहा होगा। अज्ञानी और भूल करने वाले सदा क्षमा करने योग्य होते हैं। मेरे समान वेष भूषा वाले किसी अन्य व्यक्ति को दुष्टता करते देखकर इसने मेरे लिए भी दुष्ट शब्द का व्यवहार किया है। किन्तु इस में इसकी भूल है। यह सोचकर महान् अपनी महत्ता का परिचय देते हैं।

मान लीजिये आपने सफेद साफा बाँध रक्खा है। किसी ने आपको बुलाने के लिए पुकारा कि ओ काले साफे वाले इधर आओ। क्या आप यह बात सुनकर नाराज होंगे ? नहीं। आप यही विचार करेंगे कि मेरे सिरपर सफेद साफा है और यह काले साफे वाले को बुला रहा है सो किसी अन्य को बुलाता होगा अथवा यह भी खयाल कर सकते हैं कि भूल से सफेद शब्द के बजाय काला शब्द इसके मुख से निकल गया है। ऐसा विचार करने पर न क्रोध आवेगा और न नाराज होने का प्रसग ही। इसके विपरीत यदि आपने यह खयाल कर लिया कि यह मनुष्य मुझे काले साफे वाला कैसे कहता है, इसकी भूल का मजा इसे चखाना चाहिए तो मानना होगा कि आपको अपने सिर पर बाँधे हुए सफेद साफे पर विश्वास ही नहीं है।

यदि लोग इस सिद्धान्त को अपना लें तो संसार में झगड़े टंटे ही न रहें। सर्वत्र शांति छा जाय। पिता पुत्र या सास बहू में झगड़े इसी कारण होते हैं कि एक समझता है 'मैं ऐसा नहीं हू फिर भी मुझे ऐसा कैसे कह दिया'। इसके बजाय यदि यह समझने लगे कि जब मै ऐसा हू ही नहीं तब इसका ऐसा कहना व्यर्थ है, तब अशांति या झगड़े का कोई कारण खड़ा ही नहीं हो सकता आप लोग निर्ग्रन्थ मुनियों की सेवा करने वाले हो, अतः सहनशीलता का यह गुण अपनाओ और समचित्त बन कर आत्मा का कल्याण करो। संसार में कोई किसी का अपमान नहीं कर सकता। हमारा आत्मा ही हमारा अपमान करता है।

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीय लभते शुभाशुभम्।
परेणदत्तं यदि लभ्यते भुवं स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा॥

अर्थ—हमारी आत्मा ने पहले शुभ या अशुभ जो भी कृत्य किया है उसीका फल अब मिल रहा है। यदि यह माना जाय कि दूसरा व्यक्ति हमारा शुभ या अशुभ कर

रहा है तो खुद का किया हुआ कृत्य व्यर्थ हो जायगा।

कहने का सारांश यह है कि जो प्रसंग पर क्रोधादि विकारों को काबु में रख सके और सामने वाले को अपने प्रेम पूर्ण बर्ताव से जीत सके वही महान् है और वही समचित्त भी है। ऐसे पुरुष जड पदार्थों के वश में नहीं होते। वे यह सोचते हैं कि

जीव नावि पुग्गली नैव पुग्गल कदा पुग्गलाधार नहीं तास रंगी।
परतणो ईशनहीं अपर ए एश्वर्यता वस्तु धर्मे कदा न परसगी॥
श्री देवचन्द्र चौवीसी।

जिस व्यक्ति की परमात्मा के साथ लौ लगी होगी वह यह सोचेगा कि मैं पुद्गल नहीं हू और पुद्गल भी मेरे नही है। मै पुद्गलों का मालिक बन कर भी नही रहना चाहता तो उनका गुलाम होने की बात ही क्या है?

आज लोगों को जो दुःख है वह पुद्गलों का ही है। वे पुदगलों के गुलाम बन रहे है। यदि धैर्य रखा जाय तो पुद्गल उनके गुलाम बन सकते है। किन्तु लोग धैर्य छोड कर पुद्गलों के पीछे पड़े हुए है इसी से दु.ख बढ रहा है, यह दुःख दूसरों का लाया हुआ नहीं है किन्तु अपने खुद के अज्ञान के कारण से ही है।

श्री समयसार नाटक में कहा है किः—

कहे एक सखी सयानी, सुनरी सुबुद्धि रानी, तेरो पति दु.खी——
लग्यो और यार है
महा अपराधी छहों माही एक नर सोई दु.ख देत लाल—
दीसे नाना पर है।
कहे आली सुमति कहा दोष पुद्गल को आपनी हो भूल लाल——
होता आपा वार है।
खोटो नाणो आपको शराफ कहा लागे वीर काहुको न दोष—
मेरो भोंदू भरतार है।

इस प्रकार सब दोप या मूर्खता हमारी आत्मा की ही है। पूद्गलों का क्या दोप है? अत. पुदगलों पर से ममता छोडो। हाय २ करने से कुछ लाभ न होगा।

अब सुदर्शन की कथा कही जाती है। मुझे सुदर्शन से किसी प्रकार का लेन-देन नहीं है। पुद्गल को छोड़नेवाले सब महात्माओं को मेरा नमस्कार है। सुदर्शन ने भी पुद्गलों पर से ममता हटाई है अतः उसका गुणानुवाद किया जाता है और धन्य धन्य कहा जाता है। पुद्गल माया को छोड़कर जो महात्मा आगे बढ़े हैं उनको नमस्कार करने से हमारा आत्मा निर्मल बनता है। और आगे बढ़ता है।

चम्पापुरी नगरी अति सुन्दर दधिवाहन तिहां राय।
पटरानी अभया अति सुन्दर रूप कला शोभाय ॥ रे धन०

सुदर्शन को मैंने अकेले ने ही धन्यवाद नहीं दिया है किन्तु आप सब ने भी दिया है। क्यों धन्यवाद दिया गया, इसका विचार करिये। यदि वह सेठ था तो अपने घर का था। इससे हमें क्या मिलना था। हम लोगों ने उसकी सेठाई के कारण धन्यवाद नहीं दिया है किन्तु उसने धर्म का पालन किया है अतः धन्यवाद दिया है। वस्तुतः यह धन्यवाद धर्म को दिया गया है। हम लोग सुदर्शन को धन्यवाद देते हैं। किन्तु कोरा धन्यवाद देकर ही न रह जाय। हम भी इनके पद चिह्नों पर चलें तभी धन्यवाद देना सार्थक है। इनके गुणों का अनुसरण न किया तो हमारा बड़ा दुर्भाग्य होगा। कल्पना करिये कि एक आदमी भूखा है। वह भूखसे कराह रहा था। वह सेठ के घर गया। उस समय सेठ स्वर्णथाल में परोसे हुए विविध व्यञ्जनों का भोग कर रहे थे। सेठ को भोजन करते देखकर वह भूखा व्यक्ति कहने लगा कि सेठ तुम धन्य हो जो ऐसे पदार्थ भोग रहे हो। मैं अन्न के बिना तरस रहा हूं। भूखों मर रहा हूं। यह सुनकर सेठ ने कहा कि भाई! आ तू भी मेरे साथ बैठ जा और भोजन करले। भूख का दुःख मिटाले! सेठ के द्वारा भोजन का प्रेमपूर्ण निमन्त्रण मिलने पर भी यदि वह व्यक्ति यह कहे कि नहीं नहीं मैं न खाऊंगा मुझे भोजन नहीं करना है तो वह व्यक्ति अभागा समझा जायगा!

इस बात को आप अच्छी तरह समझ गये होंगे। ऐसे निमन्त्रण को आप कभी इन्कार न करेंगे। न कभी ऐसी भूल ही करेंगे। भूल तो धर्म कार्य में होती है। जिस चारित्र धर्म का पालन करने के कारण आप सुदर्शन को धन्यवाद दे रहे हैं वह चारित्र धर्म

रहा है तो खुद का किया हुआ कृत्य व्यर्थ हो जायगा।

कहने का सारांश यह है कि जो प्रसग पर क्रोधादि विकारों को कावु में रख सके और सामने वाले को अपने प्रेम पूर्ण बर्ताव से जीत सके वही महान् है और वही समचित्त भी है। ऐसे पुरुष जड पदार्थों के वश में नहीं होते। वे यह सोचते हैं कि

जीव नावि पुग्गली नैव पुग्गल कदा पुग्गलाधार नहीं तास रंगी।
परतणो ईशनहीं अपर ए एश्वर्यता वस्तु धर्मे कदा न परसंगी॥

श्री देवचन्द्र चौवीसी।

जिस व्यक्ति की परमात्मा के साथ लौ लगी होगी वह यह सोचेगा कि मैं पुद्गल नहीं हू और पुद्गल भी मेरे नहीं है। मै पुद्गलों का मालिक बन कर भी नही रहना चाहता तो उनका गुलाम होने की बात ही क्या है?

आज लोगों को जो दुःख है वह पुद्गलों का ही है। वे पुदगलों के गुलाम बन रहे है। यदि धैर्य रखा जाय तो पुद्गल उनके गुलाम बन सकते है। किन्तु लोग धैर्य छोड कर पुद्गलों के पीछे पडे हुए है इसी से दुःख बढ़ रहा है, यह दुःख दूसरों का लाया हुआ नहीं है किन्तु अपने खुद के अज्ञान के कारण से ही है।

श्री समयसार नाटक में कहा है किः—

कहे एक सखी सयानी, सुनरी सुबुद्धि रानी, तेरो पति दु.खी——
लग्यो और यार है
महा अपराधी छहों माही एक नर सोई दु.ख देत लाल—
दीसे नाना पर है।
कहे आली सुमति कहा दोष पुद्गल को आपनी हो भूल लाल—
होता आपा वार है।
खोटो नाणो आपको शराफ कहा लागे वीर काहुको न दोष—
मेरो भोंदू भरतार है।

इस प्रकार सब दोष या मूर्खता हमारी आत्मा की ही है। पूद्गलों का क्या दोष है? अत. पुदगलों पर से ममता छोडो। हाय २ करने से कुछ लाभ न होगा।

अब सुदर्शन की कथा कही जाती है। मुझे सुदर्शन से किसी प्रकार का लेन-देन नहीं है। पुद्गल को छोडनेवाले सब महात्माओं को मेरा नमस्कार है। सुदर्शन ने भी पुद्गलों पर से ममता हटाई है अतः उसका गुणानुवाद किया जाता है और धन्य धन्य कहा जाता है। पुद्गल माया को छोडकर जो महात्मा आगे बढे हैं उनको नमस्कार करने से हमारा आत्मा निर्मल बनता है। और आगे बढता है।

चम्पापुरी नगरी अति सुन्दर दधिवाहन तिहां राय।
पटरानी अभया अति सुन्दर रूप कला शोभाय॥ रे धन०

सुदर्शन को मैंने अकेले ने ही धन्यवाद नहीं दिया है किन्तु आप सब ने भी दिया है। क्यों धन्यवाद दिया गया, इसका विचार करिये। यदि वह सेठ था तो अपने घर का था। इससे हमें क्या मिलना था। हम लोगों ने उसकी सेठाई के कारण धन्यवाद नहीं दिया है किन्तु उसने धर्म का पालन किया है अतः धन्यवाद दिया है। वस्तुतः यह धन्यवाद धर्म को दिया गया है। हम लोग सुदर्शन को धन्यवाद देते हैं। किन्तु कोरा धन्यवाद देकर ही न रह जाय। हम भी इनके पद चिह्नों पर चलें तभी धन्यवाद देना सार्थक है। उनके गुणों का अनुसरण न किया तो हमारा बडा दुर्भाग्य होगा। कल्पना करिये कि एक आदमी भूखा है। वह भूखसे कराह रहा था। वह सेठ के घर गया। उस समय सेठ स्वर्णथाल में परोसे हुए विविध व्यञ्जनों का भोग कर रहे थे। सेठ को भोजन करते देखकर वह भूखा व्यक्ति कहने लगा कि सेठ तुम धन्य हो जो ऐसे पदार्थ भोग रहे हो। मैं अन्न के बिना तरस रहा हू। भूखों मर रहा हू। यह सुनकर सेठ ने कहा कि भाई! आ तू भी मेरे साथ बैठ जा और भोजन करले। भूख का दुःख मिटाले। सेठ के द्वारा भोजन का प्रेमपूर्ण निमन्त्रण मिलने पर भी यदि वह व्यक्ति यह कहे कि नही नहीं मैं न खाऊंगा मुझे भोजन नही करना है तो वह व्यक्ति अभागा समझा जायगा!

इस बात को आप अच्छी तरह समझ गये होंगे। ऐसे निमन्त्रण को आप कभी इन्कार न करेंगे। न कभी ऐसी भूल ही करेंगे। भूल तो धर्म कार्य में होती है। जिस चारित्र धर्म का पालन करने के कारण आप सुदर्शन को धन्यवाद दे रहे हैं वह चारित्र धर्म

आपके सामने भी मौजूद है। आप धन्यवाद देकर न रह जाइये किन्तु उस चारित्र धर्म का पालन करिये जिसके पालन से सेठ धन्यवाद के पात्र बने हैं। धन्यवाद दे लेने से आत्मा की भूख न मिटेगी। सुदर्शन के समान आप धर्म पर दृढ न रह सको तो भी उसके कुछ अंश का तो अवश्य पालन कीजिये। उसका चरित्र सुनकर उसके चरित्र का कुछ अंश भी यदि जीवन में उतार सको तो आपका दुर्भाग्य मिटेगा और सौभाग्य का उदय होगा। संसार की सब वस्तुएँ नाशवान् हैं! आप इस अविनाशी धर्म को क्यों नही अपनाते। आप कहेंगे कि हम सुदर्शन के समान कैसे बन सकते है? खैर, सुदर्शन के ठीक समान न बनें तो भी उसके चरित्र में से कुछ बातें अवश्य अपनाइये। कोशिश तो सब बातें अपनाने की करनी चाहिए। कीड़ी यह कहकर अपनी चाल को नहीं रोकती कि मै हाथी की बराबरी नही कर सकती हू। वह हाथी के समान नहीं चल सकती तो भी चलना जारी रखती है और अपने खाने तथा घर बनाने का ऐसा प्रयत्न करती है कि जिसे देख कर बडे२ वैज्ञानिकों को दग रह जाना पडता है। आप भी अपनी शक्ति व सामर्थ्य के अनुसार आगे बढने का प्रयत्न कीजिये!

सुदर्शन की कथा कहने के पूर्व क्षेत्र का परिचय दिया गया है। क्षेत्री का वर्णन करने के लिये क्षेत्र का परिचय आवश्यक है। शास्त्र में भी यही शैली है। वर्णन तो भगवान महावीर स्वामी का करना था किन्तु प्रसग से साथ ही चम्पा नगरी का भी वर्णन दे दिया है —जैसे

तेणं कालेणं तेणं समयेणं चम्पा नामे नयरी होत्था।

सुदर्शन सेठ की कथा कहने पहले वह कहा हुआ था यह बताना आवश्यक था और यही बताया गया है।

कोई यह पूछ सकता है कि क्या क्षेत्र के साथ क्षेत्री का कोई सम्बन्ध होता है? हां क्षेत्री का क्षेत्र के साथ बहुत सम्बन्ध होता हैं। सूत्रों में क्षेत्र विपाकी प्रकृतियो का बयान आता है। एक आदमी भारत का निवासी है और दूसरा युरोप का। क्षेत्र विपाकी गुण दोनों में जुदा २ होंगे। यह बात दूसरी है कि कोई अपने विशेष प्रयत्न के द्वारा उस गुण को मिटा दे या अधिक बढ़ादे।

मनुष्य और पशु में जो भेद है वह क्षेत्र के कारण ही है। आत्मा दोनों की समान है। आत्मा समान होने से कोई मनुष्य को पशु या पशु को मनुष्य नहीं कहता। क्षेत्र विपाकी प्रकृति के कारण भेद होता है। उसे भूलाया नही जा सकता।

आप भारतीय है। भारत में जन्म लेने से भारत का क्षेत्र विपाकी गुण आप में होना स्वाभाविक है। आज आप आपकी दस्तार रफ्तार और गुफ्तार कैसी हो रही है। जरा गौर कीजिए। दस्तार यानी कपडे, रफ्तार यानी पहनावा और गुफ्तार यानी बातचीत। आप भारतीय हैं मगर क्या आपको भारतीय भाषा प्यारी लगती है? प्रिय न लगे तो यह अभाग्य ही है। अन्य देश वाले भारत की प्रशसा करें और भारतीय स्वय अपने देश की अवहेलना करें, यह अभाग्य नहीं तो क्या है। आज भारत के निवासी दूसरे देशों की बहुत-सी बातों पर मुग्ध हो रहे हैं वे यह नही सोचते कि दूसरे देशों की जिन बातों पर हम मुग्ध हो रहे हैं वे कहा से सीखी हुई हैं। वे बातें भारत से ही अन्य देशों ने सीखी हैं। हम हमारा घर भूल गये हैं। हमारे घर में क्या क्या था यह बात हम नहीं जानते। अब दूसरों की नकल करने चले हैं।

एक आदमी दूसरे आदमी के यहा से बीज ले गया जो कि उसके आगन में बिखरे पडे थे। उसने बीज लेजा कर बोये तथा वृक्ष और फल फूल तय्यार किए एक दिन पहला व्यक्ति दूसरे के खेत में चला गया। जाकर कहने लगा तुम बड़े भाग्यशाली हो जो ऐसे सुन्दर वृक्ष तथा फल-फूल लगा सके हो। दूसरे ने कहा यह आपही का प्रताप है जो मैं ऐसे वृक्ष लगा सका हू। आपके यहा से बिखरे हुए बीज मैं ले गया था जिनका यह परिणाम है। यह बात सुनकर पहले आदमी को अपने घर में रखे बीजों का ध्यान आया। इसी प्रकार विदेशों में जो तत्त्व देखे जारहे हैं वे भारत के ही हैं। हा, वहा के लोगों ने उन तत्त्वों की विशेष खोज अवश्य की है मगर बीजरूप में वे भारत से ही लिए हुए है। दूसरों की बातें देखकर अपने घर को मत भूल जाओ। घर की खोज करो।

सुदर्शन चम्पा नगरी का रहने वाला था। जैन और बौद्ध साहित्य में चम्पा का बहुत वर्णन है। चम्पा का पूरा विवरण उववाई सूत्र में है किन्तु उसमें से तीन बातें कह देने से श्रोताओं को खयाल आ जायगा कि चम्पा कैसी थी। चम्पा का वर्णन करते हुए उववाई सूत्र में कहा गया है:—

तेणं कालेणं तेणं समयेणं चम्पा नामं नगरी होत्था रिद्धीए ठिम्मिए समिद्धे।

इन तीन विशेषणों से चम्पा का पूरा परिचय हो जाता है। नगर में तीन बातें होना आवश्यक है। प्रथम ऋद्धि होना आवश्यक है। हाट, महल, मंदिर, बागबगीचे, तथा जल स्थल के स्वच्छ निवास ऋद्धि में गिने जाते हैं। किसी नगर में केवल ऋद्धि हो किन्तु यदि समृद्धि न हो तो नगर की शोभा नही हो सकती। समृद्धि के न होने से लोग भूखों मरने लगें। चम्पा नगरी धन धान्य से समृद्ध थी धन के साथ धान्य की भी आवश्यकता है। केवल धन हो और धान्य न हो तो यह कहावत लागू होती है कि —

सोना नी चलचलाट, अन्ननी कलकलाट।

जीवन निभाने के लिए धान्य की भी पूरी आवश्यकता होती है। धन और धान्य कहने मे जीवनोपयोगी प्रायः सब वस्तुएं आजाती हैं। जीवनोपयोगी वस्तुओं के लिए चम्पा नगरी किसी की मोहताज न थी। वहा सब आवश्यक चीजें पैदा होती थीं। प्राचीन समय में भारत के हर ग्राम में जीवनोपयोगी चीजे पैदा होती थीं और इस दृष्टि से भारत का हर गाम स्वतन्त्र था। ऐसा न था कि अमुक चीज आना बन्द हो गया है अतः अब क्या किया जाय।

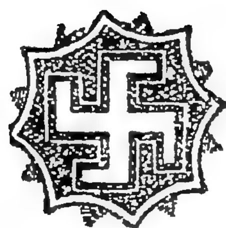
पुरातन साहित्य हमें बताता है कि उस समय भारत का प्रत्येक ग्राम स्वतन्त्र था। कोई भी गांव ऐसा न था कि जहा आवश्यक अन्न और वस्त्र पैदा न हो। अन्न तो सब जगह पैदा होता ही था किन्तु वस्त्र भी सब गावों में बनाये जाते थे। जहा रुई न होती थी वहा ऊन होती थी जो रुई से भी मुलायम थी। हर ग्राम में कपडे बुनने वाले लोग रहते थे। इस प्रकार भारत का हर गांव स्वतन्त्र था। नगर तो स्वतन्त्र थे ही। उनमें विशेष कला प्रधान [illegible] थी।

चम्पा में ऋद्धि भी थी और समृद्धि भी। ऋद्धि और समृद्धि के होने पर भी [illegible] के अभाव में कष्ट होता है। चम्पा इस बात से भी वञ्चित न थी। ठिम्मिए [illegible] है कि चम्पा की प्रजा बडी बहादुर थी। उसे न स्वचक्री राजा लूट [illegible] परचक्री। अपने राजा का अत्याचार भी प्रजा सहन नहीं करती थी और [illegible]। जो स्वयं निर्बल होता है उसी पर दूसरों का जोर चलता है। [illegible] चलता। लोग कहते हैं कि देवी बकरे का दान मांगती है। मैं

पूछता हू कि देवी बकरे का बलिदान ही क्यों मागती है शेर का क्यों। नही बकरा निर्बल है और शेर सबल है अतः ऐसा होता है।

शास्त्र में चम्पा का इस प्रकार वर्णन है। कोई भाई यह कहे कि महाराज त्यागी लोगों को इस प्रकार वर्णन करने की क्या आवश्यकता थी तो उसका उत्तर यह है कि फल बताने के पूर्व वृक्ष का और बीज का परिचय कराना भी जरूरी होता है। जो फल बताया जा रहा है वह जादू का तो नहीं है। अतः फल के पहले वृक्ष का वर्णन भी आवश्यक है। शील के साथ चम्पा का भी इसी लिए वर्णन है। इस वर्णन को सुन कर आप भी सच्चे नागरिक बनिये और शील का पालन कर आत्म कल्याण कीजिये।

राजकोट
७—७—३६ का
व्याख्यान



धर्म का अधिकार



" मल्लि जिन बाल ब्रह्मचारी········· । "



यह भगवान् मल्लिनाथ की प्रार्थना है। यदि इस प्रार्थना के विषय में कोई महावक्ता सिद्धान्त की खोज करके व्याख्यान दे तो बहुत लोगों की दृष्टी समझ दूर हो जाय, ऐसा मेरा खयाल है। मुझे शास्त्र का उपदेश करना है अतः इस विषय में इतना ही कहता हू कि भक्ति और प्रार्थना के मार्ग में पुरुषों को अभिमान नहीं करना चाहिए। अभिमान भूले विना भक्तिमार्ग पर नहीं चला जा सकता। अहकार दूर किए विना भक्ति मार्ग प्राप्त नही हो सकता। हम पुरुष हैं, इस बात का अहकार त्याग कर चाहे स्त्री हो चाहे पुरुष जो भी महापुरुष हुए हैं, उन सब की भक्ति में तल्लीन हो जाना चाहिए।

बहुत से पुरुष स्त्री जाति को तुच्छ गिनते है और अपने को बडा मानते हैं किन्तु यह उनकी भूल है। दुनिया में सब से बड़ा पद तीर्थङ्कर का है। जब कि स्त्री तीर्थंकर

हो सकती है वैसी हालत में तुच्छ कैसे मानी जा सकती है। और पुरुष को किस बात का अभिमान करना चाहिए। अतः अहङ्कार छोड कर विचार करो और गुणों के स्थान पर द्वेष मत लाओ।

भगवान् मल्लिनाथ को नमस्कार करके अब मैं उत्तराध्ययन सूत्र के बीसवें अध्ययन की बात शुरू करता हू। कल महा और निर्ग्रन्थ शब्दों के अर्थ बताये गये थे। इस द्वादशाग वाणी को सुनने से क्या क्या लाभ हैं, यह बताने के लिए पूर्वाचार्यों ने बहुत प्रयत्न किए हैं। उन्होंने शास्त्र की पहिचान के लिए अनुबन्ध चतुष्टय किया है। इस बीसवें अध्ययन में यह अनुबन्ध चतुष्टय कैसे घटित होता है, यह देखना है। हम इस बात की जॉच करें कि इस अध्ययन में भी विषय, प्रयोजन अधिकारी और सम्बन्ध हैं या नहीं।

बीसवें अध्ययन का विषय उसके नाम मात्र से ही प्रकट है। अध्ययन का नाम महानिर्ग्रन्थ अध्ययन है। जिससे स्पष्टतया मालूम हो जाता है कि इस अध्ययन में महान् निर्ग्रन्थ की चर्चा होगी। नाम के सिवा प्रथम गाथा में यह स्पष्ट कहा गया है कि मैं अर्थ धर्म में गति कराने वाले तत्त्व की शिक्षा देता हू। इससे यह बात निश्चित हो गई कि इस अध्ययन में सासारिक बातों की चर्चा न होगी। किन्तु जिन तत्त्वों से पारमार्थिक मार्ग में गति हो सके उनकी चर्चा होगी।

अब इस बात का विचार करें कि इस पारमार्थिक चर्चा से ससार को क्या लाभ होगा। आज ससार में इस प्रकार के मलीन विचार फैले हुए हैं कि जिनके कारण धार्मिक उपदेश और उसका प्रभाव बेकार सा साबित हो रहा है। मैले कपडे पर रग नहीं चडता मैले कपडे पर रग चढाने के लिए पहिले उसे साफ करना पडता है। इसी प्रकार हृदय रूपी वस्त्र यदि मैला हो तो उस पर उपदेश रूपी रग नहीं चढ सकता। यह बात स्वाभाविक है। मुझे यकिन है कि आपके सब कपडे मलीन नही हैं अर्थात् आपका हृदय सर्वथा मलीन नहीं है। यदि सर्वथा मलीन होता तो आप यहा व्याख्यान श्रवणार्थ भी उपस्थित न होते। आप यहा आये है इससे यह प्रकट है कि आपका हृदय सर्वथा गन्दा नहीं है। जो थोडी बहुत गदगी भी हृदय में रही हुई है उसे दूर किए बिना धर्म का रग अच्छी तरह नहीं चढ सकता।

शास्त्रकारों का कथन है कि धर्म स्थान पर जाने के पूर्व घर से निकलते ही पहले निस्सीही शब्द का उच्चारण करना चाहिए। धर्म स्थान पर पहुँच कर भी निस्सीही कहना

चाहिए। फिर गुरु के पास जाकर भी निस्सीही कहना। इस प्रकार तीन बार निस्सीही शब्द का उच्चारण करने का क्या कारण है। घर से निकलते वक्त निस्सीही कहने का मतलब यह है कि धर्मस्थान पर जाने के पूर्व ही सासारिक प्रपञ्च पूर्ण विचारों को मन से निकाल देना चाहिए। निस्सीही शब्द का अर्थ है पाप पूर्ण क्रियाओं का निषेध करना, उनको रोक देना।

जो ससार के कामो और विचारों को छोड कर धर्म स्थान पर जाता है वही पुरुष धर्म स्थान में पहुच ने के मकसद को सिद्ध कर सकता है। जो घर से व्यवहार के प्रपञ्चों को दिमाग में रख कर धर्म स्थान पर जाता है वह वहां जाकर क्या करेगा। वह धर्म स्थान में भी प्रपञ्च ही करेगा। धर्म का क्या लाभ ग्रहण करेगा ? धर्म स्थान तक पहुचने के बाद निसीही इस लिये कहा जाता है कि धर्म स्थान तक तो गाड़ी घोडा आदि सवारी पर सवार होकर भी जाया जाता है लेकिन धर्म स्थान में ये सवारिया नही जा सकती अत. इनका निषेध भी इष्ट है।

धर्म स्थान तक पहुंच कर अन्दर कैसे प्रवेश करना इसके लिये पांच अभिगमन शास्त्रों में बताये गये हैं भगवान् या अन्य महात्माओं के दर्शन करने के लिये धर्म स्थान में पहुचने पर पांच अभिगमन का वर्णन शास्त्रों में आया है। प्रथम अभिगमन सचित्त द्रव्य का त्याग है। साधु के पास पान फूल आदि सचित द्रव्य नहीं ले जा सकते अतः उनको त्याग कर फिर दर्शनार्थ जाना चाहिये। दुसरा अभिगमन उन अचित द्रव्यों का भी त्याग करके साधु के पास जाना चाहिये जिनका त्याग जरूरी हो। अस्त्र शस्त्रादि पास हो तो उन्हे छोड़ कर साधु के समीप जाना चाहिये। शस्त्रादि लेकर साधु के पास जाना अनुचित है तथा वस्त्रादि का सकोच करना भी दूसरे अभिगमन में है। इसका अर्थ नगे होकर साधु दर्शनार्थ जाना नहीं है। किन्तु जो वस्त्र बहुत लम्बे हों और जिनसे पास वालों की आसातना हो सकती है उनका त्याग करना चाहिये। तसिरा अभिगमन उतरासग करना है। चौथा अभिगमन जिनके दर्शनार्थ जाना हैं वे ज्योंही द्राष्टि पथ में पडे कि तुरत हाथ जोड लेना चाहिये। अर्थात् नम्रता पूर्वक धर्म स्थान में पहुंचना चाहिये। पाचवा अभिगमन मन को एकाग्र करना है।

साधु के समीप पहुँचकर निसीही कहने का अभिप्राय यह है कि मैं समस्त सासारिक प्रपञ्चों का निषेध करता हू। निसीही का उच्चारण भी कर लिया गया हो और

अभिगमन भी कर लिए गये हों किन्तु यदि मन ससार की बातों में गुथा हुआ ही रहा तो धर्मस्थान में पहुँचने का उद्देश्य हासिल नहीं हो सकता। अतः मन को एकाग्र करके यह निश्चय करना चाहिए कि हमें श्रेय सिद्ध करना है।

साराश यह है कि यदि आपको सिद्धान्त सुनने की रुचि है तो मन को स्वच्छ बनाकर आईये। मन स्वच्छ बनाने का भार मुझपर डालकर मत आइये। धोबी का काम धोबी करता है और रगरेज का काम रगरेज करता है। दोनों का काम एक पर डालने से वजन बढ़ जाता है। मै आप पर धर्म के सिद्धान्तों का रग चढ़ाना चाहता हू। रग चढाया जा सकता है। किन्तु शर्त यह है कि आपका मनरूपी वस्त्र स्वच्छ होना चाहिये। मन स्वच्छ बनाकर आने का काम आपका है और उस पर धर्म का रग चढ़ाने का काम मेरा है। धोबी वस्त्र को जितना साफ निकालकर लायेगा रगरेज उतना ही आबदार रग चढा सकेगा। रगरेज को यश दिलाने का काम धोबी पर निर्भर है। आप लोगों की तरह यदि मुझे भी मान प्रतिष्ठा की चाह हृदय में बनी रही तो मैं धर्म का सच्चा उपदेश न दे सकूँगा धर्म का उपदेश दने के लिए उपदेशक को भी स्वच्छ बनना चाहिए। उपदेशक और श्रोता दोनों स्वच्छ हों तभी धर्म का रग अच्छी तरह चढ़ सकता है।

इस अध्ययन का विषय तो बता दिया गया है। लेकिन अब यह जानना चाहिए कि इस अध्ययन के कहने का क्या प्रयोजन है। धर्म में गति कराना इस अध्ययन का प्रयोजन है। अर्थात् साधुजीवन की शिक्षा देना इस अध्ययन का प्रयोजन है।

आप कहेंगे कि यदि साधुजीवन की शिक्षा देना ही इस अध्ययन का प्रयोजन है तो हम गृहस्थ लोगों को यह अध्ययन आप क्यों सुनाना चाहते हैं। पहले आप लोग यह बात समझलें कि साधु जीवन की शिक्षाएँ आपको भी सुननी आवश्यक है या नहीं। आपने अपने जीवन का ध्येय क्या नक्की किया है। आप गृहस्थ आश्रम में हैं और साधु साध्वाश्रम में है। सब क्रियाएं अपने अपने आश्रम के अनुसार करना ही शोभनीय है। किन्तु ग्रहस्थ होने का अर्थ यह नहीं है कि वह धर्म का पालन न करे। यदि ग्रहस्थ धर्म का पालन नहीं कर सकते हो तो भगवान् जगत् गुरु कैसे कहलाते। भगवान् साधु गुरु कहलाते। भगवान् जगत गुरु कहलाते है। गृहस्थ जगत् में है अत. गृहस्थ भी धर्म पालन का अधिकारी ही है। दूसरी बात गृहस्थ जीवन का उद्देश भी आगे जाकर साधु जीवन व्यतीत करने का है अतः जो बात आगे जाकर आचरणों में लानी है उसका श्रवण पहले से ही कर लिया जाय तो क्या हानि है। अतः यह शिक्षा गृहस्थों के लिये भी उपयोगी है।

श्रेणिक राजा गृहस्थ था। उसने साधु जीवन की शिक्षाएं सुनी थी यद्यपि वह साधु जीवन स्वीकार न कर सका तथापि साधु जीवन की शिक्षाएं सुन कर तीर्थङ्कर गोत्र बांध सका था। आपको इस शिक्षा की जरूरत क्यों नहीं है? अवश्य जरूरत है। आप यहां किसी सांसारिक कामना की पूर्ति करने के लिये नही आये हैं किन्तु धर्म करने की आपकी रूचि है, अतः आये है। इस प्रकार इस धर्म शिक्षा से आप गृहस्थों का भी प्रयोजन है। यदि यह शिक्षा केवल साधुओं के काम की ही होती तो साधु लोग किसी एकान्त शान्त स्थान में बैठ कर चर्चा कर लेते। आप गृहस्थों के बीच में आकर इसका वर्णन न करते। गृहस्थों को भी इस शिक्षा की आवश्यकता है यह अनुभव करके ही आपको यह सुनाई जा रही है। श्रेणिक राजा नवकारसी तप भी न कर सका था किन्तु यह शिक्षा सुन कर हृदय में धारण करके तीर्थङ्कर गोत्र बांध सका था। आप लोग भी श्रेणिक के समान गृहस्थ हो अतः इस शिक्षा की जरुरत है।

प्रयोजन बता दिया गया है। अब इस अध्ययन के अधिकारी का विचार करना है। कौन २ व्यक्ति इस अध्ययन की शिक्षा सुनने या ग्रहण करने के पात्र हैं। जिस प्रकार सूर्य सबके लिये है। सब उसका प्रकाश ग्रहण कर सकते है। किसी के लिये भी प्रकाश ग्रहण की मनाई नही है। उसी प्रकार यह अध्ययन सबके लिये है। इतना होने पर भी सूर्य का प्रकाश वही देख सकता है जिसके आंखे हो और वे खुली हों तथा विकार रहित हों। जिसकी आंखों में उल्लू की तरह किसी प्रकार का विकार हो वह सूर्य प्रकाश ग्रहण नहीं कर सकता। इस अध्ययन की शिक्षा का अधिकारी भी वही है जिसके हृदय चक्षु खुले हुए है। किन्ही लोगों के हृदय चक्षु खुले हुए होते हैं और किन्ही के अज्ञान रूपी आवरण से ढके हुए होते है। जिनके हृदय चक्षु बन्द है किन्तु खोलने की चाह है वे भी इस अध्यन के श्रवण करने के अधिकारी हैं। यह शिक्षा हृदय पट के आवरण को भी हटाती है किन्तु आवरण हटाने की इच्छा होनी चाहिये। कहने का भावार्थ यह है कि जो इस शिक्षा से लाभ उठाना चाहे वही इसका अधिकारी है।

अब इस अध्ययन के सम्बन्ध के विषय में विचार कर लें। सम्बन्ध दो प्रकार का होता है। १ उपायोपेय भाव सम्बन्ध २ गुरु शिष्य सम्बन्ध।

पहले गुरु शिष्य सम्बंध का विचार करें कि यह शास्त्र किस गुरु ने कहा है और किस शिष्य ने इसे सुना है।

भगवान् ने फरमाया है कि मोक्ष की इच्छा मात्र होने से मोक्ष कागजों से नही मिल जाता कोरे सूत्र बाचने से ही मुक्ति नही मिल सकती। सद्गुरु अथवा सदुपदेशक की आवश्यकता होती है। कुगुरु मोक्ष का नाम लेकर विपरीत मार्ग में भी ले जा सकते हैं अत: प्रथम यह जान लेना चाहिए कि धर्म का सच्चा उपदेशक कौन हो सकता है? शास्त्र में कहा भी है कि

आयगुत्ते सयादन्ते छिन्नसोये अणासवे ।
ते धम्मं सुद्धमक्खन्ति पडिपुन्नं मणोलिसं ॥

अर्थात्—धर्म का उपदेश वे कर सकते हैं जिन्होंने अपने मन पर काबू कर लिया हो, जो सदा विकारों पर काबू रखते हों, जिनका शोक नष्ट हो गया हो, जो पाप रहित हों। ऐसे सदादान्त सन्त पुरुष ही प्रीतिपूर्ण और शुद्ध अनुपम धर्म का उपदेश कर सकते हैं। पहले यह देखना जरूरी है कि अमुक ग्रन्थ या पुस्तक का रचयिता कौन है? ग्रथकार की प्रामाणिकता पर ग्रथ की प्रामाणिकता है। आज कल के बहुत से अधकचरे विद्वान् कहते हैं कि ग्रथकार के व्यक्तिगत जीवन से तुम्हें क्या मतलब है, तुम्हे तो वह जो शिक्षा देता है उसे देखो कि वह ठीक है या नहीं। किन्तु ऐसा कहने वाले व्यक्ति भ्रम में हैं। शास्त्रकार कहते हैं कि धर्म का उपदेशक वह हो सकता है जो अपनी आत्मा को गुप्त रखता हो। सयमरूपी ढाल में इन्द्रियों को उसी प्रकार काबू में रखता हो जिस प्रकार कछुआ अपने अंगो को ढाल में रखता है। इन्द्रिय दमन करने वाला ही सच्चा उपदेशक या लेखक हो सकता है।

किसने इन्द्रिय दमन कर लिया है और किसने नहीं किया है इसकी पहचान यह है कि जिसकी आखों में विकार न हो, शारीरिक चेष्टाए शान्त और पापशून्य हों। इन्द्रिय दमन का अर्थ आख कान आदि इन्द्रियों का नाश कर देना नहीं है किन्तु उनके पीछे रही हुई पाप भावना को मिटा देना है। आख से धर्मात्मा भी देखता है और पापी भी। किन्तु दोनों की दृष्टि में बड़ा अन्तर होता है। धर्मातमा पुरुष किसी स्त्री को देखकर उसके सुधार का उपाय सोचेगा और पापी पुरुष उसी स्त्री को देखकर अपनी वासना पूर्ति का विचार करेगा। जिस प्रकार घोड़े को शिक्षा देकर मन मुताबिक चलाया जाता है उसी प्रकार जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को मन माफिक चला सकता है, उनका गुलाम नहीं किन्तु मालिक बन सकता है, वही इन्द्रिय दमन करने वाला कहा जाता है। घोडे का मालिक लगाम के जरिये घोडे को कुमार्ग में नहीं जाने देता उसी प्रकार इन्द्रिय दमन करने वाला इन्द्रियों को विषय विकार की तरफ नहीं जाने देता। भगवद् भजन करने में उनका उपयोग करता है। यही इन्द्रिय दमन का अर्थ है।

धर्मोपदेशक हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह इन पाच पापों से रहित होना चाहिए। जो सब स्त्रियों को मा बहिन समान समझता हो और धर्मोपकरण के सिवा फूटी कोडी भी अपने पास न रखता हो अर्थात् जो कंचन और कामिनी का त्यागी हो वह धर्मोपदेशक हो सकता है और वही प्रीतिपूर्ण, शुद्ध और अनुपम धर्म का उपदेश दे सकता है।

मैने हिन्दू धर्म के विषय में गाधीजी का लिखा एक लेख देखा है। गाधीजी ने उस समय तक जैन शास्त्र देखे थे या नहीं, यह मै नही कह सकता। किन्तु जो सच्ची बात होगी वह शास्त्र में अवश्य निकल आयगी। गाधीजी ने उस लेख में यह बताया था कि हिन्दू-धर्म का कौन उपदेश कर सकता है? कोई पण्डित या शंकराचार्य ही इस धर्म का कथन कर सकता है यह बात नहीं है किन्तु जो पूर्ण अहिंसक, सत्यवादी और ब्रह्मचारी हो वही हिन्दू धर्म को कहने का अधिकारी हो सकता है। गाधीजी के लेख के पूरे शब्द मुझे याद नही है किन्तु उनका भाव यह था। गाधीजी और जैन शास्त्रों के विचार इस विषय में कितने मिलते है इस पर विचार करियेगा।

प्रकृत बीसवें अध्ययन के उपदेशक गणधर या स्थविर मुनि हैं। यह गुरुशिष्य सम्बन्ध हुआ। अब तात्कालिक उपायोपेय सम्बन्ध देख लें। दवा करना उपाय है और रोग मिटाना उपेय है। इस अध्ययन का उपायोपेय सम्बन्ध है ज्ञान प्राप्ति और इसके द्वारा मुक्ति। मुक्ति उपेय है और ज्ञान प्राप्ति उपाय है।

संसार में उपाय मिलना ही कठिन है। यदि उपाय मिल जाय और वह किया जाय तो रोग मिट सकता है। डाक्टर और दवा दोनों का योग होने पर बीमारी चली जाती है। किसी बाई के पास रोटी बनाने का सामान मौजूद न हो तो वह रोटी कैसे बना सकती है। यदि रोटी बनाने की सब सामग्री तय्यार हो तो रोटी बनाने में कोई कठिनाई नही हो सकती।

रोटी बनाने की सब सामग्री तय्यार रखी हो परन्तु यदि कर्त्ता रोटी बनाने वाला किसी प्रकार का प्रयत्न न करे तो रोटी कैसे बन सकती है? आटा और पानी अपने आप नहीं मिल सकते और न रोटी स्वय पक सकती है। कर्त्ता के उद्योग किये बगैर सब साधन या उपाय किस काम के। आप अपने लिए विचार करिये कि आपको क्या करना चाहिए? गफलत की नींद छोडकर जागृत हो जाइये जिससे धर्मकरणी के लिए मिले हुए साधन या उपाय व्यर्थ न होजाय। आपको आर्यक्षेत्र, उत्तम कुल और मनुष्य जन्म मिले हैं। यह क्या कम सामग्री है आपकी उम्र भी पक चुकी है। आप तत्व ज्ञान समझ सकते हो।

बहुत से लोग तो कच्ची उम्र में ही चल बसते हैं। यदि आप भी बचपन में ही चल बसते तो आपको कौन उपदेश देने आता। बालक, रोगी और अशक्त धर्म के अधिकारी नहीं माने जाते। उनसे कोई धर्म का उपदेश नहीं करता। अतः ज्ञानीजन कहते है कि उठ जाग! कब तक सोता रहेगा।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्नि बोधत
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया, दुर्गं पथस्तत्कवयो वदान्ति ॥

अर्थात्—हे मनुष्यों! उठो जागो और श्रेष्ठ मनुष्यो के पास जा कर ज्ञान प्राप्त कर लो। कारण कि ज्ञानी जन कहते हैं कि उस्त्रे की धारा पर चलना जितना कठिन है उतना ही इस विकट मार्ग (धर्म मार्ग पर चलना कठिन है।

जिस प्रकार प्रातःकाल माता अपने पुत्र से कहती है कि ऐ पुत्र! उठ जाग, खडा होजा, इतना दिन निकल आया है, कब तक सोता पडा रहेगा? उसी प्रकार ज्ञानी जन भी माता के प्रेम के समान प्रेम से सब जीवों पर दया लाकर कहते हैं कि ऐ मनुष्यों! किस गफलत में पडे हुए हो। उठो जागो। भाव निद्रा का त्याग करो। विषय कषायादि विकारों को छोड कर आत्म कल्याण के मार्ग में लगजाओ। वैराग्य शतक में ज्ञानी सोते हुए प्राणियों को जगाते हुए कहते हैं—

मा सुवह, जग्गियव्वं, पल्ला हयवम्मि किंस्स विस्समिह।
तिन्नि जणा अणुलग्गा रोगो जराए मच्चुए ॥

हे जीवात्माओं! मत सोओ! जाग जाओ। रोग, जरा और मृत्यु तुम्हारे पीछे पडे हुए हैं। यह बात बहुत विचारणीय है अतः एक कथा द्वारा इस मुद्दे को सरल बनाकर कहता हू।

दो मित्र जगल में जा रहे थे। उस में से एक थक गया था। थकने के साथ ही उसे कुछ आधार मिल गया। पास ही अच्छे घने वृक्ष है। सुन्दर नदी बह रही है सपाट चट्टान सामने है। और हवा भी शीतल मन्द और सुगन्ध युक्त चल रही है। यह सब अनुकूल सामग्री देखकर थका हुआ मित्र सो जाने के लिए ललचाया। वह मन में मनसूबे बाधने लगा कि यहा बैठकर शीतल वायु सेवन करना

चाहिए। सुन्दर फल खाना और पुष्पों की सुगन्ध लेना चाहिए। नदी की कलकल आवाज सुनते हुए निद्रा लेकर प्रकृति के सुख का अनुभव करना चाहिए।

दूसरा मित्र प्रकृति ज्ञान में निपुण था। वह जानता था कि ये फल-फूल कैसे हैं, यह हवा कैसी है तथा नदी की यह कल-कलाट क्या शिक्षा दे रही है। यह स्थान कितना उपद्रवयुक्त है, यह भी वह जानता था। उस ज्ञानी मित्र ने अपने भूले हुए दोस्त से कहा कि हे प्रिय मित्र! यह स्थान सोने के लिए उपयुक्त नहीं है। जल्दी उठ खड़ा हो और शीघ्र ही यहां से भाग चल। एक क्षण मात्र का भी विलम्ब मत कर। यहां तीन जने पीछे पड़े हुए हैं। जिन फल-फूलों को देख कर तेरा जी ललचाया है वे फलफूल विषयुक्त हैं। यहां की हवा भी विषैली है जो वातावरण तुझे अभी आकर्षित कर रहा है वही थोड़ी देर में तुझे विवश बना देगा और तेरा चलना फिरना भी बंद हो जायगा। यह नदी भी शिक्षा दे रही है कि जिस प्रकार कल कल करता हुआ मेरा पानी प्रतिक्षण बहता चला जा रहा है उसी प्रकार तेरी आयु भी क्षण क्षण घटती जा रही है।

क्या सोवे उठ जाग बाउरे।

अंजलि जल ज्यों आयु घटत है, देत पहरिया घरिय घाउरे॥ क्या०॥
इन्द्र चन्द्र नागेन्द्र मुनि चल कौन राजा पति साह राउरे।
भमत भमत भव जलिध पालते भगवन्त भक्ति सुभाउ नाउरे॥ क्या०॥
क्या विलम्ब अब करे बाउरे तरभव जलनिधि पार पाउरे।
आनन्द घन चेतन मय मूरति शुद्ध निरञ्जन देव ध्याउरे॥ क्या०॥

शास्त्रकार, ग्रन्थकार, कवि और महात्मा सब का कथन यही है कि हे जीवात्माओ! उठो। जागो। गफलत की नींद मत सो ओ।

कोई भाई कहेगा कि क्या आप हमको साधु बनाना चाहते हैं। मैं पूछता हूं कि क्या साधुपन बुरी चीज है? यदि साधुपन बुरी वस्तु होता तो आप साधुओं का व्याख्यान ही कैसे सुनते। साधुता शक्ति होने पर ही ग्रहण की जा सकती है। शक्ति न हो तो कोई साधुत्व स्वीकार करने की बात नहीं करता। आपको साधुत्व ग्रहण करने के संयोग मिले हुए हैं। अतः जागृत हो जाइये।

भगवन्त भक्ति स्वभाव नाउरे।

भगवान् की भक्ति रूप नौका मिली हुई है। उस नौका का सहारा लेकर संसार समुद्र पार कर जाइये। उस मित्र ने अपने थके हुए मित्र से कहा था कि हे दोस्त! यदि तू भूल नहीं सकता तो सामने यह नौका खडी है। इस पर सवार होकर पार लग जा। अब तो इस मूर्ख मित्र को चलना भी नहीं पडता है फिर भी यदि वह नौका पर सवार न हो और गफलत में सोया पडा रहे तो आप उसे क्या कहेंगे। आप कहेंगे कि वह बडा अभागा था जो ऐसे सुसयोग का लाभ न ले सका। आपके समक्ष भी भगवन् नाम रूपी नौका खडी है। सद्गुरु आपको समझा रहे हैं कि इस नौका पर सवार हो कर अनादि कालिन दु.ख दर्द को मिटालो। अधिक न कर सको तो कम से कम इस नौका पर सवार हो जाइये।

अभी मुनि श्रीमलजी ने आपको सुनाया है कि एक व्यक्ति साधु के स्थान पर आकर भी बुरे कर्म बाध सकता है और दूसरा वैश्या के भवन पर जाकर भी कर्मों की निर्जरा कर सकता है! बुरी भली भावनाओं की अपेक्षा से यह कथन ठीक है। फ़िर भी यह मत समझ लेना कि साधु का स्थान बुरा है और वैश्या का अच्छा। वैश्या के घर जाकर कोई विरला व्यक्ति ही बच सकता है। अतः स्थान की दृष्टि से वैश्या का स्थान बुरा और साधु का स्थान अच्छा है। लेकिन जो स्थान अच्छा है उस साधु स्थान पर जाकर यदि कोई व्यक्ति बुरे विचार करे अथवा दूसरों की निन्दा करे तो यह कितनी बुरी बात है। कदाचित् कोई साधु स्थान पर रहे उतनी देर तक अच्छे विचार रखे और वहा से अलग होते ही बुरे विचार करने लग जाय, सुनी या सीखी हुई शिक्षा को भूल जाय तो भी कोई लाभ नहीं गिना जा सकता। आप कहेंगे कि यह हमारी कमजोरी है कि हम आपकी दी हुई शिक्षाए शीघ्र भूल जाते हैं। मैं कहता हू यह केवल आपकी ही कमजोरी नही है किन्तु मेरा भी कच्चापन शामिल है। मेरी दी हुई शिक्षा को आप लोग याद नहीं रख सकते इस में मैं भी अपनी कमजोरी समझता हू। मैं मेरी कमजोरी दूर करने का प्रयत्न करूगा। परन्तु उपदेष्टा तो निमित्त कारण है। उपादान कारण आपका आत्मा है। यदि उपादान ही अच्छा न हो तो निमित्त क्या कर सकता है निमित्त के साथ उपादान शुद्ध होना चाहिए। किसी घडी को जब तक चाबी दी जाती रहे तब तक वह चलती रहे और चाबी देना बद करते ही यदि बद हो जाय तो आप उस घड़ी को कैसी कहेंगे। यही कहेंगे कि वह घडी खोटी है। इसी प्रकार मैं जब तक उपदेश देता रहू तब तक आप तहेत करते रहो और उपदेश सुनकर घर पहुचते ही यदि उसे भूल जाओ तो यह सच्चापन नहीं गिना जायगा। इस बात पर ध्यान दीजिये और गफलत को छोड़िये।

आपके सामने भगवद् भक्ति रूपी नाव खड़ी है । आप यदि उस पर बैठ गये तो क्या कमी हो जायगी । तुलसीदासजी ने कहा है—

जगनभ वाटिका रही है फली फूली रे ।
धुआं कैस धौरहर दैखि हूं न भूली रे ॥

ससार की बाडी जैसे आसमान में तारे छिटक रहे हों वैसे फली फूली हुई है । मगर यह बाड़ी स्थायी नहीं है । अतः ससार की भूल भुलैया में न फंसकर परमात्मा की भजन स्वरूप नौका में बैठ कर ससार समुद्र पार कर लें ।

आज कल बहुत से भाईयों यह खयाल है कि हमें परमात्मा के भजन करने की कोई आवश्यकता नहीं है । वे कहते हैं कि जो लोग परमात्मा का भजन किया करते हैं वे दुःखी देखे जाते हैं और जो कभी परमात्मा का नाम तक नहीं लेते बल्कि धर्म और परमात्मा का बायकाट करते हैं, वे लोग सुखी देखे जाते है । इस सवाल का जबाव यह है कि केवल परमात्मा का नाम लेना ही सुखी बनने का कारण नहीं है । किन्तु नाम स्मरण के साथ परमात्मा के बताये हुए नियमों का पालन करना भी जरूरी है । कोई प्रकट रूप में परमात्मा का नाम न लेता हो किन्तु उसके बताये नियमो का पालन करता हो तो वह सुखी होगा और कोई नियमों का पालन न करें और खाली नाम रटन्त करता रहे तो उससे दुःख दूर नहीं हो सकते । जो प्रकट रूप से नाम नहीं लेता किन्तु नियम पालन करता है वह सुख के साधन जुटाता है । अतः यह कहना कि परमात्मा का नाम लेने से या भजन करने से कोई दुःखी है कतई गलत धारणा है । भजन के साथ नियम आवश्यक है । एक आदमी ने गाडी में बैठे हुए एक पहलवान को देखा । देख कर उसने यह धारणा बाध ली कि गाडी में बैठने से आदमी पहलवान हो जाता है । उसे इस बात का भान न था कि पहलवान तो विशेष प्रकार की कसरत करने से बनता है । इसी प्रकार नियम पालने वाला प्रकट में नाम नहीं लेता अतः यह कह डालना कि नाम न लेने से सुखी है भ्रम पूर्ण विचार है । परमात्मा का भजन तो करना मगर उसके बताये नियम न पालना कैसा काम है, इस बात को एक दृष्टान्त से समझाता हू ।

एक सेठ के दो स्त्रियां थीं । बडी स्त्री गादी लगा कर हाथ में माला लेकर अपने पति का नाम जपती रहती थी । दिन भर मोतीलालजी मोतीलालजी की रटन्त

लगाती रहती। घर का कोई काम न करती थी। किन्तु इसके विपरीत छोटी स्त्री घर का सब काम करती रहती थी। उसने अपने मन में यह नक्की किया कि पति का नाम तो मेरे हृदय में है। चाहे मुह से उसका उच्चारण करू या न करू मुझे वे काम करते रहना चाहिये जिनसे पति देव प्रसन्न रहे। एक दिन बडी सेठानी सेठ के नाम की माला जपती हुई बैठी थी कि इतने में कहीं बाहर से थके प्यासे सेठजी आगये और उससे कहा कि प्यास लगी है, पानी का लोटा भर कर लादे बडी सेठानी ने उत्तर दिया कि इतनी दूर से चल कर आये हो सो तो नहीं थके और अब घर आकर थक गये। पानी का लोटा भी नहीं लाया जाता। मेरे नाम जपन में क्यों बाधा पहुचाते हो। क्या आपको मालूम नहीं कि मै किसका काम कर रही हू। और किसका नाम ले रही हू। मै आपही का नाम ले रही हू।

भाइयों! बताइये कि क्या बडी सेठानी का नाम जपन सेठजी को पसन्द आ सकता है? सेठजी ने कहा कि तेरा यह नाम जपन व्यर्थ है। एक प्रकार का ढोंग है। दोनों का वार्तालाप सुन कर छोटी सेठानी तुरत अच्छे कलशे में ठण्डा पानी भरलाई और सेठजी की सेवा में उपस्थित किया। इन दोनों स्त्रियों में से सेठजी का मन किसकी ओर झुकेगा। सेठजी किसके कार्य को पसन्द करेंगे। कर्त्तव्य करने वाली के काम को ही सेठजी पसन्द करेंगे। न कि कोरा नाम जपने वाली का काम। इसी प्रकार भक्त भी दो प्रकार के होते हैं। एक केवल नाम जपने वाले और दूसरे नियम पालन या कर्त्तव्य करने वाले।

बहुत से लोग परमात्मा का नाम लेते हैं। किन्तु आपको मालूम है कि वे किस लिए नाम लेते हैं। वे 'रामनाम जपना और पराया माल अपना' करने के लिए नाम लेते हैं। इस तरह परमात्मा का नाम लेना दिखावामात्र है। नाम का महत्त्व नियम पालन के साथ है।

मतलब यह है कि कोई प्रकट में प्रभुनाम लेता है और कोई प्रकट में नाम न लेकर नियम पालन करता है। किन्तु भक्ति नाम न लेनेवाले में भी मौजूद है क्योंकि वह कर्त्तव्य का पालन करता है। अतः ऐसे व्यक्ति को सुखी देखकर यह न मान बैठना चाहिए कि यह नाम न लेने से सुखी है आपके सामने भगवद् भक्ति की नाव खडी है। उसमें बैठ जाओ और भक्ति का रग चढालो।

ऐसा रंग चढालो दाग न लागे तेरे मनको ।

सुदर्शन चरित्र—

सच्चे भक्त कैसे होते है इसका दाखला चरित्र द्वारा आपके सामने रखता हू। कल कहा गया था कि सुदर्शन को धन्यवाद दिया गया है। सुदर्शन को भक्ति का आडंबर ढोंग रखने के कारण धन्यवाद नही दिया गया किन्तु भक्ति के अंग का पूरी तौर से पालन करने के कारण धन्यवाद दिया गया है।

सुदर्शन का जन्म चपापुरी में हुआ था। चम्पापुरी का राजा दधिवाहन था। सुदर्शन के शीलपालन के साथ तथा इस कथा से सम्बन्ध रखनेवाले पात्रों का परिचय कराना आवश्यक है।

राजा कैसा होना चाहिए इसका शास्त्र में वर्णन है। जो क्षमकर और क्षेमधर हो वही सच्चा राजा है। केवल अच्छे हाथी घोडों की सवारी करनेवाला ही राजा नही होता किन्तु जो पहले की बधी हुई मर्यादाओं का पालन करे और नवीन उत्तम मर्यादाए बाधता हो वह राजा है। क्षेम शब्द का अर्थ है कुशल। जो प्रजा की कुशल चाहता है वह राजा है ऐसा न हो कि खुद के महल उजले रखले और प्रजा के सुख दुःख का तनिक भी खयाल न करे। वह राजा कहलाने का अधिकारी ही नहीं है। जो-प्रजा में प्रजा हित के सुधार करता है और उसे सुखी बनाता है वह राजा है।

राजा स्वय क्षेम-कुशल करने वाला हो तथा पहले बधी हुई अच्छी और उपयोगी मर्यादाओं को तोड़ने वाला न हो। पुरानी मर्यादाओं को केवल पुरानी होने के कारण तोडना नहीं चाहिए। पुरानी मर्यादा के पालन के साथ ही साथ नवीन योग्य मर्यादा भी बाधना चाहिए। यह सच्चे राजा का लक्षण है। '**नवी करणी नहीं और पुराणी मेटनी नहीं**' यह तो अच्छे राजा का चिह्न नहीं है।

दधिवाहन राजा उपर्युक्त गुणों से युक्त था। उसके अभया नामक पटरानी थी। अभया के रूप सौन्दर्य के कारण राजा उस पर बहुत मुग्ध था। वह मानता था कि मेरी रानी स्त्रियों में रत्न के समान है। जिस रानी पर राजा इतना मुग्ध था वही रानी सुदर्शन के शील की कसौटी बनी है। राजा जिस रानी का गुलाम बना हुआ था उस रानी के भी वश में न होने वाला सुदर्शन कैसा होना चाहिए इस बात का जरा विचार करिये।

नाटक में पुरुष स्त्री का वेष धारण करते है और स्त्री की तरह नखरे दिखाने की चेष्टा करते हैं। ऐसा करने से कभी २ पुरुष बहुत अशो में अपना पुरुषत्व भी खो बैठते हैं। नाटक में स्त्री बने हुए पुरुष के हाव भाव देखकर आप लोग बड़े प्रसन्न होते है। जो खुद अपना पुरुत्व भी खो चुका है वह दूसरों को क्या शिक्षा देगा।

आज कल लोगों को नाटक सिनेमा का रोग बहुत बुरी तरह लगा हुआ है। घर में चाहे फाकाकसी करना पडे मगर सिनेमा देखने के लिए तो जरूर तय्यार हो जायेंगे। रुपये खर्च होने के उपरान्त नाटक सिनेमा देखने से क्या २ हानियाँ होती है इसका जरा खयाल करिये। जब कि लोग बनावटी स्त्री पर भी इतने मुग्ध होते देखे जाते हैं तब अभया पर राजा इतना मुग्ध हो इस में क्या आश्चर्य की बात है। वह तो साक्षात् स्त्री थी और बहुत रूप सम्पन्न थी। आश्चर्य तो इस बात में है कि कहा तो आजकल के लोग जो बनावटी रूप मात्र देखकर मुग्ध बन जाते हैं और कहा वह सुदर्शन जो रूप लावण्य सपन्न अभया पटरानी पर भी मुग्ध न हुआ।

जब मैं अहमदनगर में था तब वहां के लोग मेरे सामने आकर कहने लगे कि एक नाटक कम्पनी आई है जो बहुत अच्छा नाटक करती है। देखने वालों पर अच्छा प्रभाव पडता है। इस प्रकार उन लोगों ने मेरे सामने उस नाटक मंडली की बहुत प्रशसा की। उस समय मैंने उन लोगों से यही कहा कि फिर कभी इस विषय में समझाऊगा।

एक दिन मैं जगल गया था कि दैवयोग से उस नाटक मण्डली में पार्ट लेनें वाले लोग भी उधर ही घूमते हुए जा रहे थे। वे लोग अपनी धून में मस्त होकर जा रहे थे। मैंने उन लोगों की चेष्टाए और आपसी बातचीत सुनी। सुनकर मैं दग रह गया। क्या ये वेही लोग है जिनकी नाटक मण्डली की इतनी प्रशसा मेरे सामने की गई थी। उनकी बातें और चेष्टाए इतनी गदी थी कि कुछ कहा नही जा सकता। मैंने मनमें विचार किया कि ये लोग सीता, राम या हरिश्चन्द्र का पार्ट अदा करते हैं, किन्तु क्या दर्शकों पर इनके खुद के भावों-विचारों का असर न होता होगा। क्या केवल इनके द्वारा दिखाये या कहे हुए सीता, राम या हरिश्चन्द्र के कार्यों या गुणों का ही लोगों पर असर होता है? या नाटक दिखाने वालों के व्यक्तिगत चरित्रों का भी प्रभाव दर्शकों पर पड़ता है? मैं पहले व्याख्यान में कह चुका हू कि किसी ग्रथ या उपदेश की प्रामाणिकता उसके कर्त्ता या उपदेशक पर अवलम्बित है। फोनोग्राफ की चुडी से निकले हुए शब्दों का विशेष असर नहीं होता। असर होता है शब्दों के पीछे रही हुई चारित्र शील आत्मा का।

कदाचित् कोई भाई यह दलील करे कि हमें तो गुण ग्रहण करना है। हमें तो कोई कैसा है? इस बात से प्रयोजन नहीं। इसका उत्तर यह है कि यदि गुण ही लेना है, और सामने वाले का आचरण नहीं देखना है तो नाटक में साधु बनकर आये हुए साधु को आप लोग वंदना नमस्कार क्यों नहीं करते और उसे सच्चा साधु क्यों नहीं मानते? आप कहेंगे वह तो नकली साधु है उसे असली कैसे मानेंगे। मैं कहता हूं कि जैसे साधु नकली है वैसे अन्य पात्र भी नकली ही हैं। जंगल से वापस लौटकर व्याख्यान में मैंने लोगों से खूब कहा कि ऐसे लोगों के द्वारा दिखाए हुए खेल से आपका कुछ कल्याण नहीं होने वाला है।

महारानी अभया बहुत सुन्दर थी और राजा दधिवाहन उस पर बहुत मुग्ध था। फिर भी सुदर्शन रानी पर मुग्ध न हुआ। उसके जाल में न फँसा। ऐसे महापुरुष की शरण लेकर भगवान् से प्रार्थना करो कि हे प्रभो! ऐसे चारित्रशील व्यक्ति के चारित्र का अंश हमको भी प्राप्त हो।

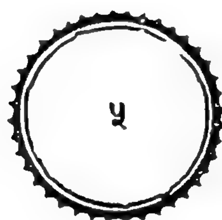
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किंवा।

जो लक्ष्मीवान् की सेवा करता है क्या वह कभी भूखा रह सकता है। जो भगवान् की शरण जाता है वह भी उनके समान बन जाता है। वैसे ही शील धर्म का पालन करने वाले सुदर्शन की शरण ग्रहण करने से शील पालने की क्षमता अवश्य प्राप्त होगी।

यह चरित्र मनरूपी कपडे के मैल को साफ करने का भी काम करेगा। लोकनीति, शरीर रक्षा और संसार व्यवहार की बातें भी इस चरित्र में आयेंगी। आज समाज में जो अनेक कुरीतियाँ घुसी हुई हैं, उनके कारण जो हानि हो रही है, उनके विरुद्ध भी इस चारित्र में कुछ कहा जायगा। अतः इस चरित्र को सावधान होकर सुनिये और शील धर्म को अपनाकर आत्म कल्याण करिये।

राजकोट
८—७—३६ का
व्याख्यान

सिद्ध साधक



" श्री मुनि सुव्रत सायबा .... । "



यह २० वें तीर्थङ्कर मुनि सुव्रत स्वामी की प्रार्थना है । आत्मा को परमात्मा की प्रार्थना कैसे करना चाहिए यह बात अनेक विधियों और अनेक शब्दों द्वारा कही हुई है । प्रभु नाम अनेक हैं । उन नामों को लेकर भक्तों ने अनेक रीति से प्रार्थना की है । इस प्रार्थना में कहा गया है कि आत्मा को स्वदोषदर्शी होना चाहिए । सब लोगों को यह इच्छा रहती है कि हम हमारी प्रशंसा ही सुनें । कोई हमारी निन्दा न करें । लेकिन ज्ञानी कहते है कि प्रशसा सुनने की आदत छोड कर अपने दोष देखने सुनने की आदत डालो । यह सुनने की कभी मन में भावना न लाओ कि मेरे में क्या २ गुण हैं किन्तु मेरे में क्या दोष या त्रुटियाँ हैं उनको जानने-सुनने की कोशीश करो । कदाचित् अभी आत्मा में दोष न दिखाई दे तो भी यह मानना चाहिए कि मेरे में पहले के बहुत से बुरे संस्कार विद्यमान है । तथा अनादि कालीन ज्ञानावरणीयादि कर्म रूप दोष मुझमें भरे पडे है । अपने को सदोष मानकर परमात्मा से प्रार्थना करो कि हे

भगवान्! मैं पाप का पुञ्ज हू, मुझ में अनन्त पाप भरे हैं। अब मै तेरी शरण में आया हू अतः मुझे पाप मुक्त कर दे।

इस प्रकार की प्रार्थना वही कर सकता है जो पाप को पाप मानता है, खुद को अपराधी मानकर स्वगुण कीर्तन की वाछा नहीं रखता तथा अपनी कमजोरिया सुनने के लिए उत्सुक रहता हो। जो अपने गुण सुनने के लिए लालायित रहता है वह अभी प्रभु प्रार्थना से दूर है।

अब शास्त्र की वात कहता हूँ। कल कहा था कि इस बीसवें अध्ययन में जो कुछ कहना है वह सब पीठिका, प्रस्तावना या भूमिका रूप से प्रथम गाथा में कह दिया गया है। इस गाथा का सामान्य अर्थ कर दिया गया है। अब व्याकरण की दृष्टि से विशेष अर्थ तथा परमार्थ रूप अर्थ करना बाकी है। इस गाथा में जो शब्द प्रयुक्त किए गये हैं उनसे किन किन तत्त्वों का बोध होता है यह टीकाकार बतलाते हैं।

मैने पहले यह बताया था कि नवकार मत्र के पाच पदों में दूसरा सिद्ध पद तो सिद्ध है और शेष चार पद साधक हैं। एक दृष्टि से यह बात ठीक है किन्तु टीकाकार दूसरी दृष्टि सामने रखकर अरिहन्त पद की गणना भी सिद्ध में करते है। इस दृष्टि से दो पद सिद्ध है और शेष तीन साधक हैं। अरिहन्त की गणना सिद्ध में की जाती है उसके लिए शास्त्रीय प्रमाण भी है। कहा है—

एवं सिद्धा वदन्ति परमाणु।

अर्थात्—सिद्ध परमाणु की इस प्रकार व्याख्या करते हैं। सिद्ध बोलते नहीं। उनके शरीर भी नहीं होता। वैसी हालत में यह मानना पड़ेगा कि यहा जो सिद्ध शब्द का प्रयोग किया गया है वह अरिहन्त वाचक ही है। इससे स्पष्ट है कि अरिहन्त की गणना भी सिद्ध पद में है। शेष तीन पद आचार्य, उपाध्याय और साधु तो साधु हैं ही। उनका नाम निर्देश करके नमस्कार किया गया है।

पुन: यह प्रश्न खड़ा होता है कि जब अरिहन्त को नमस्कार कर लिया गया तब आचार्य, उपाध्याय और साधु को नमस्कार करने की क्या आवश्यकता है। राजा को जब नमस्कार कर लिया गया तब परिषद् बाकी नहीं रह जाती। अरिहन्त राजा है। आचार्य उपाध्याय साधु उनकी परिषद् हैं। इन्हें अलग नमस्कार क्यों किया जाय।

प्रत्येक कार्य दो तरह से होता है। पुरुष प्रयत्न से तथा महत्पुरुषों की सहायता से। इन दोनों उपायों के होने पर कार्य की सिद्धि होती है। महत्पुरुषों की सहायता होना बहुत आवश्यक है किन्तु कार्य सिद्धि में स्वपुरुषार्थ प्रधान है। अपना पुरुषार्थ होने पर ही महत्पुरुषों की सहायता मिल सकती है। और तभी वह सहायता काम आ सकती है। कहावत भी है कि—

हिम्मते मरदां मददे खुदा

यदि मनुष्य स्वयं हिम्मत करता है तो परमात्मा भी उसकी मदद करता है। जो खुद हिम्मत या पुरुषार्थ नहीं करता उसकी कोई कैसे मदद कर सकता है। अतः खुद पुरुषार्थ करना चाहिये। मदद भी मिलती जायगी।

अरिहन्त को नमस्कार करके आचार्यादि को नमस्कार करने का कारण उनसे सहायता प्राप्त करना है। यद्यपि काम स्वपुरुषार्थ से होता है फिरभी महान् पुरुषों की सहायता की आवश्यक्ता रहती है। जैसे मनुष्य लिखता खुद है मगर सूर्य या दीपक के प्रकाश के बिना नहीं लिख सकता। लिखने में प्रकाश की सहायता लेना अनिवार्य है। मनुष्य चलता खुद है मगर प्रकाश की मदद जरूरी है। उसके बिना चलते चलते खड्डे में गिर सकता है। इसी प्रकार प्रत्येक काम में महत्पुरुषों के सहारे की जरूरत रहती है।

परमात्मा की प्रार्थना के विषय में भी यही बात है। यदि हृदय में परमात्मा का ध्यान हो तो दुर्वासना उस समय टिक ही नहीं सकती। परमात्म ध्यान और दुर्वासना का परस्पर विरोध है। एक समय में दोनों का निर्वाह नहीं हो सकता। जब हृदय में दुर्वासना न रहे तब समझना चाहिए कि अब उसमें ईश्वर का निवास है। यदि जानबूझ कर हृदय में दुर्वासना रखे और ऊपर से परमात्मा का नाम लिया करे तो यह केवल ढोंग है। दिखावा है। सिद्ध और साधक दोनों की सहायता की अपेक्षा है अतः दोनों को नमस्कार किया गया है।

नमस्कार रूप में जो प्रथम गाथा कही गई है उसमें एक बात और समझनी है गाथा में कहा है कि सिद्ध और सयति को नमस्कार कर के तत्व की शिक्षा दूगा। इस कथन में दो क्रियाएं हैं। जब एक साथ दो क्रियाएं हो तब प्रथम क्रिया त्वा प्रत्ययान्त होती है इस क्रिया का प्रयोग अपूर्ण काम के लिये होता है। जैसे कोई कहे कि मैं अमुक काम

करके यह काम करूंगा। इसमें दो क्रियाएं हैं। एक अपूर्ण और दूसरी पूर्ण। प्रकृत गाथा में श्री आचार्य ने दो क्रियाएं रख कर एक बड़े परमार्थ की सूचना की है। जैसे सूर्य को अन्धकार के साथ किसी प्रकार का द्वेष नहीं है और न वह अन्धकार का नाश करने के लिये ही उदय होता है। उसका उदय होने का स्वभाव है और अन्धकार का स्वभाव प्रकाश के अभाव में रहने का है। अतः सूर्य उदय से अन्धकार नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार ज्ञानियों की अज्ञानियों या अज्ञान के साथ किसी प्रकार का द्वेष नहीं है। सत्य तत्व का प्रकाशन या निरूपण करने से असत्य या अज्ञान का खण्डन अपने आपही हो जाता है। ज्ञानी के निरूपण से अज्ञानान्धकार नष्ट होता ही है।

इस गाथा में जो क्रियाएं हैं उनसे भी ऐसा ही हुआ है। बौद्धों की मान्यता है कि आत्मा निरन्वय विनाशी है। किन्तु ज्ञानी कहते हैं कि यह बात सत्य नहीं है। आत्मा का निरन्वय नाश नहीं होता किन्तु सान्वय नाश होता है। पर्यायदृष्टि से आत्मा का नाश होता है द्रव्यदृष्टि से नहीं। जैसे मिट्टी का घडा बनाया गया। मिट्टी का मिट्टीरूप पर्याय नष्ट होगया और घट पर्याय बन गया। मिट्टी का बिल्कुल नाश नहीं हुआ किन्तु रूप बदल गया है यदि मिट्टी का निरन्वय नाश होजाय तब तो घडा किसी हालत में नहीं बनाया जा सकता। सोने के कडे को तुडवाकर हार बनवाया गया। यहां कडे का नाश हुआ है मगर निरन्वय नाश नहीं हुआ। कडा रूप पर्याय बदल गया और हार रूप बन गया। सोना दोनों अवस्थाओं मे कायम रहा। मतलब कि जगत् का हर पदार्थ द्रव्यरूप से नाश नहीं होता किन्तु पर्यायरूप से विनष्ट होता है। यदि द्रव्यही नष्ट होजाय तो फिर पर्याय किसका गिना जाय।

इस गाथा में दो क्रियाएँ दीगई हैं। जिनसे बौद्धों की निरन्वय नाश मानने की बात खंडित होजाती है। टीकाकार कहते है कि यदि आत्मा निरन्वय नाशी हो तो गाथा में दीहुई दोनों क्रियाएँ निरर्थक हो जायगी। सिद्ध और सयति को नमस्कार करके तत्त्व की शिक्षा देता हू'। इस वाक्य में 'नमस्कार करके' तथा 'शिक्षा देता हू' ये दो क्रियाएँ है। प्रथम नमस्कार किया गया और बाद में शिक्षा देने का कार्य आरम्भ किया गया। दोनों क्रियाओं का कर्ता आत्मा एकही है। यदि आत्मा का निरन्वय एकान्त नाश माना जाय तो दोनों क्रियाओं का प्रयोग व्यर्थ हो जायगा। आत्मा क्षण क्षण विनष्ट होता है और वह भी सर्वथा नष्ट होता है। उसकी पर्यायें ही नष्ट नहीं होतीं किन्तु वह खुद नष्ट होजाता है। वैसी हालत में नमस्कार करनेवाला आत्मा नष्ट हो जाता है फिर शिक्षा कौन

देगा। अथवा यह मानना पडेगा कि शिक्षा देनेवाला आत्मा दूसरा है क्योंकि नमस्कार करनेवाला आत्मा तो क्षणविनाशी होने के कारण उसी समय नष्ट हो गया। शिक्षा देने के लिए कायम न रहा। इस प्रकार आत्मा को निरन्वय विनाशी मानने से उपर्युक्त दोनों क्रियाएँ व्यर्थ हो जाती हैं। किन्तु आत्मा बौद्ध की मान्यता मुताबिक एकात विनशी नहीं है। आत्मा द्रव्यरूप से कायम रहता है। अतः दोनों क्रियाएँ सार्थक हैं। दो क्रियाओं के प्रयोगमात्र से ही बौद्धों की क्षणवादिता का खण्डन होजाता है।

आत्मा का एकान्त विनाश मानने से अनेक हानिया है। इस सिद्धान्त पर कोई टिक भी नहीं सकता। उदाहरण के लिये किसी आदमी ने दूसरे आदमी पर दावा दायर किया कि मुझे इससे अमुक रकम लेनी है वह दिलाई जाय। मुदायले ने कोर्ट में हाकिम के समक्ष यह बयान दिया कि यह दावा बिलकुल झूठा है। कारण यह है कि रुपये देने वाला मुद्दई और रुपये लेने वाला मुदायला दोनों ही कभी के नष्ट हो चुके हैं। हाकिम ने मन में सोचा कि यह देनदार चालाकी करके सिद्धान्त की ओट में बचाव करना चाहता है। अतः उसने उस आदमी को कैद की सजा देने की बात सुनाई। सुन कर वह रोने लगा और कहने लगा कि मैं रुपये दे दूगा। सजा मत करिये। हाकिम ने उस आदमी से कहा कि अरे रोता क्यों है ? तू तो कहता था कि आत्मा क्षण क्षण में पूर्णरूप से विनष्ट हो जाता है और बदल जाता है तब सजा भुगतने वक्त भी न मालूम कितनी बार आत्मा नष्ट हो जायगा और बदल जायगा। दुःख किस बात का करता है। मै रुपये दिये देता हू मुझे सजा मत करिये। कह कर उसने उसी वक्त रुपये दे दिये और पिंड छुड़ाया। इस प्रकार वह अपने क्षणवाद के सिद्धान्त पर कायम न रह सका।

कहने का मतलब यह है कि जब भावी पर्याय का अनुभव किया जाता है तब भूत पर्याय का अनुभव क्यों नहीं किया जाता। अवश्य किया जा सकता है। यदि ऐसा माना जाय कि जीव भावी क्रिया का तो अनुभव करता है लेकिन भूत पर्याय का अनुभव नहीं करता तब सब क्रियाएं व्यर्थ सिद्ध होगी। मोक्ष भी नहीं होगा। आत्मा के विनाश के साथ क्रिया का भी विनाश हो जायगा। इस प्रकार पुण्य पाप कुछ न रहेंगे। अतः हर एक पदार्थ एकान्त विनाशी हैं। यह सिद्धान्त ठीक नहीं है। टीकाकार ने दो क्रियाओं का प्रयोग करके दार्शनिक मर्म समझाया है।

बीसवें अध्ययन में कही हुई कथा महा पुरुष की है। इस कथा के वक्ता महा निर्ग्रन्थ

है और श्रोता महाराजा है। इन महा पुरुषों की बातें हम जैसों के लिये कैसे लाभ दायी होगी इसका विचार करना चाहिये। इस कथा के श्रोता राजा श्रेणिक का परिचय करते हुए कहा है:—

पभूय रयणो राया सेणिओ मगहाहिवो।

मगधदेश का स्वामी राजा श्रेणिक बहुत रत्न वाला था। पहले रत्न का अर्थ समझ लीजिए। आप लोग हीरे, माणिक आदि को रत्न मानते हो लेकिन ये ही रत्न नहीं हैं, कुछ अन्य पदार्थ भी रत्न कहे जाते है। नरों में भी रत्न होते है, हाथी, घोडा आदि में भी रत्न होते हैं और स्त्रियों में भी रत्न होते है। इस प्रकार रत्न का अर्थ बहुत व्यापक है। रत्न का अर्थ श्रेष्ठ भी होता है। जो श्रेष्ठ होता है उसे भी रत्न कहा जाता है। राजा श्रेणिक के यहा ऐसे अनेक रत्न थे।

यह बात विचार करने लायक है कि शास्त्रकार ने श्रेणिक राजा के लिए अन्य विशेषणों का प्रयोग न करके **"बहुत रत्नों का स्वामी था"** ऐसा क्यों कहा। प्रभूत रत्न कहने का आशय यह है कि यदि कोई अनेक रत्नों का स्वामी हो तो भी उसका जीवन बेकार है। किन्तु जिसने अपने आत्म-रत्न को पहचान लिया है उसका जीवन सार्थक है। यदि आत्मा को न पहिचाना तो सब रत्न व्यर्थ हैं। अन्य सब रत्न तो सुलभ है किन्तु धर्म—रत्न दुर्लभ है। धर्मरूपी रत्न के मिलने पर ही अन्य रत्न लेखे में गिने जा सकते है। अन्यथा वे व्यर्थ हैं।

आप लोगों को सब से बडी सम्पदा मनुष्य जन्म के रूप में मिली हुई है। आप इसकी कीमत नहीं जानते। यदि आप इसकी कीमत जानते होते तो यह विचार अवश्य करते कि हम ककड़ पत्थर के बदले जीवन रूपी रत्न क्यों खो रहे है। आप पूछेंगे कि हम क्या करें कि जिससे हमारा यह मनुष्य जन्म रूप रत्न व्यर्थ न होकर सार्थक बन जाय। आपको रोज यही तो बताया जाता है कि यदि जीवन सफल करना है तो एक एक क्षण का उपयोग करो। वृथा समय मत गमाओ। हर क्षण परमात्मा का घोष हृदय में चलने दो। आत्मा को ईश्वर मय बनाने का प्रयत्न करना रत्न को सार्थक बनाना है।

फिर आप पूछेंगे कि 'आत्मा को परमात्मा कैसे बनाया जाता है' तो इसका उत्तर यह है कि ससार में पदार्थ दो प्रकारके होते है १ काल्पनिक २ वास्तविक। पदार्थ

कुछ और है और उसके विषय में कल्पना कुछ और करली जाय, यह अज्ञान है। अज्ञान से की हुई कल्पना ही आपको गडबड़ में डाल देती है। कल्पना का पदार्थ दूसरा होता है और वास्तविक पदार्थ दूसरा। वास्तविक पदार्थ के विषय में की गई कल्पना से उत्पन्न अज्ञान तब तक नहीं मिटता जब तक कि वह वास्तविक देख न लिया जाय। दृष्टान्त के तौर पर समझिये कि किसी आदमी ने शीप में चांदी की कल्पना करली। जब वह निकट पहुंचा और ध्यान पूर्वक देखने लगा तब उसका वह मिथ्या ज्ञान नष्ट हो गया और वास्तविक ज्ञान उत्पन्न हो गया। जैसे शीप में चांदी की कल्पना मिथ्या है क्योंकि अन्य पदार्थ को अन्य रूप से मान लेना अर्थात् जो पदार्थ जिस रूप में नहीं है उसे उस रूप में मान लेना ही अज्ञान है। इस प्रकार की कल्पना को छोड़िये और अपने हृदय में परमात्मा के नाम का गुंजन होने दीजिये। यह सोचिये कि मै नाक कान हाथ पैर आदि नहीं हू। ये तो पुद्गल के रूप हैं। मैं शुद्ध चेतनमय आनन्द घन मूर्ति हू। इस तरह सोचने स आपको जो मनुष्य जन्म रूप रत्न मिला हुआ है वह सार्थक होगा।

जब आप सोते हैं तब आख कान आदि सब बद रहते है फिर भी स्वप्नावस्था मे आत्मा देखता व सुनता है। स्वप्नावस्था में इन्द्रिया सो जाती है और मन जागृत रहता है। इस अवस्था को ही स्वप्नावस्था कहते हैं। वाह्य इन्द्रिया सोई हुई हैं फिर भी स्वप्न में इन्द्रियों का काम होता ही है। स्वप्न में मनुष्य नाटक सीनेमा देखता है और गाने भी सुनता है। इन्द्रियों के सोते रहते स्वप्नावस्था में इन्द्रियों का काम कौन करता है, इस वातका जरा ध्यान पूर्वक विचार कीजिये। इस वात का विवेक करिये कि आत्मा की शक्ति अनन्त है लेकिन भ्रमवश अथवा अज्ञान या मिथ्याधारणा के कारण शरीरादि को अपना मान बैठा है आत्मा का यह भ्रम वास्तविक पदार्थ के देख लेने से तुरत मिट सकता है। जैसे शीप को देखते ही चांदी का भ्रम मिट जाता है। जड शरीर और चेतन आत्मा का यह वे मेल सम्बन्ध क्यों और कैसे है इस वात पर विचार करिये। विचार करने से सद्ज्ञान प्राप्त होगा। विचार करके जो पदार्थ हमारे नहीं हैं उनको छोड़ने की कोशिश कीजिये। जब शरीर भी हमारा अपना नहीं हो सकता तो धन दौलत और कुटुम्बादि हमारे कब हो सकते हैं। अपने पराये का वास्तविक ज्ञान ही मोक्ष की कुंजी है। आत्मा में अनन्त शक्तिया रही हुई हैं। यह बिना आख के देखता और बिना कान के सुनता है। जीभ के बिना रसास्वादन करता है। स्वप्न में न इन्द्रिया है और न पदार्थ। फिर भी आत्मा कल्पना के द्वारा सब कुछ अनुभव करता ही है। स्वप्न मे आत्मा गंध रस स्पर्श की कल्पना करके आनन्द मानता है।

क्रोध लोभ आदि विकारों के वश में भी होता है। स्वप्न में सिंह आदि हिंसक प्राणियों को देखकर भयभीत भी होता है। दुःखी भी होता है और सुखी भी। कोई मुझे काट रहा है। तथा कोई मेरे शरीर पर चन्दन का लेप कर रहा है आदि भी अनुभव होता है।

स्वप्न की सब घटनाओं से आत्मा की शक्ति का पता लगता है कि बिना भौतिक इन्द्रियों की सहायता के भी वह किस प्रकार सब काम चला लेता है। इसका अर्थ यह हुआ कि भौतिक पदार्थों के साथ आत्मा का कोई ताल्लुक नहीं है। जो सम्बन्ध है वह वास्तविक नहीं है किन्तु हमारी गलत समझ के कारण है। 'मैं इस तरह की कल्पना की चीजों में आत्मा को न डालू किन्तु परमात्मा में अपने आपको लगादू' यह विचार करने से मनुष्य जीवन रूपी रत्न की सार्थकता है।

प्रत्येक काम उसके स्वरूप के अनुसार ठीक होना चाहिए। उद्देश्य कुछ और हो और काम कुछ अन्य करते हों तो साध्य सिद्ध नहीं हो सकता। ऐसा करने से 'बनाने गये गणेश और बन गये महेश' वाली कहावत चरितार्थ होती है। कार्य किस प्रकार ढग से करना चाहिए यह बात एक उदाहरण से समझाता हू।

एक साहसी चोर साहस करके राजा के महल में घुस गया। महल में वह घुस तो गया, किन्तु राजा की नींद खुल जाने से वह भयभीत होगया। चोर का साहस ही कितना होता है? मालिक के जाग जाने पर चोर की ठहरने की हिम्मत नहीं रहती। राजा को जागा हुआ देख कर चोर ने सोचा कि यदि मैं पकड़ा जाऊंगा तो मारा जाऊगा। अतः वह चोर वहा से भागा। राजा ने भागते हुए चोर को देख लिया। राजा ने सोचा यदि मेरे महल में से चोर बिना पकडे भाग जायगा तो मेरी बदनामी होगी अतः वह चोर के पीछे पीछे दौडा। आगे चोर भागता जाता था और उसके पीछे राजा भी दौडता जाता था। राजा को चोर के पीछे दौडता देखकर सिपाही आदि भी उसके पीछे दौडने लगे। आगे--आगे चोर, उसके पीछे राजा और राजा के पीछे सिपाही। अन्त में चोर थक गया और विचारने लगा कि राजा उसके समीप में ही पहुँच रहा है, यदि पकड़ा जाऊगा तो जानकी खैरियत नहीं हैं, मगर बचने की भी कोई गुजाइश नहीं है। भागते हुए ही उसने आगे करने लायक बात तै करली। पास ही स्मशान आगया था। उसने सोचा कि इस समय मुझे मुर्दा बन जाना चाहिए। मुर्दा बन जाने से राजा मेरा क्या बिगाड़ सकेगा। मुर्दा बन जाने पर मुझे जिन्दा आदमी का कोई काम न करना चाहिये। मुझे पूरी तरह मुर्दा बन जाना चाहिए। स्वांग करना तो हूबहू करना चाहिए।

यह सोचकर वह धड़ाम से श्मशान में जाकर गिर पड़ा। उसने अपनी नाड़ियों का ऐसा संकोच कर लिया कि मानो साक्षात् मुर्दा ही हो। राजा उसके पास आगया और कहने लगा कि यह चोर पकड़ लिया गया है। इतने में सिपाही लोग भी आगये और कहने लगे कि महाराज यह काम हमारा है। इस काम के लिये आपको कष्ट करने की जरूरत न थी। चोर आपके भय से गिर भी पड़ा है और मर भी गया है। राजा ने सिपाहियों से कहा कि अच्छी तरह तपास करो, कहीं कपट करके तो नहीं पड़ा है। सिपाही लोग चोर को खूब हिलाने लगे। वह मुर्दे के समान हिलाने से इधर उधर होने लगा।

मनुष्य की आपत्ति भी महान् शिक्षा देती है। आपत्ति मनुष्य को उन्नत बनाती है। "**रंग लाती है हिना पत्थर पै घिस जाने के बाद**" मेंहदी को जितना घिसा जाय उतना उसका रंग ज्यादा निखरता है। मनुष्य भी जितनी आपत्तियां सहन करता है उतना अच्छा आदमी बनता है। राम को यदि वनवास करने की आपत्ति न उठानी पड़ती तो आज उन्हें कोई नहीं जानता। भगवान् महावीर यदि उपसर्ग और परिषह न सहते तो कौन उनका नाम लेता। कौन उन्हें महावीर कहता। सीता, मदनरेखा, अंजना, सुभद्रा आदि की शोभा आपत्ति सहन करने के कारण ही है। अतः आपत्ति में घबड़ाना नहीं चाहिए किन्तु धैर्य पूर्वक उसका सामना करना चाहिए।

राजा ने पुनः सिपाहियों से कहा कि घबड़ाओ नहीं धैर्य पूर्वक परीक्षा करो कि वास्तव में यह मर गया है या जिन्दा है। सिपाही उस मुर्दा बने हुए चोर को खूब पीटने लगे। पीटते पीटते उसके खून निकल आये मगर उसने उफ तक नहीं किया। सिपाहियों ने पुनः राजा से कहा कि सचमुच यह मर गया है। कपट पूर्वक नहीं पड़ा है। हमने इसे इतना पीटा है कि खून बह चला है फिर भी इसने चूं तक नहीं किया है। राजा ने कहा कि दर असल वह जिन्दा है। मरा नहीं है। मुर्दे के शरीर में से खून नहीं निकलता। उसके खून का पानी हो जाता है। इसके शरीर से खून निकल आया है अतः यह जिन्दा है। इसे धीरे से उठालो और इसके कान में कहदो कि तेरे सब गुन्हा माफ हैं, उठ खड़ा हो। यह सुनते ही चोर उठ खड़ा हुआ और राजा के सामने आकर हाजिर होगया।

राजा सोचने लगा कि यह चोर मेरे भय से मुर्दा बन गया था। मनुष्य के भय से भी मनुष्य इस प्रकार मुर्दा बन सकता है तो मुझे मृत्यु के भय से क्या करना चाहिए। राजा ने चोर से पूछा कि तेरे पर इतनी मार पड़ने पर भी तू क्यों नहीं बोला? चोर ने

उत्तर दिया कि माहराज ! जब मैंने मुर्दे का स्वांग किया था तब कैसे बोल सकता था। मुर्दा बना और मार पडने पर रोने लगू यह कैसे हो सकता है। राजा ने चोर से कहा कि मालूम होता है तुम बडे भक्त हो। चोर ने कहा मैं भक्ति कुछ नहीं जानता, मैं तो आपके भय से अचेत पडा था। राजा ने पुनः कहा कि हे चोर ! जैसे मेरे भय से तू मुर्दा-अर्थात् शरीरादि के प्रति अनासक्त बना वैसे ही यदि इस ससार के दुःखों के भय से बन जाय तो तेरा कल्याण होजाय। चोर कहने लगा मैं इन ज्ञान की बातों को नही समझता।

दृष्टान्त कहने का साराश यह है कि चोर ने मुर्दे का स्वांग धरा था और उसे पूरा निभाया भी था। यदि वह मार खाते वक्त बोल जाता तो क्या उसकी रक्षा हो सकती थी ? कभी नहीं। उसने मार खाकर भी अपने विरुद का रक्षण किया था। चोर के समान आप भी यदि अपने विरुद की रक्षा करो तो भगवान् दूर नहीं हैं। ऊपर से यदि कहो कि हमारे हृदय में भगवान् बसा है और भीतर में काम क्रोध आदि विकारो को स्थान दे रखो तो क्या आपका स्वाग पूरा गिना जायगा और आपके मन में भगवान् वास कर सकते है। चोर ने अपना विरुद निभाया तो क्या आप नहीं निभा सकते। सासारिक प्रपचो और झगडों में पड कर अपना विरुद मत खोओ। भक्त कबीरदास ने कहा है कि—

तू तो राम सुमर जग लड़वा दे ॥

कोरा कागज काली स्याही, लिखत पढ़त वाको पढ़वादे ॥
हाथी चलत है-अपनी गत सों, कुतर भुकत वाको भुकवादे ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधू, नरक पचत वाको पचवादे ॥

आप कहेंगे कि आज राम कहा हैं ? राम तो दशरथ के पुत्र थे जिनको हुए हजारों वर्ष बीत चुके हैं। मैं कहता हू राम आप सब के हृदय में बसा हुआ है।

रमन्ति योगिनो यस्मिन् स रामः

जिसमें योगी लोग रमण करते है वह राम है। योगी लोग आत्मा में ही रमण करते हैं अतः आपकी आत्मा ही राम है ऐसी आत्मा का सदा स्मरण करिये। किन्तु स्मरण किस प्रकार करना चाहिए। इसका खास खयाल रखिये। यदि चोर मार खाते वक्त उफ भी कर देता तो उस का साग पूरा न गिना जाता। इसी प्रकार आप परमात्मा का नाम लेकर भी यदि ससार के झगडों में पड गये तो क्या भक्त बनने का आपका स्वांग पूरा

गिना जायगा । कभी नहीं । यह सोचना चाहिए कि मेरा आत्मा हाथी के समान है । ससार के झगडे कुत्तों के समान हैं । यदि इस आत्मा रूपी हाथी के पीछे झगडे टण्टे रूप कुत्ते घूमते हों तो इसमे आत्मा को क्या । कोई चोर कागज पर स्याही से कुछ भी लिखता हो तो वह लिखना रहे इसमे आत्मा को क्या हानि । इस प्रकार सोचकर परमात्मा की शरण जाने से आपका सब मनोरथ सिद्ध होगा । चोर द्वारा पूरा स्वाग निभाने पर राजा का हृदय परिवर्तित होगया तो कोई कारण नहीं है कि आपके द्वारा ईश्वर भक्त का स्वांग पूरी तरह निभाने पर आपके लिए लोगों का हृदय न बदले । आप लोग, पर्दा परीक्षा हो जाने के बाद भक्त के लिए सब कुछ करने के लिए तय्यार रहते है । भक्ति में कपट नहीं होना चाहिए । कपट का पर्दा कभी न कभी फाश हुए बिना नहीं रहता ।

आप लोग घरबार वाले हैं अत व्याख्या सुन कर यहां से घर पहुचते ही ससार की अनेक उपाधिया आपको आ घेरेगी । उपाधियों के वक्त भी यदि आप लोग मेरा यह उपदेश ध्यान में रक्खोगे तो आपका वास्तविक कल्याण होगा और यहा बैठ कर व्याख्यान श्रवण का कार्य सफल होगा । व्याख्यान हाल एक शिक्षालय है जहां अनेक विषयों की शिक्षा दी जाती है । शिक्षालय से शिक्षा ग्रहण करके उसका उपयोग जीवन व्यवहार में किया जाता है । इसी प्रकार यहा से ग्रहण की हुई शिक्षाओं का पालन यदि जीवन में न किया गया तो शिक्षा लेना व्यर्थ हो जायगा । जो पालन करेगा उसका यह भव और पर भव दोनों सुधरेगा ।

अग्नि शीतल शील से रे, विषधर त्यागे विष ।
शशक सिंह अज गज होजावे, शीतल होवे विषरे ॥ धन. ॥
सत्य शील को सदा पालते, श्रावक सुर श्रृङ्गार ।
धन्य धन्य जो गृहस्थवास में, पाले दुर्धर धार रे ॥ धन. ॥

सुदर्शन का व्याख्यान न तो उसके शरीर का है और न वैभव का । किन्तु वह शील का पालन करके मुक्तिपुरी में पहुँचा है अत उसको नमस्कार करते हैं और उसका व्याख्यान भी करते हैं ।

गो आज सुदर्शन मौजूद नहीं है अर्थात् उसका वह भौतिक कलेवर जिसके द्वारा उसने महान्शीलव्रत का पालन किया था हमारे समक्ष उपस्थित नहीं है । तथापि

उसका यश शरीर चरित्र और मोक्ष तीनों मौजूद हैं। जिस शील का आचरण करने से आज उसका व्याख्यान किया जारहा है उस शील के प्रताप से धधकती हुई आग भी शीतल होजाती है। दृष्टान्त के लिए सीता की अग्नि परीक्षा प्रसिद्ध ही है। कदाचित् सीता का दृष्टान्त पुराना बताकर कोई भाई इस बात पर एतबार न करे कि शील से अग्नि कैसे शान्त होसकती है तो उनके लिए ऐतिहासिक ऐसे उदाहरण मौजूद है कि धर्म की परीक्षा के लिए उनको आग में झोंका गया लेकिन अग्नि उन्हें न जला सकी। केवल भारत में ही ऐसे उदाहरण नहीं है किन्तु युरोप में भी ऐसे उदाहरण हैं। अग्नि कहती है कि मैं कुशील-व्यक्ति को जला सकती हू सुशील या सदाचारी को जलाने की मुझ में ताकत नहीं है। उस सुशील आत्मा की महान आध्यात्मिक शान्ति के सामने मेरी गरमी नष्ट हो जाती है। जब द्रव्यशील की यह शक्ति है तब भावशील की क्या बात करना।

मेरे कथन को सुन कर कि शील पालने से अग्नि शीतल हो जाती है कोई भाई एक आध दिन शील का पालन करके यह जांच न करे कि देखूं मेरे हाथ को अग्नि जलाती है या नहीं। और यह सोच कर कोई घर जाकर चूल्हे की अग्नि में अपना हाथ मत डाल देना। यदि कोई ऐसा करेगा तो वह मूर्ख गिना जायगा। जिस शक्ती की बात कही जा रही है माप भी उसी के अनुसार होना चाहिये। कहा जाता है और सत्य भी है कि हवा में भी वजन होता है। कोई आदमी एक लिफाफे में भर कर उसे तोलने लगे तो यह न तुलेगी। लिफाफे में हवा न तुलने से कोई आदमी यह निष्कर्ष निकाले कि हवा में वजन होने की बात बिलकुल गलत है तो यह उसकी भूल है। हवा तोली जा सकती है मगर उसे तोलने के साधन जुदे होते है हवा बहुत सूक्ष्म है अतः उसे तोलने के साधन भी सूक्ष्म होंगे किसी के ऐसा कह देने मे क्या हवा के विषय में किसी प्रकार की शंका की जा सकती है।

शील की शक्ति से अग्नि शीतल हो जाती है मगर कब और किस हदतक शील पालने से होती है उसका अध्ययन करना चाहिए। केवल शील की बाधा लेली और लगे करने परीक्षा कि हमारा हाथ अग्नि में जलता है या नहीं तो पछताना पड़ेगा। हाथ जला बैठेंगे। शील की प्रशंसा करते हुए शास्त्र में कहा है—

देव दाणव गंधव्वा जक्ख रक्खस किन्नरा।
बंभचारिं नमंसन्ति दुक्करं जे करंति तं॥

देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर सब दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले को नमन करते हैं। इस प्रकार ब्रह्मचर्य की शक्ति बताई गई है और कहा गया है कि ब्रह्मचारी के लिए इस जगत् में कोई गुण या शक्ति अप्राप्य नहीं है उसके लिए सब कुछ सुलभ है। किन्तु जिस प्रकार लोहे के बाट से अनाज का वजन किया जाता है उसी प्रकार स्थूल साधनों से उसका माप नहीं हो सकता। इस तरह माप करने से आपके हाथ कुछ न लगेगा। यदि महापुरुषों की बातों पर विश्वास लाकर आप भी इस मार्ग में आगे बढ़ते जाओगे तो अवश्य एक दिन ऐसी शक्ति भी प्राप्त हो जायगी कि अग्नि भी शीतल हो जाय।

शील की शक्ति से साँप निर्विष हो जाता है। कहावत है कि **'साँप किसका सगा है'** वह समय पर अपनी शक्ति सब पर आजमाता है किन्तु शीलवन्त का साप भी सगा है यह बात अनेक उदाहरणों से सिद्ध है ऐसे ऐतिहासिक उदाहरण है कि सांपने काटने के बजाय सहायता की है। नूरजहा बेगम मुहम्मद नाम के सिपाही की लडकी थी। एक बार भूखों मरने के कारण मुहम्मद और उसकी स्त्री अफगानिस्तान से-भारत आ रहे थे स्त्री गर्भवती थी। मार्ग में उसको लड़की हो गई मोहम्मद ने कहा कि इस समय अपने को अपना भार उठाना भी कठीन है वैसी हालत में इस छोकरी को कैसे उठायेंगे। अतः यहीं पर छोड दो स्त्री ने पति की बात मान कर एक व्रक्ष के नीचे उस नादान बच्ची को वहीं पर छोड दिया। कुछ आगे चलने पर स्त्री घबड़ाई और चलने में असमर्थ हो गई। आप जानते हैं उसका मातृ हृदय था। वह लड़की को इस प्रकार निराधार छोड देने की बात को सहन न कर सकी। अखीर मोहम्मद वापस उस वृक्ष के नीचे उस बच्ची को लेने के लिये गया। वह वहां क्या देखता है कि एक साप उस बच्ची पर फन करके धूप से उसकी रक्षा कर रहा है।

साँप भी तब काटता है जब किसी में शैतानियत होती है। यदि शैतानियत न हो तो सांप भी नहीं काटता। सेंधिया के पूर्वज महादजी के लिए कहा जाता है कि वे पेशवा के यहां जूतों की रक्षा करने के लिए नौकर थे। एक बार पेशवा किसी महफिल में गये। महादजी उनके जूते छाती पर रखकर सोगये। जब पेशवा वापस आये तब देखा कि महादजी पर एक साप छाया किए हुए है। उन्होंने सोचा कि साक्षात कालरूप सांप भी जिसकी रक्षा कर रहा है उस आदमी से मैं ऐसा तुच्छ काम ले रहा हूं। ऐसा सोचकर पेशवा ने महादजी को बढ़ाना शुरू किया। आज महादजी के वंशज करोड़ों की जागीरें

भोग रहे हैं। उनके पैसे और कागज आदि पर सांप का चित्र आजभी रहता है।

कहने का भावार्थ यह है कि जब शील पूर्णरूप से पाला जाय तब सांप भी नहीं काटता। लेकिन कोई इस कथन पर से साप के मुँह में हाथ न डाले अथवा सांप को पकडकर बच्चे पर छाया न करवाये। कोई ऐसा करे तो यह उसकी भूल है। यदि हममें शील का तेज होगा तो प्रकृति अपने आप हमारी सहायता करेगी।

शील की शक्ति से सिंह भी खरगोश के समान गरीब बन जाते हैं। जो व्यक्ति सुदर्शन के समान किसी भी समय और किसी भी परिस्थित में अपने शील का भग नहीं होने देता किन्तु सदा शील की रक्षा करता है, उसी का शील सच्चा शील है आप में शील के प्रति सच्ची श्रद्धा हो तो फिर कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती। आज सच्चे कामों के प्रति लोगों की श्रद्धा हिलचुकी है अतः सब कुछ कहना पडता है।

जिस व्यक्ति में पूर्ण शील है वह किसी प्रकार का चमत्कार दिखाना पसन्द नहीं करता। आप कहेंगे कि चमत्कार देखे बिना हमें शील धर्म पर विश्वास कैसे होगा? यदि साधु लोग चमत्कार दिखाने लगें तो बहुत लोग उनकी तरफ आकर्षित होंगे। यह बात ठीक है कि चमत्कार को नमस्कार मगर सच्चे साधुओं को न तो नमस्कार की परवाह होती है और न वे कभी चमत्कार दिखाने की झंझट में पड़ते हैं। वे तो अपना आत्म लाभ करने में तल्लीन रहते हैं। इस बात को एक छोटे से दृष्टान्त से समझाता हू।

एक आदमी ने जल तरण विद्या सीखी। सीख कर लोगों को अपना चमत्कार दिखाने लगा कि देखो मैं जल में किस प्रकार टिक सकता हू और तैर सकता हूं। एक योगी वहां आ पहुँचा और कहने लगा कि अरे क्या अभिमान में फूले जा रहे हो। तीन पैसे की विद्या पर इतना घमण्ड मत करो। उस आदमी ने कहा योगीराज! मैंने साठ वर्ष तक परिश्रम करके यह जलतरण विद्या सिखी है और आप इसे तीन पैसे की बता रहे हैं। हा यह तीन ही पैसे की विद्या है कारण तीन पैसे में नदी पार की जा सकती है। नौका वाला तीन पैसे लेकर उस पार पहुँचा देता है। साठ साल के परिश्रम से यदि तूने यही सिखा है तो वस्तुतः समय बरबाद किया है। अगर साठ साल बिगाड़ कर इस तरह का खेल ही दिखाया तो जीवन नष्ट ही किया है। साठ सालों में केवल नौका ही बन सके। आत्म कल्याण न साध सके।

इसी प्रकार यदि कोई घरबार छोड कर साधु बने और शील धर्म का पालन करे।

फिर भी आत्म-कल्याण करने के बजाय चमत्कार दिखाने में लग जाय तो उसका साधुत्व नष्ट हो जायगा। अतः सच्चे साधु शील रूपी जल में निमग्न रहते हैं। वे चमत्कार नहीं दिखाते। साधु तो घर स्त्री आदि छोड कर शील का पालन करने के लिए ही कटिबद्ध हुए है अत पालते ही हैं मगर सुदर्शन ने गृहस्थावस्था में होते हुए भी शील का पालन किया है अतः वे विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

शील किस प्रकार पाला जाता है इसके शास्त्र में अनेक उदाहरण मौजूद हैं। आप उनको ध्यान में लीजिये। केवल यह मान बैठिये कि स्त्री प्रसग न करना ही शील है। वास्तव में जब तक वीर्य की रक्षा न की जाय तब तक तेज नहीं आ सकता। अतः पर स्त्री या घर स्त्री सब से बच कर नष्ट होने वाले वीर्य की रक्षा कीजिये।

एक आदमी की अगूठी में रत्न जड़ा हुआ था। वह उसे निकाल कर पानी में फेंकना चाहता था। दूसरा आदमी अपनी अगूठी की रक्षा किया करता था। इन दोनों में से आप किसे होशियार कहेंगे। रत्न की रक्षा करने वाले को ही होशियार कहेंगे। जिस वीर्य से आपका यह शरीर बना हुआ है उस वीर्य रूपी रत्न को इधर--उधर नष्ट करना कितनी मूर्खता है। यदि आप उसकी रक्षा करेंगे तो आप में तेजस्विता आ जायगी। आज लोग वीर्यहीन होते जा रहे हैं यही कारण है कि डाक्टरों की शरण लेनी पड़ती है। पहले के लोग वीर्यवान् होते थे अतः डाक्टरी सहायता की उन्हें बहुत कम आवश्यकता पड़ती थी।

आज संतति निरोध के नाम पर स्त्री का गर्भाशय ऑपरेशन कराके निकलवा डालने का भी रिवाज चल पड़ा है स्त्री का गर्भाशय निकलवा देने पर चाहे जितना विषय सेवन किया जाय, कोई हर्ज नहीं, यह मान्यता आज कल बढ़ती जारही है लेकिन यह पद्धति अपना ने से आपके शील की तथा आपकी कोई कीमत न रहेगी। वीर्य रक्षा करने से ही मनुष्य की कीमत है वीर्य को पचा जाने में ही बुद्धिमत्ता है।

आधुनिक डाक्टरों का मत है कि जवान आदमी शरीर मे वीर्य को नहीं पचा सकता। ऐसा करने से दूसरी हानि होने की सम्भावना रहती है। इस मान्यता के विपरीत हमारे ऋषि मुनियों का अनुभव कुछ जुदा है। शास्त्र में ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये नववाड बतलाई हुई है जिनकी सहायता से वीर्य शरीर में पचाया जा सकता है।

अमेरिकन तत्ववेत्ता डाक्टर थौर एक बार अपने शिष्य के साथ जंगल में गया

भोग रहे हैं। उनके पैसे और कागज आदि पर सांप का चित्र आजभी रहता है।

कहने का भावार्थ यह है कि जब शील पूर्णरूप से पाला जाय तब सांप भी नहीं काटता। लेकिन कोई इस कथन पर से साप के मुँह में हाथ न डाले अथवा सांप को पकडकर बच्चे पर छाया न करवाये। कोई ऐसा करे तो यह उसकी भूल है। यदि हममें शील का तेज होगा तो प्रकृति अपने आप हमारी सहायता करेगी।

शील की शक्ति से सिंह भी खरगोश के समान गरीब वन जाते हैं। जो व्यक्ति सुदर्शन के समान किसी भी समय और किसी भी परिस्थित में अपने शील का भग नहीं होने देता किन्तु सदा शील की रक्षा करता है, उसी का शील सच्चा शील है आप में शील के प्र ति सच्ची श्रद्धा हो तो फिर कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती। आज सच्चे कामों के प्रति लोगों की श्रद्धा हिलचुकी है अतः सब कुछ कहना पडता है।

जिस व्यक्ति में पूर्ण शील है वह किसी प्रकार का चमत्कार दिखाना पसन्द नहीं करता। आप कहेंगे कि चमत्कार देखे विना हमें शील धर्म पर विश्वास कैसे होगा? यदि साधु लोग चमत्कार दिखाने लगें तो बहुत लोग उनकी तरफ आकर्षित होंगे। यह बात ठीक है कि चमत्कार को नमस्कार मगर सच्चे साधुओं को न तो नमस्कार की परवाह होती है और न वे कभी चमत्कार दिखाने की झंझट में पड़ते हैं। वे तो अपना आत्म लाभ करने में तल्लीन रहते हैं। इस बात को एक छोटे से दृष्टान्त से समझाता हू।

एक आदमी ने जल तरण विद्या सीखी। सीख कर लोगो को अपना चमत्कार दिखाने लगा कि देखो मैं जल में किस प्रकार टिक सकता हू और तैर सकता हूं। एक योगी वहां आ पहुँचा और कहने लगा कि अरे क्या अभिमान में फूले जा रहे हो। तीन पैसे की विद्या पर इतना घमण्ड मत करो। उस आदमी ने कहा योगीराज! मैंने साठ वर्ष तक परिश्रम करके यह जलतरण विद्या सिखी है और आप इसे तीन पैसे की बता रहे हैं। हां यह तीन ही पैसे की विद्या है कारण तीन पैसे में नदी पार की जा सकती है। नौका वाला तीन पैसे लेकर उस पार पहुँचा देता है। साठ साल के परिश्रम से यदि तूंने यही सिखा है तो वस्तुतः समय बरबाद किया है। अगर साठ साल बिगाड़ कर इस तरह का खेल ही दिखाया तो जीवन नष्ट ही किया है। साठ सालों में केवल नौका ही बन सके। आत्म कल्याण न साध सके।

इसी प्रकार यदि कोई घरबार छोड कर साधु बने और शील धर्म का पालन करे।

फिर भी आत्म-कल्याण करने के बजाय चमत्कार दिखाने में लग जाय तो उसका साधुत्व नष्ट हो जायगा। अतः सच्चे साधु शील रूपी जल में निमग्न रहते हैं। वे चमत्कार नहीं दिखाते। साधु तो घर स्त्री आदि छोड कर शील का पालन करने के लिए ही. कटिबद्ध हुए हैं अत. पालते ही हैं मगर सुदर्शन ने गृहस्थावस्था में होते हुए भी शील का पालन किया है अतः वे विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

शील किस प्रकार पाला जाता है इसके शास्त्र में अनेक उदाहरण मौजूद हैं। आप उनको ध्यान में लीजिये। केवल यह मान बैठिये कि स्त्री प्रसग न करना ही शील है। वास्तव में जब तक वीर्य की रक्षा न की जाय तब तक तेज नहीं आ सकता। अतः पर स्त्री या घर स्त्री सब से बच कर नष्ट होने वाले वीर्य की रक्षा कीजिये।

एक आदमी की अगूठी में रत्न जडा हुआ था। वह उसे निकाल कर पानी में फेंकना चाहता था। दूसरा आदमी अपनी अगूठी की रक्षा किया करता था। इन दोनों में से आप किसे होशियार कहेंगे। रत्न की रक्षा करने वाले को ही होशियार कहेंगे। जिस वीर्य से आपका यह शरीर बना हुआ है उस वीर्य रूपी रत्न को इधर--उधर नष्ट करना कितनी मूर्खता है। यदि आप उसकी रक्षा करेंगे तो आप में तेजस्विता आ जायगी। आज लोग वीर्यहीन होते जा रहे हैं यही कारण है कि डाक्टरों की शरण लेनी पड़ती है। पहले के लोग वीर्यवान् होते थे अतः डाक्टरी सहायता की उन्हें बहुत कम आवश्यकता पड़ती थी।

आज सतति निरोध के नाम पर स्त्री का गर्भाशय ऑपरेशन कराके निकलवा डालने का भी रिवाज चल पड़ा है स्त्री का गर्भाशय निकलवा देने पर चाहे जितना विषय सेवन किया जाय, कोई हर्ज नहीं, यह मान्यता आज कल बढ़ती जारही है लेकिन यह पद्धति अपना ने से आपके शील की तथा आपकी कोई कीमत न रहेगी। वीर्य रक्षा करने से ही मनुष्य की कीमत है वीर्य को पचा जाने में ही बुद्धिमत्ता है।

आधुनिक डाक्टरों का मत है कि जवान आदमी शरीर मे वीर्य को नहीं पचा सकता। ऐसा करने से दूसरी हानि होने की सम्भावना रहती है। इस मान्यता के विपरीत हमारे ऋषि मुनियों का अनुभव कुछ जुदा है। शास्त्र में ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये नववाड़ बतलाई हुई है जिनकी सहायता से वीर्य शरीर में पचाया जा सकता है।

अमेरिकन तत्ववेत्ता डाक्टर थोर एक बार अपने शिष्य के साथ जंगल मे गया

था। शिष्य ने उनसे पूछा कि यदि कोई आदमी अपने वीर्य को शरीर में न पचा सके तो उसे क्या करना चाहिये। थौर ने उत्तर दिया कि ऐसे व्यक्ति के लिये जीवन भर में एक बार स्त्री प्रसग करना अनुचित नहीं है। ऐसा करना वीर का काम है। जिस प्रकार सिंह जीवन में एक बार सिंहनी से मिलता है। वैसे ही जो जीवन में एक बार स्त्री सग करता है वह वीर पुरुष है। शिष्य ने पूछा कि यदि ऐसा करने पर भी मन न रुके तो क्या करना चाहिये। थौर ने उत्तर दिया कि साल में एक बार स्त्री प्रसग करना चाहिये। फिर शिष्य ने पूछा यदि इस पर भी मन न रुके तो क्या करना। गुरु ने कहा कि मास में एक बार स्त्री से मिलना चाहिये। यदि इस पर भी मन न रुके तो क्या करना चाहिये, पूछने पर थौर ने उत्तर दिया कि फिर मर जाना चाहिये।

पवनजय की हनुमानजी एक मात्र सतान थे। अजना पर कोप करके पवनजी बारह वर्ष तक अलग रहे। अलग रह कर उन्होने दूसरा विवाह नहीं किया था किन्तु ब्रह्मचर्य का पालन करते रहे। बारह वर्ष बाद अजना से मिले थे अतः हनुमान जैसा वीर पुत्र हुआ था। आज लोगों को सशक्त और तेजस्वी पुत्र तो चाहिये मगर यह विचार नहीं करते कि हम वीर्य रक्षा कितनी करते है। डाक्टर थौर ने कहा है कि मास में एक बार स्त्री प्रसग करने पर भी यदि मन न रुकता हो तो उस आदमी को मर ही जाना चाहिये क्योंकि जो आदमी मास में एक वार से अधिक वीर्य नाश करता है उसके लिये मरने के सिवाय और क्या मार्ग है।

आज समाज की क्या दशा है। आठम चौदस को भी शील पालने की शिक्षा देनी पड़ती है। आठम चौदस की प्रतिज्ञा लेकर लोग ऐसे भाव दिखलाते हैं मानो हम साधुओं पर कोई उपकार करते हैं। सच्चा श्रावक स्व स्त्री का आगार होने पर भी अपनी स्त्री के साथ भी संतोष से काम लेगा। जहां तक होगा बचने की कोशीश करेगा। सब सुधारों का मूल शील है। आप यदि जीवन में शील को स्थान देंगे तो कल्याण है सुदर्शन किसका लड़का था। और उसका जन्म किस प्रकार हुआ यह बात अवसर होने पर आगे कही जायगी।

राजकोट
८—७—३६ का
व्याख्यान

स्व तं त्र ता



"सुज्ञानी जीवा भजले रे जिन इकवीसमां । प्रा०.........।"



यह इकवीसवें तीर्थंकर भगवान् नेमीनाथ की प्रार्थना है । परमात्मा की प्रार्थना कैसी करनी चाहिए इस विषय पर बहुत विचार किया जा सकता है किन्तु इस समय थोडासा प्रकाश डालता हू । इस प्रार्थना में कहा गया है कि—

तू सो प्रभु, प्रभु सो तू है, द्वैत कल्पना मेटो ।

यह एक महावाक्य है । इसी प्रकार दूसरों ने भी कहा है-

देवो भूत्वा देवं यजेत्

इन पदों का भावार्थ यह है कि प्रभु की प्रार्थना गुलाम बनकर मत करो किन्तु परमात्म स्वरूप बनकर करो ।

मे प्रसन्न होकर हमें सुखी बना देगा, किन्तु ईश्वरत्व तो नहीं दे देगें। बादशाह और नौकर के दृष्टान्त से आत्मा और परमात्मा में जो साम्य बताया गया है वह आध्यात्मिक मार्ग में लागू नही हो सकता। बादशाह और नौकर का दृष्टान्त स्थूल भौतिक है। जब कि आत्मा और परमात्माका सम्बन्ध सूक्ष्म है, आध्यात्मिक है। इस प्रकार की कल्पना आध्यात्मिक मार्ग में कोई मूल्य नही रखती।

अनलहक या खुदा शब्द का अभिप्राय यह है कि मैं ईश्वर हू। खुदा का अर्थ है जो खुद से बना हो। तो क्या आत्मा किसी का बनाया हुआ है? क्या आत्मा बनावटी है? जैसे कुभकार मिट्टी से घड़ा बनाता है, उसी प्रकार हमको भी किसी ने बनाया है? जब कोई हमें बना सकता है तो कोई हमारा विनाश भी कर सकता है। जैसे कि कुभकार घड़ा बना भी सकता है और फोड़ भी सकता है। ऊपर के सब प्रश्न निरर्थक हैं। वास्तव में आत्मा वैसा नहीं है। यदि आत्मा बनावटी हो तो मुक्ति या स्वतन्त्रता के लिए किये हुए हमारे प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध होंगे। हम क्या हैं? और कैसे हैं? सो इस प्रार्थना में बताया ही है:—

तू सो प्रभु, प्रभु सो तू है, द्वैत कल्पना मेटो।
शुद्ध चेतन्य आनन्द विनयचन्द परमारथपद भेंटो॥ सुज्ञानी॥

कायरता और दुविधाके कपड़े फेंककर आत्म स्वरूपको पहिचानिये। आपका आत्मा ईश्वरके आत्मा से छोटा नही है। आप तो इतना विकास कर चुके हो, आपकी आत्मा ईश्वर के बराबर है, इस में क्या संदेह है। खसखस जितने शरीर में निगोद के अनन्त जीव रहे हुए हैं, उनका आत्मा भी ईश्वर के आत्मा के समान है।

ज्ञानियों के कथानानुसार निगोद के जीव भी ईश्वर रूप हैं। आत्मा की दृष्टि मे ईश्वर और इन जीवों मे कोई भेद नहीं है। यह बात समझने के लिए यदि किसी अनुभवी सद्‌गुरु से ठाणांग सूत्र सुना जाय तो शका का कोई स्थान न रहे। श्री ठाणाग सूत्र के प्रथम ठाणे में कहा है कि —

एगे आया

अर्थात् आत्मा एक है-समान है। सिद्ध और ससारी का कोई भेद न रख कर कहा है कि आत्मा एक है। सब का आत्मा एक समान है जैनों के '**एगे आया**' एका-

त्मवाद और वेदान्तियों के अद्वैत वाद में नयदृष्टि से किसी प्रकार का भेद नहीं है। एकान्त दृष्टि पकड़ने पर भेद पड़ जाता है। शुद्ध संग्रह नय की दृष्टि से एक आत्मा है। चाहे वह सिद्ध हो चाहे ससारी। जैसे मिट्टी मिला हुआ सुवर्ण और मिट्टी से अलग सुवर्ण एक वस्तु है। मगर व्यवहार में उनमें भेद गिना जाता है व्यवहार में एक ही डली की शुद्ध सुवर्ण की रकमों में भी भेद गिना जाता है जब कि सराफ की दृष्टि में कोई भेद नहीं होता है। यदि मनुष्य हिम्मत न हारे तो मिट्टी में मिले हुए सोनेको शुद्ध सोना बना सकता है। ताप आदिके द्वारा मैल दूर किया ही जाता है। किन्तु जब तक मिट्टी और सोना आपस में मिला हुआ है तब तक व्यवहार में अन्तर गिना जायगा। मूल्य में भी बड़ा अन्तर रहता है। मिट्टी में रहे हुए सोने को यदि सोना न माना जाय तो कहीं जेब में से तो सोना नहीं टपक पड़ता। मिट्टी में ही सोना है और प्रयत्न विशेष के द्वारा वह अलग किया जा सकता है। जिन लोगों ने सोने की खाने देखी हैं वे इस बात को अच्छी तरह समझ सकते हैं।

जिस प्रकार शुद्ध और अशुद्ध सोने में अंतर है और वह अन्तर व्यवहार की दृष्टि से है उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा में जो भेद है वह व्यवहारनय से है। शुद्ध संग्रहनय की दृष्टि से उनमें कोई भेद नहीं है। जैसे मिट्टी में मिला हुआ सोना भी सोना ही है वैसे ही कर्ममल से आवृत आत्मा भी ईश्वर ही है। जिस प्रकार सुवर्ण निकाले जानेवाले मिट्टी के डले को देखकर स्थूल समझवाला व्यक्ति उसमें सोना नहीं देख सकता है किन्तु इस विषय का विशेषज्ञ व्यक्ति उस डले में स्पष्ट रूप से सोना देखता है। उसी प्रकार माया के पर्दे में फँसे हुए और ससार के व्यवहारों में मशगूक व्यक्ति के आत्मा में भी ज्ञानी-जन परमात्मपन देख रहे हैं। मतलब यह कि आत्मा और परमात्मा की एक ही जाति है। भेद तो औपाधिक है। वास्तविक भेद कुछ नहीं है अतः विद्वानों ने अनुभव करके 'अनल हक' या 'एगे आया' कहा है।

आज के जमाने में 'हमारा आत्मा ईश्वर है' यह मानकर चलने में बड़ी कठिनाई होरही है। यह कठिनाई मान्यता की ही कठिनाई है। वास्तव में आत्मा से परमात्मा बनना बड़ा सरल काम है। यदि महात्मा लोगों की सत्संगति रूप सहायता प्राप्त होजाय तो अपने को ईश्वर मानकर आगे बढने में कोई कठिनाई नहीं है। दीपक से दीपक जलता है। यह बात एक उदाहरण कहकर समझाना चाहता हूं।

एक साहूकार का लडका बुरी सगत में फस गया। उसके मुनीम गुमाश्ता आदि उसे बहुत समझाते मगर वह किसी की न मानता था। उसने उन समझाने वाले मुनीम गुमाश्तों आदि को भी नोकरी से पृथक् कर दिया। बुरी सोबत में पडकर उसने अपनी सारी सम्पत्ति भी खो दी। हितकारी लोग उसे बुरे लगते थे और दुर्जन लोग उसे भले मालूम पडते थे। दुर्जनों की सलाह मानकर वह दरिद्र बन गया। स्वार्थी लोग तबतक पास फिरा करते हैं। जबतक उनका मतलब सिद्ध होता है। स्वार्थ सिद्ध होजाने पर अथवा भविष्य में स्वार्थसिद्धि की आशा न रहने पर वे निकट नही आते। जैसे पक्षी वृक्षपर तबतक रहतेहैं जबतक कि उसपर फल होते हैं। फलोंके नष्ट होजाने पर पक्षी अन्यत्र चले जाते हैं। स्वार्थी लोगों का भी यही हाल है। उस साहूकारके लडकेको उसकेस्वार्थी मित्रोंने छोड दिया। अब उसके पास खाने तक के लिए पैसे न रहे। लड़का सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए। अन्य काम तो रोके भी जा सकते हैं मगर इस पेट पापी को तो कुछ न कुछ दिए बिना काम न चलेगा। लडका सदा मौज मजे मे ही रहा था अतः कोई हुन्नर उद्योग भी न जानता था। वह भूखों मरने लगा। अन्त में भीख मागना प्रारभ कर दिया।

भिखारी की स्थिति कितनी दयनीय होती है यह बात किसी से छिपी नहीं है। कभी भिखारी को अच्छा टुकडा भी मिल जाता है मगर उसकी आत्मा कितनी पतित हो जाती है। लडके की स्थिति खराब हो गई। वह दर दर का भिखारी हो गया अपना आपा भूल कर हायरे हायरे करने लगा उसके पास कोई दुसरा बर्तन न था अतः ठीकरे मे ही मागने लगा।

दैवयोग से भीख मागते मागते एक दिन वह अपने पिता के जमाने के हितेषी मुनीम के घर जा निकला। और खाने के लिये रोटी मागने लगा। लडका मुनीम को न पहिचानता था मगर मुनीम ने लडके को पहिचान लिया। मुनीम ने मन में विचार किया कि यह मेरे महान् उपकारी सेठ का लडका है मगर आज इस की क्या दशा है। सेठ का मुझ पर मेरे पिता के समान उपकार है। मुनीम यह सोच रहा था मगर यह लडका 'भूख लगी है, कुछ भोजन हो तो देओ' कि रट लगा रहा था। मुनीम यदि चाहता तो दो रोटी देकर उसे रवाना कर देता मगर उसके मन में कुछ दूसरी भावना थी। किसी भिखारी को दो पैसे देकर उससे पिण्ड छुडाना दूसरी बात है और उसका सुधार करना या हमेशा के लिए उसका भिखारीपन मिटा देना अन्य बात है। हमारे देश मे उदारता तो बहुत है मगर सामने वाले को गुलाम बने रहने देकर देने की उदारता है। गुलामी से छुडाकर देने की उदारता बहुत कम है।

मुनीम ने लडके से कहा कि यहां मेरे पास आओ। लडका सोचने लगा कि मै इस लिबास में ऐसे भव्य भवन में कैसे जाऊँ। वहीं खड़ा खडा कहने लगा कि जो कुछ देना हो वह यहीं पर दें दो। मुनीम के बहुत आग्रह से वह उसके पास चला गया। मुनीम ने पूछा कि क्या तुम मुझे पहिचानते हो ? लडके ने कहा, आप जैसे उदार और बड़े आदमी को कौन नहीं जानता। मुनीम ने कहा, इन बढ़ावा देने वाली बातों को जाने दो। मैं तेरा नोकर हूँ। तेरी स्थिति बिगड़ जाने से तू मुझे भूल गया है। मैं तुझे नही भूला हूँ। लडके ने कहा माफ करिये सेठ साहिब, मेरी क्या बिसात जो आपको नौकर रख सकू। मैं तो दर-दर का भिखारी हूँ। मुनीम ने याद दिलाया कि मैं तुम्हारे यहा नौकर था। जब तुम छोटे थे तब बुरी सगति में फँस गये थे। मैं तुम्हें खूब समझाता था कि इन धूर्तों की सगति में मत जाया करो। मेरी बात न मानने से आज तुम्हारी यह दशा है तुमने मेरी बात न मानी थी अत अब में तुम्हारी अवहेलना नहीं कर सकता।

ज्ञानी लोग अभिमान नहीं करते। वे कभी यों नहीं कहते कि ' देखो मेरी बात न मानी थी अतः अब उसका भोग रहे हो। अब मैं कुछ मदद न करूँगा '। ज्यादातर लोग किसीको उपालम्भ देने में ही अपना पाण्डित्य मानतेहैं। उपालम्भो हि पाण्डित्यम्। मैंने ऐसा कहा था, वैसा कहा था, मेरा कहना न माननेसे ऐसा हुआ आदि बातें समझदार लोग नही कहते। आज कल के बहुतसे सुधारक कहे जाने वाले लोग भी ऐसे ऐसे बुरे लफ्जों का प्रयोग करते हैं कि कुछ कहा नहीं जाता।

लड़के ने मुनीम को पहचान लिया। झट पैरों में पड़ गया और अपने किये का पछतावा करने लगा यदि आपको नौकरी से अलग न करता तो मेरी यह दुर्दशा न होती। मुनीम ने आश्वासन देते हुए कहा घबडाओ मत, मैं अब भी तुम्हारा सेवक हू। यद्यपि तुम्हारे पिता के वक्त की सब दिखने वाली सम्पत्ति विनष्ट हो चुकी है तथापि मुझे कुछ गुप्त निधान का पता है। अब यदि मेरा कहना मानना मजूर हो और बुरी सोबत में न फंसो तो मैं भेद बताने के लिए तय्यार हू जिससे कि तुम पाहिले के समान धनवान् बनजाओ। लड़के ने सब बात स्वीकार करली। उसको स्नानादि कराकर अपने साथ भोजन करने के लिए बिठा लिया। उस मुनीम ने यह सोचकर कि यह भिखमगा रह चुका है अत' इस के साथ न बैठना चाहिए घृणा नहीं की। उसने यह सोचा कि अज्ञान वश होकर इससे जो भूलें हुई हैं वे अब यह छोड रहा है। भविष्य में सुधार करने का नेम लेता है। अत' घृणा करना ठीक नहीं है किन्तु इसका सुधार करना चाहिये। घृणा करने की अपेक्षा यदि सुधार करने की बात अपना ली जाय तो मनुष्य जाति का उद्धार हो जाय।

लोग पुण्य और पाप का अर्थ करते हुए कहते हैं कि जो पुण्य लाया है वह पुण्य भोगता है और जो पाप लाया है वह पाप। लेकिन यदि सब लोग ऐसा कहने लगजायं तो क्या दशा हो? इसका ख्याल करिये। डाक्टर बीमार से कहदे कि तू अपने पापों का फल भोग रहा है मै कुछ इलाज न करूँगा तो क्या आप यह बात पसद करेंगे? पापी को पाप का उदय हुआ है मगर आपको किसका उदय है?

दया धर्म पावे तो कोई पुण्यवान् पावे, ज्यारे दया की बात सुहावे जी।
भारी करमा अनन्त संसारी, जारे दया दाय नहीं आवे जी॥

लोग यह मानते हैं कि जिनके पास गाड़ी, घोड़ी, काड़ी तथा बाड़ी आदि साधन हों, जिसे अच्छा खान पान, कपड़ा, गहना, मिलता हो, तथा जिसके यहा नौकर चाकर हों, वह पुण्यवान् है। इसके विपरीत जिसके पास खाना पीना और कपड़े आदि न हो वह पापी है। पापी और पुण्यवान् की ऐसी व्याख्या अज्ञानी लोग करते हैं। ज्ञानीजन ऐसी व्याख्या नहीं करते। वे किसीके पास कपड़े गहने आदि होने से उसे पुण्यवान् नहीं मानते और न इनका अभाव होने से किसी को पापी ही मानते है। ज्ञानी उसको पुण्यवान् मानते हैं जिसके हृदय में दया है। और जिसमें दया नहीं है वह पापी है। आप लोग कहोगे कि यह नई व्याख्या आपने कैसे निकाली है। मै कहता हूँ कि आप लोग भी पुण्यवान् और पापी की व्याख्या ऐसी ही मानते हैं जैसी अभी मैं कर रहा हूँ। बात समझ में आने की देरी है।

मान लो कि आपका एक लडका है जो अकेला ही है। यानी आपका इकलौता पुत्र है। वह सडक पर खेल रहा था। एक सेठ उधर से मोटर में सवार होकर निकला। धनवानों में अक्सर दुर्व्यसनों का भी प्रचार होता है। जो जैसा होता है उसके नौकर भी वैसे ही होते हैं। सेठ और ड्रायवर दोनों नशे में मस्त थे। ड्रायवर बेभान होकर मोटर फेंक रहा था। आपका लडका मोटर की झपट में आगया। उसे सख्त चोट आई। हल्ला हुआ और बहुत से लोग इकट्ठे हो गये। तब ड्रायवर और सेठ की आंखें खुलीं। सेठ ने सोचा कि लडका घायल हो चुका है अतः यदि मेरे सिर पर भार लगा तो सजा हुए बिना न रहेगी। सेठ कहने लगा कैसे कैसे नालायक लोग हैं जो अपने बच्चों को भी नहीं सभालते। सड़क पर आवारा छोड देते हैं। हमारे मोटर चलने के मार्ग में आडे आजाते हैं यह भी मालूम कि यह रास्ता हम लोगों की मोटर निकलने का है। यह लडका किसका है? हम उस पर मुकदमा

चलायेंगे। इस प्रकार वह चिल्लाया और जोर की आवाज से नौकर से कहा कि अमुक वकील के पास चलकर कहो कि मुकद्दमा चलाना है अत: कानून देखकर दफा निकाल ले। सेठ मोटर में बैठा हुआ चला गया। लड़का वहीं बेहोश अवस्था में पडा रहा। इकट्ठी भीड में एक गरीब आदमी भी था। वह बहुत गरीब था। वह तुरन्त उस बच्चे को उठाकर अस्पताल में ले गया और डाक्टर से कहा कि न मालूम यह लडका किसका है, इसे मोटर एक्सीडेन्ट से चोट आई है। यह बडा दु:खी है। आप इस केश को जल्दी ही सुधारने की महरबानी करियेगा।

लडके के घायल हो जाने की बात आपने भी सुनी। साथ में यह भी सुन लिया कि मोटर मालिक श्रीमान् अनेक उपाधि-धारी मुकद्दमा चलाने की धमकी देकर भाग निकले और एक गरीब आदमी बच्चे को उठाकर हॉस्पिटल ले गया है। आप अस्पताल पहुचे। बच्चे को यहा तक पहुंचाने वाले गरीब को भी देख लिया। आप जरा हृदय पर हाथ रख कर कहिये कि आप किसे पुण्यवान् और पापी समझते हैं। बेहोश नादान बच्चे को छोड कर चले जाने वाले को या उसकी दया करके अस्पताल पहुचाने वाले को पुण्यवान् कहेंगे। सेठ के बच्चे की दया करने वाले को पुण्यवान् कहेंगे और मोटर सेठ को पापी कहेंगे। यद्यपि चालू व्याख्या के अनुसार वह सेठ बडा धनवान् और साधन सपन्न था और वह गरीब जो कि बच्चे को अस्पताल ले गया कतई गरीब और साधन हीन था हमारा दिल यही कहता है कि वह धनवान् सेठ पापी था और वह गरीब आदमी पुण्यवान् था। आत्मा जिस बात की साक्षी दे वह बात ठीक होती है। सेठ और गरीब में क्या अन्तर है जिसमे एक को पापी और दूसरे को पुण्यात्मा कहेंगे। अन्तर है हार्दिक दया भाव का। एक अपने धन के मद में तडफते बच्चे को छोड कर चला गया और दूसरा "आत्मवत् सर्व भूतेषु" के अनुसार बच्चे की वेदना सहन न कर सका और सेवा करने लगा। एक में दया का अभाव था और दूसरे का हृदय दया लबालब भरा था।

यदि वह सेठ धनवान् होते हुए भी मोटर-अकस्मात् के बाद तुरत नीचे उतर कर बच्चे को सभालता और अस्पताल पहुचाता तथा अपनी भूल की माफी माग लेता तो वह भी पुण्यवान् कहलाता। पुण्य और पाप की व्याख्या केवल बाह्य ऋद्धि के होने न होने पर निर्भर नहीं है किन्तु इसके साथ साथ दया भाव भी अपेक्षित है।

सब कुछ कहने का मतलब यह है कि ऊपरी आडम्बर होने से ही किसी को

पुण्यवान् नहीं माना जा सकता। यदि हृदय में दया हो और ऊपरी आडम्बर न हो, तो भी वह पुण्यवान माना जायगा और महापुरुष उसकी सराहना करेंगे।

वह मुनीम कह सकता था कि ऐ लड़के! तू अपने किये का फल भोग। तू अपने पापों का फल भोग रहा है, इसमें मैं क्यों दखल दू। किन्तु बुद्धिमान और ज्ञानी लोग ऐसी निर्दयता की बात नहीं कहते। वे सोचते हैं कि यदि किसी ने एक वक्त कहना न माना और कुमार्ग में लग गया तो भी भविष्य में उसका सुधार हो सकता है। कौन कह सकता है कि कब किसकी दशा सुधर सकती है। और कब नहीं। हमारा कार्य तो सदा आशावाद पूर्ण प्रयत्न करने का है। किसी के पूर्व के पाप या अवगुणादि पर ध्यान न देकर वर्तमान में यदि वह सुधरना चाहताहै तो सुधारने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिए।

कोटि महा अघ पातक लागा, शरण गये प्रभु ताहु न त्यागा।

ज्ञानीजन शरण में आये हुए के पापों पर ख्याल नहीं करते क्यों कि वे जानते हैं कि जब वह शरण में आगया है तो पाप भावना को भी छोड चुका होगा। वे तो उसकी स्थिति सुधारने का प्रयत्न करते हैं, ज्ञानीजन कीडे मकोड़े आदि पर भी दया करते हैं तब मनुष्य पर क्यों न करेंगे।

चातुर्मास की चौदस को दया के सम्बन्ध में मुझे व्याख्यान में कुछ कहना था किन्तु अन्य अन्य बातों में यह बात कहना रह गई थी। संक्षेप में आज कहता हूँ। आप लोग विचार करते होंगे कि हमने चौमासे की विनती की है इस लिए महाराज ने चातुर्मास किया है। किन्तु यदि चातुर्मास में एक स्थान पर ठहरने का हमारा नियम न होता तो क्या आपकी विनती होने पर भी हम यहां ठहर सकते थे? हमारा नियम है अतः ठहरे हैं नहीं तो लाख विनती होने पर भी नहीं रह सकते। चौमासे में वर्षा के कारण बहुत जीव उत्पन्न हो जाते हैं। उनकी रक्षा करने के लिए चार मास हम लोग एक स्थान पर ठहरते-रहते हैं। अब हमारा आपसे यह कहना है कि जिन जीवों की रक्षा करने के निमित्त हम यहां ठहरे हैं, उनकी आप भी दया करो। चौमासे में जीवोत्पत्ति बहुत हो जाती है अत उनकी रक्षा सावधानी पूर्वक करिये जिससे आपके स्वास्थ्य और धर्म दोनों की रक्षा हो सके।

एक आदमी सड़ा आटा, सड़ी दाल आदि चीजें खाता है जिनमें कीड़े पड चुके हैं। दूसरा आदमी ऐसी चीजें नहीं खाता किन्तु साफ स्वच्छ जीव रहित वस्तुए उपयोग में लेता है। इन दोनों में से आप किसको दयावान् कहोगे ? एक आदमी घर की चक्की से पिसा हुआ आटा खाता है और दूसरा आदमी कल की चक्की से पिसा हुआ आटा खाता है। दोनों में से किसको आप दयावान् कहोगे। इन दोनों तरह के आटों में किसी प्रकार का अन्तर है या नहीं ? थोडी देर के लिये यह मान लिया जाय कि आप अनाज देखकर साफ करके लेगये किन्तु आपको नाज डालने से पूर्व जो नाज पिसा जा रहा था उसमें कीडे थे तब आप कैसे बच सकते हैं। उस कीडे वाले आटे का अश आपके आटे में भी आयेगा या नहीं ? अवश्य आयेगा। कीडों के कलेवर से मिले हुए आटे का किञ्चित् भाग आपके पेट में जरूर पहुँचेगा। मैंने उरण में सुना कि जिन टोकरों में मच्छी बेंची गई थी उन्हीं टोकरों में गेहूँ भरकर चक्की पर पिसवाये गये। ऐसे आटे का अश आपके पेट में पहुँचेगा ही। दुःख इस बात का है कि आजकल घर पर पीसना कठिन हो रहा है। यह ख्याल किया जाता है कि हम तो बम्बई की सेठानिया हैं हम चक्कीसे आटा कैसे पीसे। कल की चक्की में सीधा पीसा मगवायें।

आटा दाल आदि प्रत्येक वस्तु के विषय में विवेक रखिये। यह मैं जरूर कहूगा कि मेवाड मालवा और मारवाड की अपेक्षा यहा ज्यादा विवेक है। फिर भी विशेष सावधानी रखने की जरूरत है।

जो दया पात्र है उसकी स्थिति सुधारने वाला पुण्यवान् है। दयापात्र को पापी कह कर दुत्कारने वाला स्वय पापी है। वह पुण्यवान् नहीं हो सकता चाहे उसके पास कितनी ही ऋद्धि क्यो न हो।

मुनीमने उस लडको आश्वासन देकर अपनेयहा रखा और धीरे धीरे उसकी आदतें सुधारी। बिका हुआ मकान वापस खरीद किया गया। उस घर में गुप्त रूप से रखे हुए रत्न निकाल कर उसे दे दिए गये। लडके ने मुनीम से कहा कि ये रत्न आपही के हैं कारण मैं तो मकान बेच ही चुका था। मुनीम ने कहा ऐसा नहीं हो सकता। जो वस्तु जिसकी हो वह उसी की रहेगी। लडके ने मुनीम के रत्न हैं, कह कर कितना विवेक दिखाया। और अपनी कृतज्ञता प्रकट की। मुनीम ने अपने सेठ के पुत्र की स्थिति सुधार दी। वह पुण्यवान् था। अब यदि सेठ के लडके से भीख मांगने के लिए कहा जाय तो क्या वह मागेगा ? कदापि नहीं।

यह दृष्टान्त है। सेठ मुनीम और लडकेके समान ईश्वर महात्मा और ससारीजीव हैं, बहुतसे साधारणलोग कहते है कि हम साधुओंके यहां क्यों जांय और क्यों वहा मुख बांधकर बैठें। मैं पूछता हूँ मुख बांधनेमें उनको शरम क्यों लगती है। वेश्या के यहां जाने में तथा अन्य बुरे काम करने में तो शरम नही लगती। केवल मुह बांधने में ही शरम क्यों लगती है। कहतेहैं यह तो बूढोंका काम है। इसप्रकार इस आत्मा रूप सेठके लडकेने विषय वासना और ससार के सग से काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरादि दुर्गुणों से प्रेमकर रखा है। ऐसे समय में अन्तरात्मा को जानने वाले महात्मा का क्या कर्त्तव्य है ? उनका कर्त्तव्य समझाने का है। वे वार बार समझाते हैं लेकिन वह नही मानता। अत में आत्मा की स्थिति उस लड़के के समान हो जाती है, जो भीखारी की तरह भीख मांगता है। फिर भी महात्मा लोग उससे द्वेष नहीं करते। वे यह नहीं सोचते कि इस ने हमारी सिखामन का अथवा उपदेश का पालन नहीं किया है अतः फल भोग रहा है। महात्मा उसे अपने पास बुलाते हैं किन्तु जैसे उस भिखारी को मुनीम के पास जाने में सकोच हुआ था उसी प्रकार दुर्व्यवसनों में फसे हुए लोगों को साधु-सतों के समीप जाने में सकोच होता है। लज्जा आती है। अपने व्यसनों के कारण लज्जित होकर वे दूर भागते हैं। किन्तु महात्मा लोग यह सोचकर कि यद्यपि इसकी आदतें खराब हो गई हैं फिर भी इसका आत्मा हमारे समान ही है। सुधार की गुइजाश मानकर पास बुलाते हैं।

जो लोग यह कहते हैं कि हम साधुओं के पास क्यों जाय और क्यों मुख बाधकर उनके पास बैठें, उनको भी साधु लोग यही उपदेश देते हैं कि भाई सत्सग करो। महात्मा लोग उनके कथन से घबड़ाते नहीं हैं। वे यह सोचकर उन्हें माफ कर देते है कि अज्ञान के कारण ये लोग भूले हुए हैं। इनकी आत्मा हमारी आत्मा के समान है। अतः वे जीवात्मा की बातों पर ध्यान न देकर बार २ सत्सग का उपदेश देते है।

स्त्रियॉ भी कहती है, जो बूढ़ी हैं वे जाकर साधुओं के पास बैठें। हम से ऐसा न होगा, हम नौजवान हैं। उनको खाना पीना मौजमजा करना अच्छा लगता है। साधुओं के पास ऐश आराम का सामान नहीं है अत उनके पास जाना अच्छा नहीं लगता। ज्ञानी कहते हैं, यह इनका दोष नहीं है। ये आत्मा की शक्ति को नहीं जानती अतः पुद्‌गलानदी बनी हुई हैं।

कई लोग आत्मा के अस्तित्व के विषय में भी सदेह करते हैं। आत्मा नहीं है ऐसी दलीलें देते हैं। इसका कारण यही है कि वे महात्माओं के पास नहीं जाते हैं। यदि

वे सत्पुरुषों के समागम में आने लगें तो उनका यह संदेह मिट जाय।

मदिरा न पीना और मास न खाना यह जैनों का कुल रिवाज है। इस वंश परम्पर-गत रिवाज का पालन तभी तक हो सकता है जब तक लोग हमारे पास आते रहें। हमारे पास न आयें किन्तु आजकल के सुधरे हुए कहे जाने वाले लोगों की सोबत में रहे तो इस रिवाज का पालन नहीं हो सकता। आधुनिक सुधरे कहे जाने वाले लोग तो कहते हैं कि जैन धर्म में मांस मदिरा निषेध निष्कारण ही है। यदि भोजन हजम न होता हो तो थोड़ी शराब पीली जाय तथा शक्ति वृद्धि के लिए मांस भक्षण किया जाय तो क्या हर्ज है। ऐसी शिक्षा पाने वाले लोग कब तक बचे रह सकते हैं। माता पिता का कर्त्तव्य है कि वे इस बात का ध्यान रखें कि हमारा लड़का बुरी सोबत में न पड़ जाय। अपने लड़कों को धार्मिक शिक्षा दिलाने का प्रयत्न किया जाय और सदा इस बात का खयाल रखें कि जैन कुल में जन्म लेकर कहीं बुरी स्थिति में न पड़ जाय। प्रयत्न करने और सावधानी रखने पर भी यदि कोई लड़का न सुधरे तो लाचारी होगी। प्रयत्न करने के पश्चात् भी न सुधरने वाले को तो श्रीकृष्ण भी न सुधार सके थे।

श्रीकृष्ण ने अपने परिवार के लोगों से कह दिया था कि तुम लोग यह मत खयाल करना कि हम कृष्ण के कुल में जन्मे हैं अतः बुरे काम करें तो कोई हर्ज नहीं है। यदि तुम बुरे काम करोगे तो उस के परिणाम से मैं तुम्हारा बचाव नहीं कर सकूंगा। तुम्हारी रक्षा और तुम्हारा उद्धार तुम्ही स्वयं कर सकते हो। दूसरा कोई नहीं कर सकता।

उद्धरेदात्मनात्मानं, नात्मानमव सादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

अर्थः—आत्मा से आत्मा का उद्धार स्वयं करो। आत्मा को अवसादित मत करो। आत्मा ही आत्मा का बन्धु है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है।

अतः अपना उद्धार स्वयं करो। दूसरों के भरोसे मत रहो। यदि अधिक न कर सको तो कम से कम तीन काम मत करो जिससे तुम्हारी रक्षा हो सकेगी। जुआ, मदिरा और परस्त्री का त्याग करलो।

लोग जुआ, खेल कर सीधा धन लेने जाते हैं। किन्तु पास वाला धन खो बैठते हैं और जुआ खेलने की आदत सिवाय सीख लेते हैं। जिससे भविष्य भी बिगड़ जाता है।

एक बार यह लत लग जाने पर इससे पिण्ड छुड़ाना साधारण आदमी का काम नहीं है। ताश के पत्तों पर रुपये पैसे की शर्त लगाकर खेलना, लाटरी भरना, सट्टा करना, आदि सब जुआ ही हैं। जिसमें हार जीत की बाजी है वह सब जुआ है। दुःख इस बात का है कि आज तो सरकार स्वय लाटरी खोलती है और लोग धन प्राप्त करने के लिए रुपये लगाते हैं। लाटरी भरने वाले भाई यह नहीं सोचते कि लाटरी खोलने वाले पहले ही कह देते हैं कि जितने रुपये टिकिटों के प्राप्त होंगे उन में से एक दो या अधिक लाख रुपये रख लिये जावेंगे, शेष रुपये इनाम दिए जायगे। यह स्पष्ट मालूम होता है कि लाटरी खोलने वाले बचत करने के लिए ही लाटरी खोलते हैं। अधिक रुपये इकट्ठा करके थोड़े रुपये देदेते हैं। वहुतों से लेकर थोडों को कुछ रुपये इनाम रुप से बाट दिए जाते हैं। किन्तु लाटरी भरने वाले की मशा यह रहती है कि अन्य लोग मरे तो मरे हमारा नम्बर पहला निकलना चाहिए।

श्रीकृष्ण ने अपने परिवार के लोगों से जुआ, शराब और व्यभिचार छोड़ने के लिए कहा था, किन्तु उनके उपदेश की बातों को पैरों तले कुचल कर मनचाहा बरताव करने लगे थे। परिणाम यह हुआ कि एक दिन की घटना से सारा मूसल पर्व बन गया।

लोग कहते हैं कि जैनियों में फूट है। फूट क्यों न हो जब एक आदमी दारु पीता हो और दूसरा न पीता हो। क्या दोनों में मेल रह सकता है। सप तभी तक निभ सकता है जब सब का समान आचार व्यवहार हो।

अन्त में यादवकुल के लडकों में फूट पडी और वे मूसल लेकर आपस में लडने मरने लगे। यह देखकर श्रीकृष्ण हँसने लगे। किसी ने श्रीकृष्ण से कहा कि आपका परिवार विनाश की ओर जा रहा है और आप हँस रहे हैं। कृष्ण ने उत्तर दिया कि इनके सिर फूटने ही चाहिए। इनके सिर दारु, जुआ और व्यभिचार सेवन करने से पहिले ही फूट रहे हैं। फूटे का क्या फूटना। मैंने पहले ही जान लिया है कि इनका सर्वनाश निकट है।

यादव लोग नष्ट होगये यह सर्व विदित है। दुर्व्यसन सेवन करने से कोई सुखी नहीं हुआ है। वडे वडे विगड चुके हैं। किसी को दो दिन चाहे सुखी समझ लो किन्तु वह सुख नहीं है। कहा है—

चढ़ ऊपर बांसे गिरे शिखर नहीं वह कूप।
जिम सुख अन्दर दुःख बसे वह सुख है दुःखरूप॥

जो ऊपर चढ़कर वापस गिर जाता है वह चढ़ा हुआ नहीं गिना जायगा किन्तु गिरा हुआ ही गिना जायगा। इसी प्रकार जिस सुख के पीछे दुःख लगा हुआ है वह सुख नहीं है किन्तु दुःख ही है।

चाहे कोई कैसे ही दुर्व्यसनों में फँसा हो किन्तु अन्तरात्मा को जानने वाले महात्मा लोग किसी से द्वेष नहीं करते। श्री कृष्ण के समान उससे यही कहते हैं कि दुर्व्यसन त्यागोगे तो दुःख कभी न होगा। ज्ञानी लोग किसी से घृणा नहीं करते। घोर से घोर पापी को भी अपना लेते हैं। वे उसके आत्मा की शक्ति को जानते हैं और समझाते हैं कि—

अपिचेत्सुदुराचारो यो भजते मां अनन्यभाक्।

कैसा भी दुराचारी व्यक्ति हो वह अनन्य भाव से परमात्मा की सेवा करे तो उसका कल्याण निश्चित है। अन्तरात्मा की शक्ति को जानने वाले बहिरात्मा पर क्रोध या द्वेष नहीं करते। वे तो सदा यही कहेंगे कि आत्मस्वरूप को जानकर परमात्मा का भजन करो तो भलाई है।

साराश यह है कि '**देवो भूत्वा देवं यजेत्**' परमात्मा बनकर परमात्मा का भजन करो। यह समझो कि मेरा और परमात्मा का आत्मा समान है। परमात्मा निर्मल है, मैं अभी मलीन हू। इस मलिनता को मिटाने के लिए ही परमात्मा का भजन करता हू। महात्माओं की शरण पकड़ कर भजन करने से किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होगी।

चरित्र चित्रण—

अब मैं इस प्रकार भजन करने वाले की बात कहता हू।

तिनपुर सेठ श्रावक दृढ़ धर्मी, यथा नाम जिनदास।
अर्हद्दासी नारी खासी, रूप शील गुणवान रे॥ धन०॥५॥

चम्पानगरी का वर्णन किया गया है। नगर की रमणीयता उसकी आवश्यकताए, राजा रानी और प्रजा आदि के कर्त्तव्य की चर्चा बहुत की जा सकती है किन्तु अभी इतना ही कहता हू कि चम्पा में बाह्य सुधार ही न थे किन्तु अन्तरग सुधार भी थे।

आज बाह्य सुधार तो है लेकिन भीतर बहुत विगाड है। उस जमाने में मोटर,

बिजली, ट्राम आदि न थे फिर भी उस समय की स्थिति बहुत सुधरी हुई थी। आप कहेंगे रेलतार बिजली आदि के बिना कैसे सुधार और कैसा सुख। परन्तु इन के कारण आज जो स्थिति हो रही है उस पर दृष्टिपात किया जाय तो मालूम होगा कि पहिले की अपेक्षा अभी भयकर दुःख है। ये बाहर के भपके मूल को खराब कर रहे हैं। एक जहाज में बाग बगीचे नाचरग, खेल कूद, आदि के सब साधन हैं किन्तु समुद्र के ऐन बीच में उसके छेद होगया अथवा एजिन खराब होगया, उस समय उस जहाज में बैठने वालों की क्या हालत होगी। नाचरग आदि उन्हें कैसे लगेंगे। मौज मजा भूलकर वे लोग हाय तोबा करने लगेंगे। दूसरा जहाज ऐसा है जिसमें ऐश अशरत का साजो सामान तो नही है मगर न उसमें छेद ही हुआ है और न उसका एजिन ही बिगडा है। दोनों जहाजों में से आप किसे पसन्द करेंगे? दूसरे को पसद करेंगे।

आज के सुधारों के विषय में भी यही बात है। आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता को लोग आनन्द का कारण मानते हैं। किन्तु इसका एजिन कितना बिगडा हुआ है यह नही देखते। हमारे देश के लोगों का दिमाग वहा की सभ्यता के कारण बिगड रहा है। वे उस सभ्यता को आनन्ददायिनी मानते हैं। किन्तु मानव जीवन को इस सभ्यता ने कितना खोखला कर दिया है इस बात को नहीं देखते। जिस देश की सभ्यता को आदर्शमान कर पसन्द किया जाता है वहा व्यभिचार को पाप नही माना जाता। पेरिस बड़ा सुन्दर शहर है। सुना है वहा किसी स्त्री के पास कोई परपुरुष आ जाय तो उसके पति को बाहर चला जाना पडता है। यह वहा का रिवाज है, सभ्यता है। अमरिका देश जो सब से समृद्ध और सुधरा हुआ गिना जाता है वहा के लिए भी सुनने में आया है कि सौ में से निच्चानवे लग्न सबध वापस टूट जाते हैं। यह है वहा की सभ्यता मै यह नही कहता कि बाह्य ठाट बाट न हो किन्तु आन्तरिक सुधार होना आवश्यक है।

चम्पा जैसी बाहर से सुन्दर थी वैसी भीतर से भी सुसंस्कृत थी। जिस प्रकार खान में से एक हीरा निकलने पर भी वह हीरे की खान कही जाती है जब कि मिट्टी पत्थर उसमें बहुत होते हैं। इसी प्रकार किसी नगर में एक भी महापुरुष होतो वह उस सारे नगर को प्रसिद्ध कर देता है। अवतार ज्यादा नहीं होते। मगर एक अवतार ही सारे ससार को प्रकाशित कर देता है।

चम्पा आर्य क्षेत्र में गिनी गई है। वहा जिनदास नामक सेठ रहता था। चम्पा में भगवान महावीर कई बार पधारे थे। कोणिक भी चम्पा में ही हुआ है। यह नहीं कहा

जा सकता कि चम्पा एक थी या दो। हम इतिहास नहीं सुना रहे हैं किन्तु धर्म कथा सुना रहे हैं। धर्म से अनेक इतिहास निकलते हैं। अतः धर्म कथा से इतिहास को मत तौलो। यह धर्म कथा है। इस में बताये हुए तत्त्व की तरफ ख्याल करो। भगवान् महावीर के समय में ही चम्पा के कोणिक और दधिवाहन दो राजा शास्त्रों में वर्णित हैं अतः कोणिक और दधिवाहन दोनों की चपा एक ही थी अथवा अलग अलग कहा नहीं जा सकता।

जिनदास चम्पा नगरी में रहता था। वह आनन्द श्रावक के समान श्रावक था। उसकी स्त्री का नाम अर्हद्दासी था जो श्राविका थी। ये दोनों नाम वास्तविक है या काल्पनिक सो नहीं कहा जा सकता। लेकिन दोनों ही नाम सार्थक और आनन्द दायक हैं। पहले के लोग '**यथा नाम तथा गुण**' होते थे। यही कारण है कि उन के यहा सुदर्शन जैसा लड़का उत्पन्न हुआ था। जैसों का फल तैसा होता है यह प्रसिद्ध बात है। आप भी यदि सुदर्शन जैसा पुत्र चाहते हो तो जिनदास और अर्हद्दासी जैसे बनो। ऐसा करोगे तो कल्याण है।

राजकोट
८—७—३६ का
व्याख्यान



अरिष्टनेमि की दया



"श्री जिन मोहन गारो छे जीवन प्राण हमारो छे।"



यह भगवान् बाईसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमी की प्रार्थना है। परमात्मा की प्रार्थना एक प्रकार से परमात्मा की भक्ति है। ज्ञानियों ने अनेक अग बताये हैं। उन में प्रार्थना भी भक्ति का एक मुख्य अग है। दार्शनिकों ने अपने तत्त्व का पोषण करने के लिए अनेक रीति से प्रार्थना की है। जैन एकान्तवादी नहीं हैं। जैन दर्शन प्रत्येक वस्तु का अनेक दृष्टि से विचार करता है। वह वस्तु को एक दृष्टिसे देखता है और अनेक दृष्टि से भी। अतः जैन की प्रार्थना कुछ और ही है।

भक्ति के साकार और निराकार के भेद से दो भेद हैं। प्रार्थना को साकार भेद से देखना या निराकार भेद से यह एक प्रश्न है। ज्ञानी कहते हैं दोनों का समन्वय किया जाय। दोनों भेदों को मिलाकर प्रार्थना की जाय। प्रार्थना पर अनेक बार बोल चुका हू आज भी कुछ कहूगा।

ज्ञानी जब कहते हैं कि साकार प्रार्थना के लिए तीर्थंकर और निराकार प्रार्थना के लिए सिद्ध आदर्श रूप है। इन दोनों को मिलाकर प्रार्थना करना चाहिए। प्रार्थना करते समय यह भावना रखनी चाहिए कि मैं सब प्रकार से परमात्मा की शरण जाता हू। यदि यह भावना न रखी गई, परमात्मा को सर्वस्व समर्पित न किया गया, अपने बल और बुद्धि को अपने में ही रख कर प्रार्थना की गई, उसकी शरण में पूरी तौर से न गये, तो वह प्रार्थना न होगी प्रार्थना का ढोंग होगा। सच्ची प्रार्थना तब है जब परमात्मा को सर्वस्व अर्पण कर दिया जावे। परमात्मा को अपना सर्वस्व कैसे समर्पित करना चाहिए तथा किस प्रकार सच्ची भक्ति करनी चाहिए यह समझने के लिए हमारे सामने भगवान् नेमीनाथ और राजेमती का चरित्र मौजूद है। साकार निराकार प्रार्थना का स्वरूप भी इस चरित्र से ध्यान में आ जायगा।

राजेमती ने भगवान् नेमीनाथ को सिर्फ दृष्टि से देखा ही था और वह भी उनको पति रूप से स्वीकार करने के लिए। उस समय भगवान दूल्हा बने हुए हाथी पर विराजमान थे। भगवान् राजकुमार थे। उनके साथ श्रीकृष्ण, दश दशार्ह और सारी बरात थी। उन पर चँवर छत्र हो रहे थे। राजेमती के समान अभिलाषा वाली स्त्री को अपने पति को ऐसे लिबास में देखकर कैसे २ विचार हो सकते हैं। वैसे ही विचार राजेमती के भी हुए थे। वह यह समझ रही थी कि भगवान् मेरे साथ शादी करने के लिए आ रहे हैं। लोग भी ऐसा ही समझते थे कि भगवान् विवाह करने के लिए जा रहे हैं। व्यवहार में सब कोई यह खयाल कर रहे थे किन्तु निश्चय में भगवान् कुछ अन्य ही विवाह करने जा रहे थे। उन्हें जीवों की रक्षा करने तथा यादवों में करुणा बुद्धि उत्पन्न करनी थी। वे केवल मुखसे कहने वाले ही न थे किन्तु करके दिखाने वाले थे। उनके सब काम किसी तत्त्वपूर्ण मुद्दे को लिए हुए थे। जीवरक्षा के कार्य को सिद्ध करने के लिए ही वे बारात सजा कर विवाह करने के बहाने से आये थे।

सुनि पुकार पशु की करुणा करि जानि जगत सुख फीको ।
नव भव नेह तज्यो जीवन में उग्र सेन नृप धी को ॥

जब भगवान् तोरणद्वार पर आ रहे थे तब उन्हें उस समय भारत वर्ष में फैली हुई महान् हिंसा के दर्शन हो रहे थे। उस समय यादवी हिंसा और यादवी अत्याचार बहुत बढ गये थे अपनी सीमा लांघ चुके थे। यादवों का अन्याय और अत्याचार सारे ससार में फैल रहा था। उनके द्वारा हिंसा के घोर काण्ड हुआ करते थे। न केवल विवाहादि प्रसगों पर किन्तु हर प्रसग पर पशुओं की घोर हिंसा की जाती थी। उस समय मांस मदिरा और विषय सेवन एक साधारण बात हो गये थे इस पाप के रोकने के लिए ही भगवान् नेमीनाथ ने विवाह का स्वांग रचा था और बारात सजाई थी।

प्रत्येक बात पर एकान्त दृष्टि से विचार नहीं करना चाहिए किन्तु अनेकान्त दृष्टि से सोचना चाहिए। भगवान् तीन ज्ञान के धारी थे वे जानते थे कि मेरे पूर्वज इक्कीस तीर्थंकर यह फरमा गये हैं कि नेमजी ब्रह्मचारी रहेंगे। यह जानते हुए भी भगवान् नेमीनाथ विवाह करने के लिए क्यों चले थे। इस विषय पर यदि बारीकी से विचार करोगे तो मालूम होगा कि भगवान् ने साकार भगवान् का कैसा रूप रचा था। नेमीनाथ ने साकार भगवान् का जैसा चरित्र रचा था वैसा चरित्र मेरी समझ से दूसरे किसी ने नहीं रचा है। उनकी सानी का उदाहरण मुझे नहीं दिखाई देता है। यदि कोई ऐसा दूसरा उदाहरण बताये तो मैं मानने के लिए तय्यार हू किन्तु ऐसा उदाहरण मिलना बहुत ही कठिन है। जैसा रचनात्मक काम भगवान् अरिष्टनेमी ने करके दिखाया वैसा किसी ने नहीं किया।

यादव कुल में जैसी हिंसा और पाप फैले हुए थे उनके विषय में भगवान् यह सोचा करते थे कि मैं जिस कुल में उत्पन्न हुआ हू, उस कुल के युवक इस प्रकार के घोर कार्य करे, यह मैं कैसे सहन कर सकता हू। भगवान् चुपचाप सारी परिस्थिति देख रहे थे और किसी अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे। तीन सौ वर्ष तक वे अवसर की प्रतीक्षा करते रहे अन्त में यह निश्चय किया कि इस पाप के लिए दूसरों को दोषी बताने की अपेक्षा इसे मिटाने का स्वयं ही प्रयत्न करना चाहिए।

आज कल के लोग दूसरों को दोष देना तो जानते हैं मगर खुद का कर्त्तव्य नहीं समझते। यदि लोग अपना अपना कर्त्तव्य देखने लगे और दूसरों पर दोषारोपण करना

छोड दें तो ससार को सुधरने में क्या देर लगे। जब मैं जगल गया था तब रास्ते में एक दीवार पर यह लिखा हुआ देखा कि '**आलस्य, मनुष्य के लिए जीवित कब्र है।**' यदि विचार किया जाय तो यह वाक्य कितना अच्छा और ठीक है। आलस्य ही मनुष्य को जीवित कबर में डालता है। आलस्य के कारण ही मनुष्य अपने कर्त्तव्य की ओर निगाह नही करता और दूसरों पर दोष थोपता है।

ईशानेन्द्र और शक्रेन्द्र भी बारात में शामिल हो गये। श्री कृष्ण को मन में फिक्र हो गई कि कहीं ये इद्र लोग विवाह में विघ्न न कर दें। बड़ी मुश्किल से बारात सजाई है और नेमजी को तय्यार किया है। श्री कृष्ण ने शक्रेन्द्र से कहा कि आप बारात में पधारे हैं सो तो अच्छी बात है मगर महापुरुषों का यह नेम होता है कि वे बिना आमत्रण के किसी जल्से में शरीक नहीं होते। आप बिना आमत्रण के यहां कैसे पधारे हैं। कृष्ण के पूछने के उद्देश्य को इन्द्र समझ गये। इन्द्र ने कहा हम किसी विशेष प्रयोजन से नहीं आये हैं। हमें यह विवाह कौतूक मालूम पड़ा है अतः देखने आये हैं। देखने के लिए आमन्त्रण की जरूरत नही होती। देखने का सब किसी को अधिकार है।

हेमचन्द भाई और मनसुख भाई दोनों यहां बिना आमन्त्रण के आये हैं। ये क्यों आये हैं और किसके मेहमान हैं। ये किसी के मेहमान नही है ये हमारे मेहमान हैं। लेकिन हमारे पास खानपान और पान सुपारी नहीं है जिनसे इनकी मेहमानदारी करें। खान पान और पान सुपारी इनके पास बहुत है इसके लिए ये बिना आमन्त्रण नही आ सकते। ये जैसी मेहमानी लेने आये हैं मैं यथा शक्ति देने-का प्रयत्न करूँगा। मेरे खयाल से सदुपदेश सुनने आये हैं।

इन्द्र सोच रहे हैं कि इक्कीस तीर्थकरों की कही हुई बात ये कैसे लोप रहे हैं-। देखें क्या होता है। श्री कृष्ण से कह दिया आप चिन्ता न करें हम किसी प्रकार का विघ्न न करेंगे। हम तो चुपचाप कौतुक मात्र देखेंगे। आपभी भगवान् के साकार चरित्र को देखिये।

बारात के साथ भगवान् तोरण द्वार पर आ रहे हैं। तोरण द्वार के मार्ग में वाडों और पिंजरों में बन्द किये हुए अनेक पशु पक्षी रोके हुए थे कुछ पशु पक्षी मनुष्यों के सहवास में रहने वाले थे और कुछ जगल के निर्दोष प्राणी थे। उन पशुओं के मन में बहुत खलबली मची हुई थी।

लोग सोचते होंगे कि घबडाने न घबड़ाने में पशुपक्षी क्या समझते होंगे। किन्तु मौत से सब जीव डरते हैं और उससे बचना चाहते हैं। कोठारी बलवतसिंह जी ने उदयपुर की एक घटना मुझे सुनाई थी। उन्हों ने कहा- उदयपुर के कसाइयों के यहाँ से एक भेड भाग निकला कसाई लोग उसे कत्ल करने लेजा रहे थे। वह किसी तरह अपनी जान

बचाकर भाग गया और पिछोला नामक तालाब में कुद गया। तैरता तैरता उस पार पहुँच गया तथा पहाड़ोंमें भाग गया। वह तीन दिन तक पहडोंमें रहा लेकिन किसीभी हिंसक पशु ने उसे हाथ न लगाया। तीन दिन बाद वह भेड दरबार को शिकार करते वक्त मिला। दरबार ने पकड कर उसे मेरे यहाँ पहुँचा दिया। प्रत्येक जीव अपनी रक्षा करने का प्रयत्न करता है। कत्लखाने जाने के वक्त का दृश्य सब जानते ही हैं।

भगवान् अवधिज्ञानी थे अतः यह जानते थे कि ये पशु पक्षी क्यों बाध कर रखे हुए हैं। फिर भी पशुओं की पुकार सुन कर सब लोग इस बात को सुन सकें इस आशय से सारथी से पूछते हैं—

कस्सट्ठाए इमे पाणा एए सव्व सुहेसिणो वाडेहिं पिंजरेहिं च सन्निरूद्धाए अत्थइ।

अर्थ—हे सारथी! ये सुख चाहने वाले प्राणी किसके लिए बाड़े और पिंजडों में बद है।

भगवान् भी बालक या अनजान के समान चरित्र कह रहे हैं। एक साधारण आदमी भी इस बात का अदाजा लगा सकता है कि ये प्राणी विवाह के समय बारातियों और महमानों के लिए मारे जाने के लिए ही बन्द किये हुए है। भगवान् ने साधारण व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले अनुमान से काम न लेकर सारथी से पूछा कि ये जीव क्यों बद किये गये है। जैसे हम लोग सुखैषी हैं वैसे ही ये प्राणी भी सुखैषी हैं। इन वेचारों को इन की मरजी के खिलाफ बद करके क्यों दुःखी बनाया जा रहा है।

भगवान् के इस कथन में बहुत रहस्य है। लोग समझते हैं कि हमारे सुख के लिये ये पशु पक्षी इकट्ठे किये गये हैं मगर भगवान् के कथन का रहस्य है कि तुम लोग सुखी नहीं हो। यदि तुम सुखी होते तो ये पशु-पक्षी दुःखी नहीं हो सकते। अमृत के वृक्ष में अमृतमय ही फल लगता है। वह जहरीला फल नहीं दे सकता। क्षीर सागर के पानी से किसी को विप नहीं चढ सकता। जो दवा लाभदायक है वह किसी को मार नहीं सकती। अर्थात् जो जैसा होता है उसका फल भी वैसा ही शुभ या अशुभ होता है। यदि तुम खुद दुःखी हो तो तुम से दूसरा कोई सुखी नहीं हो सकता। और यदि तुम सुखी हो तो दूसरा तुम से दुःखी नही हो सकता। जो सुखी है उसमें से सब के लिए सदा सुख ही निकलेगा। दुःख कदापि नहीं निकलता। जब तुम्हारे आश्रित प्राणी दुःखी हैं भगवान ने यह कहा था

कि ये जीव सुख के अभिलाषी है फिर इनको दुःखी का दुःख भी दूर हो जाता है आज आप लोगों में दुःख है इसी कारण अन्य लोग भी दुःखी हैं। आप लोग अपने में के दुःख दूर करने के लिये भगवान से प्रार्थना करिये।

भगवान का प्रश्न सुन कर सारथी कहने लगा कि आप यह क्या पूछ रहे है। क्या आपको यह मालुम नहीं है कि ये पशु यहां क्यों लाये गये है।

तुज्झं विवाह कज्जंमि भोयावेऊं बहुं जणं।
सोऊण तस्स वयणं बहुपाणि विणासणं॥

हे भगवान्! आपके विवाह में बहुत लोगों को खिलाने के लिए ये प्राणी बन्द करके रखे गये हैं। इन प्राणियों को मारकर इन के मास से बहुत लोगों को भोजन दिया जायगा।

यह उत्तर सुन कर भगवान् विचार सागर में डूब गये कि अहो! मेरे विवाह के निमित्त ये बेचारे मुक प्राणी इकट्ठे किए गये है। ये कुछ देर बाद मार डाले जायेंगे। जब इन्हें मारा जायगा तब इनका शब्द कैसा करुण होगा। ये कैसे दुःखी होंगे। भगवान् ने बहुत प्राणियों का विनाश वाला उसका वचन सुनकर सारथी से कहा—

जइ मज्झ कारणं एए हम्मन्ति सुबहू जीवा।
न मे एयं तु निस्सेसं परलोए भविस्सइ॥

दूसरों को उपदेश देने की क्या पद्धति है यह भगवान् नेमीनाथ के चरित्र से समझिये। भगवान् तीन ज्ञान के स्वामी थे फिर भी ससार के लोगों को उपदेश देने के लिए उन जीवों की हिंसा का कारण अपने आपको माना है। भगवान् यह कह सकते थे कि मैं मास नहीं खाता हू अतः इन जीवों की हिंसा का दोष मुझपर नही लग सकता है। ऐसा न कहकर सरथी के कहने पर उन जीवों की हिंसा का कारण अपने आपको स्वीकार कर लिया। आज हर वात में वनियापन दिखाया जाता है। अपने आपको निर्दोष साबित करने के लिए दूसरों पर दोपारोपण कर दिया जाता है। यह बडी भारी कमजोरी है।

क्या भगवान् अरिष्टनेमी के भक्तों का यह लक्षण हो सकता है कि वे अपना दोष दूसरों पर डाल दें। जिनकी हम मोहनगारों कह कर स्तुति कर रहे हैं वे पशु पक्षियों

की हिंसा अपने सिर लेकर कह रहे है कि यह हिंसा परलोक में निश्रेयस् साधक नही हो सकती। अफसोस है कि आज के बहुत से लोगों को तो पाप क्या है इसका भी पता नही है। जो पाप ही को नही जानता उसे पाप का भय कब हो सकता है। लोक लाज के भय से पाप न करना और दया धर्म से प्रेरित होकर पाप न करने में बडा अन्तर है। यदि धर्म बुद्धि से अनुप्राणित होकर पाप न किया जाय तो ससार सुखी हो जाय।

पाप का स्वरूप समझने की आपकी उत्सुकता बढ़ रही होगी। मान लीजिये आप किसी बैल गाड़ी में बैठे है चलते चलते गाडी रुक जाय तो आप खयाल करेंगे कि गाड़ी में कुछ वस्तु अटक गई है जिससे गाडी रुकी है इसी प्रकार हमारी व दूसरे की जीवन नौका चलते चलते जहा रुक जाय वहा समझ लेना चाहिए कि पाप है। आत्मोन्नति की गाडी जब भी रुक जाय तब समझ जाना चाहिए कि यह पाप है।

क्या वे पशु–पक्षी भगवान् का विवाह रोक रहे थे जिससे कि भगवान् को इतना गहरा विचार करना पडा? नहीं। वे जीव विवाह में बाधक न थे किन्तु भगवान् नेमिनाथ के हृदय में भगवती दया माता निवास कर रही थी, जो उनको मूक पशुओंकी करुण पुकार सुनने में असमर्थ बना रही थी। आप लोगों को अपनी गाडी की रुकावट तो समझ में आ सकती है मगर यह बात समझ में नहीं आती। भगवान् इन बातों को समझते थे। उन्होंने सोचा कि मेरा विवाह शान्तिकारी तथा सुखकारी नही है। यदि विवाह शान्तिकारी या सुखकारी होता तो ये मूक पशु पीडा न पाते। जिस काम में दीन हीन गरीब लोक या पशु पक्षी सताये जाय वह काम किसी के लिए भी अच्छा या शुभकारी नहीं हो सकता।

भगवान् कितने परदु.ख भजनहार थे। दूसरे प्राणियों की रक्षा के लिए भगवान् तो अपना विवाह तक रोकने के लिए तय्यार हो गये और आज कल के लोग दूसरे के दु:ख की रत्तीभर भी परवाह नहीं करते। दूसरे के लिए अपनी जरासी मौजमजा छोडने को भी तय्यार नही होते। भगवान् कहते है कि विवाह सुखमूलक है या दु खमूलक। यह बात बाडों और पिंजडों में बद किए हुए उन मूक प्राणियों से पूछिये। यदि पशु–पक्षीयों के हमारे समान जबान होती और हमारी भाषा में बोल सकते होते तो वे क्या जवाब देते इस बात का खयाल करिये। हम हमारे ऊपर से विचार कर सकते हैं कि आप हम ऐसी स्थिति में पहुंच जाय तो हम क्या करेंगे। कोई जीव दु:ख नहीं पसन्द करता। सब सुख चाहते हैं। आप लोगों का रहन सहन पहले की अपेक्षा बदल कर हिंसा पूर्ण होता जा रहा

है। मैं नहीं कहता कि आप लोग सब कुछ छोड कर साधु बन जाय। और बन जाय तो मुझे खुशी ही होगी। मैं साधु बनने के लिए जोर नहीं दे रहा हू। मेरा तो यह कहना है कि आज आप जिस प्रकार का जीवन व्यतीत कर रहे हैं उससे बेहतर जीवन व्यतीत कर सकते हैं। आप इस प्रकार जीवन निर्वाह करने का प्रयत्न कीजिये कि जिसमें दूसरों को तकलीफ न पहुँचे या कम से कम पहुँचे।

आप लोग तपस्या करते हैं। खासकर स्त्रिया बहुत तपस्या करती है। मैं पूछना चाहता हूँ आप पारणा किस दूध से करते हैं। मोल लिए हुए दूध से अथवा घर पर रखी गाय भैस के दूध से। यदि भगवान् आकर आप से जवाब तलब करें तो आप क्या उत्तर दे सकते हैं। आप कहेंगे कि यदि हम दूध का उपयोग करने में लम्बा विचार करने लगें तो जीवन निर्वाह कठिन हो जाता है। तो क्या आपके पूर्वज इस बात को नही समझते थे। पहले के लोग जिस का घी दूध खाते थे उसकी रक्षा करते थे। किन्तु आज के लोग खाना तो जानते हैं मगर रक्षा करना नहीं जानते। जैसे आज यह कह दिया जाता है कि हम क्या करें हम तो पैसे देकर दूध मोल लाते हैं, गायें वाले गायों की क्या हालत करते हैं इस से हमें क्या मतलब। उसी प्रकार भगवान् अरिष्टनेमी भी कह सकते थे कि बाड़े में बधे हुए पशुओं से मुझे क्या मतलब। मैने कहा पशुओं को बँधवाया है। मेरी भावना भी बँधवाने की न थी। किन्तु भगवान् ने ऐसा नही कहा। उस विवाह यज्ञ के पाप के बोझ को भगवान् ने अपने सिर पर स्वीकार किया। उनके निमित्त से होने वाली हिंसा को उन्होंने अपना पाप माना और उसमें अपना श्रेय नही देखा। आप लोग जो मोल का दूध पीते हो उसमें होने वाली हिंसा को आप अपनी हिंसा मानते हो या नहीं। यह हिंसा किसके निमित्त से हुई है, जरा विचार कीजिये।

सुना है कि मेहसाणा और हरियाणा की बडी २ भैंसे बम्बई में दूध के लिए लाई हैं। घोसी लोग एक भैंस दो दो सो तीन तीन सौ रुपये देकर खरीदते है। जब तक वह भैंस दुध देती है और दुध से खर्च आदि की पड़त ठीक बैठनी है तबतक रखी जाती है, बाद में कसाई के हाथ वेच दी जाती है। कसाई खानों में भैंसे किस बुरी तरह कत्ल कर दी जाती हैं इसका विचार करें तब पता लगे कि मोल का दूध खाना कितना हराम है। जब भैंसे दूध देती है तब घोसी लोग उन्हें तबेले में बाध रखते हैं। बडी तग जगह में बद हवा में बधी रहती है। कसाई के यहां जाते वक्त खुली हवा का अनुभव करके भैंसे बडी

प्रसन्न होती है। उन्हें क्या पता कि उनकी यह प्रसन्नता कितनी देर तक टिकेगी। जब भैंसें कसाई खाने में पहुँच जाती हैं तब उन्हें जमीन पर पटक कर यत्र के द्वारा उनके स्तन में रहा हुआ दूध बूंद २ करके खींच लिया जाताहै। दूध निकाल लेनेके बाद उन्हें इसप्रकार पीटा जाता है जिस प्रकार पापड का आटा पीटा जाता है। पीटते पीटते जब सारी चर्बी उनके ऊपर आ जाती है तब उन्हें कत्ल कर दिया जाता है। उनके कत्ल होने का दृश्य यदि आप लोग देख लें तो ज्ञात होगा कि आप के मोल के दूध के पीछे क्या क्या अत्याचार होते हैं।'

आप जरा विचार करिये कि वे भैंसे बम्बई में क्यों लाई गई थी। क्या वे मोल का दूध खाने वालों के लिए नही लाई गई थी? पैसा देकर दूध खरीद ने से इस पाप से बचाव नही हो सकता। कोई जैन धर्म का अनुयायी पैसे का नाम लेकर अपना बचाव नही कर सकता। न जैनों के लिए यह उत्तर शोभनीय भी है।

मैंने बादरा (बम्बई) आदि स्थानों के कत्ल खानों की रोमाचकारी हकीकतें सुनी हैं। घाटकोपर (बम्बई) चातुर्मास में मैंने पशु रक्षा पर बहुत उपदेश दिया था जिस पर वहा जीवदया सस्था भी खुली है। आपके यहा कैसे चलता है सो मुझे पता नही है। मोल के दूध में अनेक अनर्थ भरे है। बीकानेर के एक माहेश्वरी भाई ने मुझे कहा था कि मोल का दूध पीने वाले लोगों के लिए पाली हुई गायों को देखने से पता लगता है कि उनके नीचे बछड़े नहीं होते। वे बच्चे कहाँ चले जाते है। गायों के मालिक बछड़ों को जन्मते ही जगल में छोड आते हैं। वे सोचते है यदि बछड़ा जिन्दा रहेगा तो दूध चूसेगा जिस दूध के लिए ऐसे अनर्थ और पाप होते है उसके पीने में तो पाप नहीं और जिसमें गायों की रक्षा, पालना, पोषण, साल सम्भाल होती है उसके पीने में पाप होता है, ऐसी श्रद्धा कैसे बैठ गई, किसने ऐसा धर्म बताया, समझ में नहीं आता।

शास्त्र में श्रावकों के घर पशु होने का जिक्र है। पशुओं के साथ जैन श्रावक का कैसा वर्ताव होना चाहिए, इसके लिए शास्त्र में कहा है—**श्रावक वध, बंध, छविच्छेद अतिचार और भत्तपानी विच्छेद** इन पाच बातों से बचकर पशुओं का पालन पोषण करे। श्रावक किसी जानवर को खसी नहीं करता, न कराता है। किसी जानवर को गाढ बंधन से नहीं बाधता। किसी पर अधिक बोझा नहीं लादता। न किसी को मारता पीटता और न चारा पानी देने में भूल या देरी ही करता है। भक्त पानी का अन्तराय भी नहीं देता है...

करता। श्रावकों के लिए शास्त्र में यह विधान है। किन्तु आज के लोग पशु पालन का त्याग कर के इस झंझट से बच रहे है और साथमें यह भी समझते है कि पाप से भी बच रहे है। वास्तव में इस पाप से नहीं बचा जा सकता। पाप से बचाव तब हो सकता है जब मोल का दूध दही मावा आदि खाना छोड दिया जाय।

भगवान् नेमीनाथ जैसे समर्थ व्यक्ति धर्म के लिए पशु पक्षियों की हिंसा अपने सिर लेकर विवाह करना तक छोड देते हैं तो क्या आप दूध दही के लिए मारे जाने वाले पशुओं की रक्षा के लिए मोल का दूध दही खाना नही छोड सकते। घी दूध खाना ही है तो पशु रक्षा करनी ही चाहिए। आज तो घर में गाय रखने तक की जगह नहीं होती। मोटर तागे आदि रखने के लिए जगह हो सकती है मगर गाय के लिए जगह नहीं हो सकती।

श्रावक निरारम्भी निष्परिग्रही नही हो सकता किन्तु महारम्भी महापरिग्रही भी नही हो सकता। वह अल्पारम्भी अल्प परिग्रही होता है। श्रावक अपना जीवन इस प्रकार की चीजों से चलाता है जिनके निर्माण में कम से कम पाप हो। जिन चीजों में अधिक पाप होता है उनका उपयोग श्रावक नही करता। मोलके घी दूध में अल्प पाप है या रक्षा करके घर की पाली हुई गायों के घी दूध में। घरकी रखी हुई गायों के घी दुध में अल्प पाप है।

भगवान अरिष्टनेमी ने यह भी विचार किया कि जिस वंश में मै जन्मा हू उस में इस प्रकार के पाप हों यह कैसे सहा जाय। यदि पाप के भार को कम न किया जाय तो मेरा आलस्य गिना जायगा। मेरे विवाह के निमित्त इन दीन हीन प्राणियों के गले पर छुरी चलाई जायगी। अहो! विवाह कितना दुःखदायी है। सारथी से कहा—इन सब जीवों को छोड दो। भगवान् की यह आज्ञा सुनकर सारथी कुछ सकुचाया। पुनः भगवान् ने कहा-- हे सारथी! डरते क्या हो। मैं आज्ञा देता हू कि इन जीवों को छोड दो।

सारथी ने उन जीवों को छोड दिया। छुटकारा पाकर आसमान में उडते हुए या जगल की ओर भागते हुए उन जीवों को कितना आनद आया होगा, इसका अनुमान आप भी लगा सकते हो। कोई आदमी जेलखाने में बंद हो। जेल से छूटने पर उसे कितना आनन्द होता है। पिंजडों में बन्द किये हुए वे जीव तो मौत के मुख से बचे थे। उनके आनन्द का क्या कहना। किसी मरते हुए व्यक्ति को एक पुरुष तो [illegible]दान करने लगे

और दूसरा जीवनदान । वह मरणासन्न व्यक्ति किस दान को पसन्द करेगा ? जीवनदान को ही वह चाहेगा । हमारे शास्त्रों में इसीलिए कहा है—

दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं

सब दानों में अभयदान सर्व श्रेष्ठ है । यह बात शास्त्र कुरान पुरान से ही सिद्ध नहीं है मगर स्वानुभव से भी सिद्ध है । आपसे भी यदि कोई राजा यह कहे कि मैं धन देता हू और दूसरा कोई कहे कि मैं जीवनदान देता हू तो आप जीवनदान ही पसन्द करोगे । कारण कि जीवन न रहा तो धन किस काम का । जीवन के पीछे धन है । यह बात एक दृष्टांत से समझाता हू ।

एक राजा के चार रानियां थी । अपने अपने पद के अनुसार चारों ही राजा को प्रिय थी । राजा ने सोचा कि इन चारों में कौन अधिक बुद्धि मती है इसका निर्णय करना चाहिए और उसी पर ज्यादा प्रेम भी रखना चाहिए । यद्यपि मुझे चारों रानिया प्रिय हैं तथापि गुण की अवहेलना करना ठीक नहीं है । गुणानुसार कद्र होना ही चाहिए । गुणों की तरह ज्ञानियों का खिंचाव होता है । यह स्वभाविक बात है अत सब से बुद्धि मती कौन है इसका निर्णय करना चाहिए ।

परीक्षा करने के लिए राजा समय की प्रतिक्षा करता रहा । योगानुयोग से परीक्षा का समय निकट आगया । एक दिन एक शूली की सजा पाये हुए अपराधी को शूली पर चढ़ाने के लिए ले जाया जा रहा था । उस अपराधी को स्नान कराया गया था । उसके आगे बाजे बजाये जारहे थे । उसके साथ अनेक लोग कोतवाल सिपाही आदि थे । मगर वह अकेला रोता हुआ जा रहा था । यह दृश्य रानियों ने देखा, देखकर दासियों से पूछा कि इतने अच्छे ड्रेस में बाजे गाजे के साथ जाता हुआ यह आदमी रो क्यों रहा है । दासियों ने कहा कि यह शूली का अपराधी है । थोड़ी देर में इसकी जीवन लीला समाप्त होने वाली है अत: मौत के भय से यह रो रहा है ।

आज कल फांसी दी जाती है । पहले शूली दी जाती थी । लोहे के एक तीखे शूल पर आदमी को बिठा दिया जाता था । वह शूल मस्तक में आरपार निकल जाता था ।

रानियों ने पूछा कि क्या कोई इन पर दया नहीं कर सकता । दासियों ने कहा कि राज आज्ञा के विरुद्ध आचरण करने की किसी की हिम्मत नहीं हो सकती है । सब ने सोचा इस बेचारे का कुछ न कुछ भला करना चाहिए ।

पहिली रानी राजा के पास गई। जाकर कहा मैं आप से एक वरदान मागती हू वह आज पूरा करना चाहती हू। राजा ने कहा मांगको वरदान और मेरा बोझ हल्का कर दो। रानी ने एकदिन के लिए उस शूलीकी सजा पाये हुए व्यक्तिको माग लिया। उसे खूब खिलाया पिलाया और एक हजार मोंहरें भेंट में दी। रात को वह सो गया मगर शूली की याद से उसे नींद नही आ रही थी। इन मोहरों का क्या उपयोग है जब कि मैं खूद ही न रहूगा। दूसरे दिन दूसरी रानी ने भी उसे एक दिन अपने यहां रखकर दस हजार मोहरें भेंट दी। तीसरी ने एकलाख मोहरें दी, इसप्रकार उसकेपास तीसरेदिन एक लाख ग्यारह हजार दीनारें थी किन्तु उसका दिल शूली की सजा के स्मरण मात्र से बडा दुःखी था। चौथी रानी ने विचार किया कि मुझे भी इस बेचारे के दुःख में कुछ हिस्सा बटाना चाहिए।

मृत्यु घण्ट बज रहा हो उस समय यदि कोई मुझे कितना भी धन दौलत दे तो वह मेरे लिए किस काम का हो सकता है यह सोचकर रानी ने उसकी शूली माफ कराने का निर्णय किया। राजा की इजाजत लेकर रानी ने उस सजायाफ्ता व्यक्ति को अपने पास बुलाया। बुलाकर उसे पूछा कि जैसे अन्य रानियों ने तुझे एक एक दिन रखकर मोहरें भेंट दी हैं वैसे मैं भी एक दिन रखकर तुझे दस लाख मोहरें दे दू अथवा तेरी यह सजा माफ करवा दू। हाथ जोड़कर चोर कहने लगा भगवति ! मोहरें लेकर मैं क्या करूँ। यदि आप मेरी सजा माफ करा दें तो ये एक लाख ग्यारह हजार मोहरें भी आपको देने के लिए तय्यार हूँ। मुझे जीवन दान चाहिए। धन नहीं चाहिए। उसकी बातें सुनकर रानी ने निश्चय कर लिया कि यह आदमी मोहरों की अपेक्षा जीवन को बहुमूल्य समझता है।

आज आप लोग दमड़ी के लिए जीवन नष्ट कर रहे हो। एक भव का जीवन ही नहीं किन्तु अनेक भवों के जीवन को बिगाड रहे हो। आप अपने कामों की तरफ निगाह करिये। क्या ऐसे कामों के चिकने सस्कारों से अनेक भव नष्ट नहीं होते। अत प्रथम अपनी आत्मा को अभय दान दीजिये। स्वहिंसा को रोकिये।

रानी ने चोर से कह दिया कि तेरी शूली माफ है। चोर बड़ा प्रसन्न हुआ चोर की प्रसन्नता की कल्पना कीजिये कि वह कितनी अपार होगी। चोर अपने घर चला गया किन्तु रानियों में आपस में झगडा हो गया कि किसने चोर का अधिक उपकार

किया । एक एक दिन रखकर मोहरें भेट देने वाली तीनों रानिया एक तरफ हो गई और कहने लगीं चौथी रानी ने चोर को कुछ भी दिए बिना यों ही टरका दिया ! चौथी रानी बोली कि इस प्रकार आपस में वाद विवाद करने से बात का निर्णय नहीं आयगा अतः किसी तीसरे व्यक्ति को मध्यस्थ बना लिया जाय। यह बात सबने स्वीकार करली। राजा को मध्यस्थ बनाकर सब अपना अपना पक्ष उसके सामने रखने लगी।

पहली रानी ने कहा कि मैंने एक दिन के लिए चोर को सजा से बचा कर उसके जीवन के बचाने की शुरुआत की है। दूसरी ने कहा मैंने दस हजार मोहरें दी हैं। तीसरी ने कहा मैंने एक लाख मोहरें दी हैं। हम तीनों ने अपनी शक्ति अनुसार देकर इसका कुछ उपकार किया है। मगर यह चौथी रानी तो कुछ दिए बगैर कोरी बातें करके साफ निकल गई है फिर भी अपने काम को हमारी अपेक्षा श्रेष्ट मानती है। आप फैसला कीजिये कि किसका काम अधिक उत्तम है। राजा ने सोचा कि यदि मैं किसी के पक्ष में न्याय दे दूगा तो मेरा पक्ष-पात समझेगी और इनके आपस में भी झगड़ा हो जायगा। वह चोर जीवित ही है। उसे बुलाकर पुछ लिया जाय। राजाने रानियों से कहा कि मेरी अपेक्षा इस विषय में वह चोर अच्छा न्याय दे सकेगा क्योंकि वह भुक्त भोगी है और उसकी आत्मा जानती है कि किसने उस पर अधिक उपकार किया है। राजा ने चोर को बुलवा लिया और चारों रानीयों का पक्ष समर्थन उसके सामने रख दिया। हे चोर! ईमानदारी से कहना कि इन चारों रानीयों ने तेरे पर जो २ उपकार किये हैं उनमें सब से अधिक उपकार किसका और कौनसा है। झूठ मत बोलना। चोर ने कहा राजन्! उपकार तो इन तीनों रानीयों ने भी किया है जिसे मैं जीवन भर नहीं भूला सकता किन्तु चौथी रानी के द्वारा किया गया उपकार सब से महान् है। इसने मुझे जीवन दान दिया है। इसके उपकार का बदला मैं अनेक जन्मों में भी नही चुका सकता। यह तो साक्षात् भगवती है। दया की अवतार है। ने कहा तू पक्षपात से तो नहीं कह रहा है? इसने कुछ भी नहीं दिया फिर भी इसका सब से अधिक उपकार बता रहा है। चोर ने कहा महाराज मैं ठीक कह रहा हू। मेरे कथन में पक्षपात नहीं है किन्तु नीरी सचाई है। इस चौथी रानी ने मुझे कुछ नहीं दिया है मगर फिर भी सब कुछ दे डाला है। इसने जो दिया है वह मिले बिना जो कुछ इन तीनों ने दिया है वह कैसे सार्थक हो सकता था। दूसरी बात इनकी दी हुई मोहरें पास होने पर भी मुझे यह महान् भय सताता रहा कि प्रातःकाल शूली पर चढ़ना पड़ेगा और जीवन से हाथ धोने होंगे। इस चतुर्थ महारानी ने मेरा सारा भय मिटा दिया और मुझे निर्भय बना दिया।

है। सब कुछ आत्मा के पीछे प्रिय लगता है। आत्मा शरीर से अलग हो जाय तो सम्पत्ति किस काम की रहे।

चोर का निर्णय सुनकर पहली तीनों रानियों का पहले मुँह उतर गया किन्तु वे कुलवती थी अतः समझगई और इसबात को मान लिया कि जीवनदान सब दानोंमें श्रेष्ट है अमुल्य है। राजा ने कहा यदि यह बात ठकि है तो तुम सब में यह चौथी रानी अधिक बुद्धिमती सिद्ध हुई और इस नाते यदि इसे मैं पटरानी बनाऊ और घरकी नायिका कायम कर दूँ तो यह मेरी भूल न होगी। सबने उसे बुद्धि मती और पटरानी स्वीकार कर लिया।

चौथी रानी ने कहा मेरे पटरानी बनने से यदि किसी को भय हो तो मैं सबकी सेविका बन कर ही रहना चाहती हू। किसी प्रकार का कलह पैदा करके अथवा आप लोगें को दुःख देकर मैं पटरानी होना पसन्द नहीं करती। तीनों ने कहा हमें तुह्मारी तरफ न तो भय है और न दु:ख। आपकी अक्ल के सामने हम तुच्छ है। आप पटरानी होने लायक है।

मतलब यह है कि अभयदान सब दानो में श्रेष्ट दान है अभय दान कब दिया जाता है इस पर विचार करिये। आप पाच रुपये में बकरा खरीद कर उसे अभयदान दो अथवा किसी अन्य जीव को मरण से बचा कर उसे अभयदान दो, यह ठीक है। किन्तु पहले आप अपने खुद के लिए विचार करिये कि आप स्वय अभय अथवा निर्भय हैं या नही। भगवान् नेमिनाथ के समान आपने अपनी आत्मा को निर्भय बनाया है या नहीं। भगवान् उन मूक पशुओं को बाडे से छुड़ाकर शादी कर सकते थे। किन्तु उन्होंने ऐसा न करके **'तोरण से रथ फेर लिया'** सो सदा के लिए फिरा ही लिया। अपनी आत्मा को अभयदान देने के लिए भगवान् का यह दूसरा कदम था। पहला कदम जीवों को छुडाना था। जब कि विवाह दुःख का मूल है विवाह करके आत्म को भय में डालना भगवान् ने उचित नहीं समझा। मुकुट के सिवा सब आभूषण सारथी को दे दिया और स्वय वापस लौट गये। कहावत है—

वणिकतुष्टं देत हस्तताली।

बनीये प्रसन्न हो जाय तो एक दो और जमादें मगर कुछ देने में बहुत सङ्कोच होता है। भगवान् वनिये नहीं थे जो ऐसा करते। उन्होंने मुकुट के सिवा सब कुघ सारथी को दे डाला। श्रीकृष्ण के भण्डार के आभूषण कितने बहु मूल्य होगें जरा खयाल करियेगा।

राजेमती इनके साथ विवाह करने की इच्छा रखती थी। अत उनके लौट जाने से उसकी क्या दशा हुई होगी। उसने सोचा कि भगवान् मुझे परमार्थ का मार्ग दिखाने आये थे। वे मेरे मोहनगारो है। आप लोग केवल गीता गाकर मोहनगारो कहते हैं मगर राजेमती ने सच्चा मोहनगारा बनाया था। कोरे गीत गाने से कुछ नही होता। गीत दो तरह से गाये जाते हैं। विवाह आदि प्रसग पर वर की माता भी गीत गाती है और पडौसी स्त्रिया भी इन दोनों गीत गाने वालियों में कोई अन्तर है या नहीं? पडोसी स्त्रिया गीत गाकर लेती हैं। माता गीत गाकर देती है। यदि मा भी गीत गाकर लेने लगे तो वह माता न रहेगी पडौसिन बन जायगी। उसका माता का अधिकार न रहेगा। आप भी परमात्मा के गीत गाये तो अधिकारी बनकर गाइये। लेने की भावना मत रखिये। अन्यथा अधिकार चला जायगा।

विचार करने से मालूम होता है कि भगवान् नेमीनाथ से राजेमती एक कदम आगे थी। नेमीनाथ तोरण से वापस लौट गये थे। अत. राजेमती चाहती तो उनके हजार अवगुण निकाल सकती थी। वह कह सकती थी कि वरराजा बन कर आये और वापस लौट गये। मुझ से पूछा तक नही। यदि विवाह न करना था तो बींद बन कर आये ही क्यों थे। दीक्षा ही लेनी थी तो यह ढोंग क्यों रचा। मैं उनकी अर्धाङ्गिनी बन चुकी थी तो दीक्षा के लिए मेरी सम्मति लेनी आवश्यक थी आदि।

आज के आलोचक विद्वान कह सकते है कि नेमीनाथ तीर्थंकर थे फिरभी उनके काम कैसे हैं कि तोरण पर आकर वापस लौट गये। एक स्त्री का जीवन बरबाद कर दिया। विद्वानों की आलोचना पर विचार करने के पहले राजेमती क्या कहती है। एक सखी ने कहा अच्छा हुआ जो नेमजी चले गये। वास्तव में उनकी और तुम्हारी जोडी भी ठीक न थी। वे काले है तुम गोरी हो। मुझे यह सम्बन्ध पहले से ही नापसन्द था। मगर मै कुछ बोल नहीं सकती थी। वे जैसे ऊपर से काले हैं वैसे हृदय से भी काले है। बींद बन कर आना, छत्र चंवर धारण करना फिर भी वापस लौट जाना यह हृदय का कितना कालापन है। अच्छा हुआ कि विवाह करने के पूर्व ही चले गये। नाक कटी तो उन लोगों की जो बारात में सज धज कर आये थे अपना क्या नुक्सान हुआ। राजेमती! तुम तो खुशी मनाओ। तुम को कोई दूसरा उससे भी अधिक योग्य वर मिल जायगा।

दूसरी सखी ने कहा—यह मूर्खा है जो भगवान् की निन्दा करती है। निन्दा करने से क्या प्रयोजन सिद्ध होता है। लेकिन मैं तुम से यह पूछना चाहती हूं कि थोड़ी देर पहले तुम्हारा क्या विचार था। राजेमती ने उत्तर दिया कि भगवान् की पत्नी बनने का सखी ने कहा—तब इतनी सी देर में वैराग्य कहाँ से आ गया। क्षणिक आवेश में आकर वैराग्य की बातें करती हो किन्तु भविष्य का भी जरा खयाल करो। अभी तो बाजी हाथ में है। अभी तुम्हें विवाह का दाग भी नहीं लगा है। माता पिता से कहने पर दूसरे वर के साथ इसी मुहूर्त में विवाह करा देंगे। आप जैसी कुलवन्ती के लिए वर की क्या कमी है।

राजेमती ने उत्तर दिया कि यह बात ठीक है कि मैं भगवान् की पत्नी बनना चाहती थी। जो सच्ची बात थी तुझ से कही थी। मैं झूठ बोलना अच्छा नहीं समझती। सत्य से विष भी अमृत हो जाता है और झूठ से अमृत भी विष। मैं दिल से उनकी पत्नी बन चुकी हूं गो ऊपर से विवाह संस्कार नहीं हुआ है। मैं समीप से सायुज्य में पहुँच चुकी हूं। अतः अब उनका काम उनका धर्म और उनका मार्ग मेरा काम, मेरा धर्म और मेरा मार्ग होगा। जिस प्रकार लवण की पुतली समुद्र मे स्नान करने जाती है और उसी में समाजाती है उसी प्रकार मैं भी भगवान् में समा चुकी हूँ। पहले मैं पति शब्द का अर्थ कुछ और समझती थी किन्तु अब जान गई हूँ कि **'पुनातीतिपतिः'** अर्थात् जो पवित्र बनाये वह पति है। भगवान् ने मुझे पावन बना दिया है। विवाह करने पर एक को सम्मान देना पड़ता है और अन्यों की उपेक्षा करनी पड़ती है। ऐसा न हो तो वह विवाह ही नहीं है। मैं भी भगवान् को सन्मान देती हूँ जिन्होंने जगत् की सब स्त्रियों को माता और बहिन बना लिया है। मेरी भगवान् से जो लगन लगी है वह लगी ही रहेगी। वह लगन अब नहीं टूट सकती। चाहे मेरे मात पिता मुझे पहाड़ से गिरादें, विषपान करादें अथवा अन्य कुछ करदें किन्तु भगवान् के साथ जो लगन लगी है वह नहीं बदल सकती।

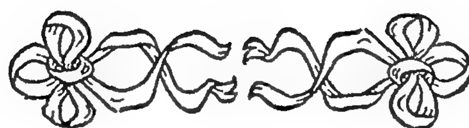
विवाह आप लोगों का भी हुआ है। जिसके साथ विवाह हुआ है उसके साथ ऐसी लगन लगी है या नहीं। विवाह करके स्त्री किसी पर पुरुष पर नजर न डाले और पुरुष स्त्री पर, यही सबक भगवान् नेमिनाथ और राजेमती के चरित्र

से लेना चाहिए । तभी आप भगवान् के श्रावक कहला सकते है । ऐसा हो तभी आनन्द है ।

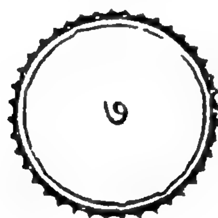
राजेमती दीक्षा लेकर भगवान् से ५४ दिन पहले मुक्तिपुरी में पहुँची हैं । कवि कहते है कि राजेमती की मुक्ति सुन्दरी से प्रतिस्पर्धा थी । राजेमती कहती है अयि मुक्ति सुन्दरी ! तू मेरे पति को अपने पास पहले बुलाना चाहती थी मगर यहां भी मैं पहले आ पहूँची हूँ । अब देखती हूँ कि मेरे पति यहा से मुझे छोड़ कर कैसे जाते हैं ।

सच्चा विवाह करने वाले भगवान् अरिष्टनेमी और राजेमती अन्त तक हृदय में बने रहें तो कल्याण है ।

राजकोट
१२—७—३६ का
व्याख्यान



आत्म-विभ्रम



"जीवरे तू पार्श्व जिनेश्वर वन्द..............."



यह भगवान तेइसवें तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथ की प्रार्थना है। इस प्रार्थना में यह बात बताई गई है कि आत्मा अपना निज स्वरूप किस प्रकार भूल गया है और पुनः उसे कैसे जान सकता है। इस पर यह प्रश्न उठता है, जब कि आत्मा चिदानन्द स्वरूप है तब अपने रूप को क्यों भूल गया। पुनः स्वरूप का भान किस प्रकार हो सकता है। यह प्रश्न बड़ा कठिन जान पड़ता है किन्तु हृदय के कपाट खोलकर विचार करने से सरल बन जाता है।

आत्मा भ्रम में पड़ा हुआ है यह बात सत्य है मगर इस भ्रम को वह स्वयं ही मिटा सकता है। यदि आत्मा उद्योग करे तो भ्रम मिटाकर स्वस्वरूप को आसानी से जान सकता है। आत्मा भ्रम में जिस प्रकार पड़ा हुआ है इसके लिए इस प्रार्थना में कहा गया है—

मतलब यह है कि आत्मा ने अपने भ्रम से ही जगत् पैदा कर रखा है। जिस तरह रस्सी में सांप की कल्पना हुई उसी प्रकार मैं दुबला हूं, मैं लगडा लूला हू, आदि अनेक कल्पनाए की जाती है। विचार करने पर मालूम होगा कि आत्मा न दुबला है और न लगडा लूला। दुबला और लगडा लूला शरीर है मगर भ्रमवश शरीर के धर्म आत्मा में मानकर मनुष्य भयभीत या दु:खी होता है। आत्मा और शरीर के गुण स्वभाव भिन्न भिन्न हैं। अज्ञानवश जीव दोनों को एक मानता है और अनेक प्रकार का जाल रचता है। इस भ्रम को मिटाने के लिए तथा काल्पनिक जगत् बनाने से बचने के लिए प्रार्थना में कहा गया है **'जीवरे तू पार्श्व जिनेश्वर वंद'**। भगवद् भक्ति से सब प्रकार के भ्रम मिट जाते हैं भ्रम मिटने पर दु ख कभी नहीं हो सकता।

इसी बात को जैन सिद्धान्त के अनुसार देखें कि आया यह ससार भ्रम—कल्पना से ही बना हुआ है अथवा वास्तविक है। शास्त्र कहते हैं व्यवहार दृष्टि से जगत् वास्तविक है और निश्चय दृष्टि से काल्पनिक। इस विषय का विशेष खुलासा उत्तराध्ययन सूत्र के वीसवें अध्ययन में किया गया है।

महानिर्ग्रंथ अध्ययन में नाथ अनाथ की व्याख्या की गई है और बताया गया है कि जीव भ्रमवश अपने को अनाथ मानता है और अभिमान से नाथ समझता है। वास्तव में वह न नाथ है और न अनाथ है। नाथ अनाथ का सच्चा स्वरुप बताकर राजा श्रेणिक का भ्रम मिटाया गया है। इसी बात को समझ कर किसी बात का त्याग न करने पर भी केवल सच्ची समझ पैदा हो जाने के कारण राजा श्रेणिक ने तीर्थंकर गौत्र बाध लिया था। महानिर्ग्रन्थ और श्रेणिक का सवाद ध्यान पूर्वक सुनने से उसका रहस्य ध्यान में आयगा। मैं अनाथी मुनि के चरण रज के समान भी नही हू और आप भी श्रेणिक राजा के समान नही हैं। फिर भी उन मुनि की बातचीत कहने के लिए मुझे जैसे अपने आत्मा को तय्यार करना होगा वैसे आपको भी कुछ तय्यारी करनी होगी। जैसे उस चोर ने मुर्दे का पार्ट पूरा अदा किया था वैसे आपको भी श्रेणिक का पार्ट अदा करना चाहिए। ऐसा करने पर ही इस कथा का रहस्य समझ में आयगा।

राजा श्रेणिक के परिचय के लिए इस कथा में कहा गया है—

पभूयरयणो राया सेणिओ मगहाहिवो।
विहारजत्तं निज्जाओ मंडिकुच्छिसिचेइये ॥ २ ॥

पहले पात्र का परिचय कराना आवश्यक होता है। श्रेणिक इस कथा में प्रधान पात्र है। वह अनेक रत्नों का स्वामी था। श्रेणिक साधारण राजा नहीं था किन्तु मगध देश का अधिपति था।

शास्त्र में श्रेणिक को बिम्बिसार भी कहा गया है। श्रेणिक की बुद्धिमत्ता के लिये कथा प्रसिद्ध है। श्रेणिक के पिता प्रसन्नचन्द्र के सौ पुत्र थे। पिता यह जानना चाहता था कि उसके पुत्रों में सबसे अधिक बुद्धिमान कौन है। परिक्षा करने के लिये प्रसन्नचन्द्र ने एक दिन कृत्रिम आग लगा दी और अपने पुत्रों से कहा कि आग लगी है अतः महलों मे से जो सार भूत चीजें हों उन्हे बाहर निकाल डालो। पिता की आज्ञा पाते ही सब लडके अपनी २ रुचि के अनुसार जिसे जो वस्तु अच्छी लगी वह निकालने लगा श्रेणिक ने घर मे से दुन्दभी निकाली। दुन्दभी को निकालते देख कर उसके सब भाई हसने लगे और कहने लगे कि यह कैसा आदमी है जो ऐसे अवसर पर ऐसी वस्तु बाहर निकाल रहा है। नगारा के सिवा इसे कोई अच्छी वस्तु घर में नहीं दिखाई दी जो इसे निकालना पसन्द किया है। यह अब नगारा बजाया करेगा। मालूम होता है, यह ढोली है। खजाने मे रत्नादि न निकाल कर यह दुन्दुभी निकाली है।

ऊपर की नजर से श्रेणिक का यह काम बडा हल्का मालूम पडता था मगर उसके मर्म को कौन जाने। राजा प्रसन्न चन्द्र इसका मर्म समझते थे। समझते और जानते हुए भी उस समय प्रसन्न चन्द्र ने श्रेणिक की प्रशसा करना उचित नहीं समझा। कारण निन्यान्वे भाई एक तरफ थे और अकेला श्रेणिक एक तरफ। क्लेश हो जाने की सम्भावना थी। प्रसन्न चन्द्र ने पुत्रों से पूछा कि क्या बात है। सबने कहा कि हमने अमुक अमुक चीज निकाली है पर पिताजी हम सब बड़े हैरान हैं कि आप के बुद्धी मान पुत्र श्रेणिक ने नगारा निकाला है। इससे बढ़कर कोई बहुमूल्य वस्तु आपके खजाने में इसे नहीं मिली। वाद्य की क्या कमी है। दस पाच रुपयों में वाद्य मिल सकता है। यह निरा मूर्ख मालूम पड़ता है। प्रसन्न चद्र ने श्रेणिक की ओर नजर कर के कहा कि ये लोग तुम्हारे लिए क्या कह रहे हैं सुनते हो। श्रेणिक ने उत्तर दिया कि पिता जी ' राजाओं को रत्नों की क्या कमी है। यह नगारा राज्य चिह्न है। यदि यह जल जाय तो राज्य चिह्न जल जाता है और यदि यह बच जाय तो सब कुछ बच गया समझना चाहिए। राज्यचिह्न के रह जाने से अनेक रत्न ऐसा किए जा सकते हैं

मतलब यह है कि आत्मा ने अपने भ्रम से ही जगत् पैदा कर रखा है। जिस तरह रस्सी में सांप की कल्पना हुई उसी प्रकार मैं दुबला हू, मैं लगडा लूला हू, आदि अनेक कल्पनाए की जाती हैं। विचार करने पर मालूम होगा कि आत्मा न दुबला है और न लगडा लूला। दुबला और लगडा लूला शरीर है मगर भ्रमवश शरीर के धर्म आत्मा में मानकर मनुष्य भयभीत या दु'खी होता है। आत्मा और शरीर के गुण स्वभाव भिन्न भिन्न हैं। अज्ञानवश जीव दोनों को एक मानता है और अनेक प्रकार का जाल रचता है। इस भ्रम को मिटाने के लिए तथा काल्पनिक जगत् बनाने से बचने के लिए प्रार्थना में कहा गया है **'जीवरे तू पार्श्व जिनेश्वर वंद'**। भगवद् भक्ति से सब प्रकार के भ्रम मिट जाते हैं भ्रम मिटने पर दु ख कभी नहीं हो सकता।

इसी बात को जैन सिद्धान्त के अनुसार देखें कि आया यह ससार भ्रम-कल्पना से ही बना हुआ है अथवा वास्तविक है। शास्त्र कहते हैं व्यवहार दृष्टि से जगत् वास्तविक है और निश्चय दृष्टि से काल्पनिक। इस विषय का विशेष खुलासा उत्तराध्ययन सूत्र के बीसवें अध्ययन में किया गया है।

महानिर्ग्रंथ अध्ययन में नाथ अनाथ की व्याख्या की गई है और बताया गया है कि जीव भ्रमवश अपने को अनाथ मानता है और अभिमान से नाथ समझता है। वास्तव में वह न नाथ है और न अनाथ है। नाथ अनाथ का सच्चा स्वरूप बताकर राजा श्रेणिक का भ्रम मिटाया गया है। इसी बात को समझ कर किसी बात का त्याग न करने पर भी केवल सच्ची समझ पैदा हो जाने के कारण राजा श्रेणिक ने तीर्थंकर गौत्र बाध लिया था। महानिर्ग्रन्थ और श्रेणिक का सवाद ध्यान पूर्वक सुनने से उसका रहस्य ध्यान में आयगा। मैं अनाथी मुनि के चरण रज के समान भी नहीं हू और आप भी श्रेणिक राजा के समान नहीं है। फिर भी उन मुनि की बातचीत कहने के लिए मुझे जैसे अपने आत्मा को तय्यार करना होगा वैसे आपको भी कुछ तय्यारी करनी होगी। जैसे उस चोर ने मुर्दे का पार्ट पूरा अदा किया था वैसे आपको भी श्रेणिक का पार्ट अदा करना चाहिए। ऐसा करने पर ही इस कथा का रहस्य समझ में आयगा।

राजा श्रेणिक के परिचय के लिए इस कथा मे कहा गया है—

पभूयरयणो राया सेणिओ मगहाहिवो।
विहारजत्तं निज्जाओ मंडिकुच्छिसिचेइये ॥ २ ॥

पहले पात्र का परिचय कराना आवश्यक होता है। श्रेणिक इस कथा में प्रधान पात्र है। वह अनेक रत्नों का स्वामी था। श्रेणिक साधारण राजा नहीं था किन्तु मगध देश का अधिपति था।

शास्त्र में श्रेणिक को बिम्बिसार भी कहा गया है। श्रेणिक की बुद्धिमत्ता के लिये कथा प्रसिद्ध है। श्रेणिक के पिता प्रसन्नचन्द्र के सौ पुत्र थे। पिता यह जानना चाहता था कि उसके पुत्रों में सबसे अधिक बुद्धिमान् कौन है। परिक्षा करने के लिये प्रसन्नचन्द्र ने एक दिन कृत्रिम आग लगा दी और अपने पुत्रों से कहा कि आग लगी है अतः मेहलों में से जो सार भूत चीजें हों उन्हे बाहर निकाल डालो। पिता की आज्ञा पाते ही सब लडके अपनी २ रुचि के अनुसार जिसे जो वस्तु अच्छी लगी वह निकालने लगा श्रेणिक ने घर मे से दुन्दभी निकाली। दुन्दभी को निकालते देख कर उसके सब भाई हसने लगे और कहने लगे कि यह कैसा आदमी है जो ऐसे अवसर पर ऐसी वस्तु बाहर निकाल रहा है। नगारा के सिवा इसे कोई अच्छी वस्तु घर में नहीं दिखाई दी जो इसे निकालना पसन्द किया है। यह अब नगारा बजाया करेगा। माल्यम होता है, यह ढोली है। खजाने से रत्नादि न निकाल कर यह दुन्दुभी निकाली है।

ऊपर की नजर से श्रेणिक का यह काम बडा हल्का मालूम पड़ता था मगर उसके मर्म को कौन जाने। राजा प्रशन्न चन्द्र इसका मर्म समझते थे। समझते और जानते हुए भी उस समय प्रसन्न चन्द्र ने श्रेणिक की प्रशंसा करना उचित नही समझा। कारण निन्यान्वे भाई एक तरफ थे और अकेला श्रेणिक एक तरफ। क्लेश हो जाने की सम्भावना थी। प्रसन्न चन्द्र ने पुत्रों से पूछा कि क्या बात है। सबने कहा कि हमने अमुक अमुक चीज निकाली है पर पिताजी हम सब बड़े हैरान हैं कि आप के बुद्धी मान पुत्र श्रेणिक ने नगारा निकाला है। इससे बढ़कर कोई बहुमूल्य वस्तु आपके खजाने में इसे नहीं मिली। वाद्य की क्या कमी है। दस पाच रुपयों में वाद्य मिल सकता है। यह निरा मूर्ख मालूम पडता है। प्रसन्न चद्र ने श्रेणिक की ओर नजर कर के कहा कि ये लोग तुम्हारे लिए क्या कह रहे हैं सुनते हो। श्रेणिक ने उत्तर दिया कि पिता जी! राजाओं को रत्नों की क्या कमी है। यह नगारा राज्य चिह्न है। यदि यह जल जाय तो राज्य चिह्न जल जाता है और यदि यह बच जाय तो सब कुछ बच गया समझना चाहिए। राज्यचिह्न के रह जाने से अनेक रत्न पैदा किए जासकने है

आज कल भी नगारे की बहुत रक्षा की जाती है। नगारे पर होशियार रक्षक रखे जाते हैं। यदि किसी राजा का नगाडा चला जाय तो उसकी हार मानी जाती है। उसका राजचिह्न चला जाता है।

श्रेणिक ने कहा कि राज्य चिह्न समझ कर इस की रक्षा करना मैंने सब से जरूरी समझा है। श्रेणिक के भाई कहने लगे यह मूर्खता है। युद्ध के समय यदि नगरा बजाया जाय तो हमारी समझ में आ सकता है कि मौके पर राज्य चिन्ह बचा लिया किन्तु शान्ति काल में आग में जलती वस्तुओं की रक्षा के वक्त नगाड़ा निकालना कोई बुद्धिमत्तापूर्ण काम नहीं है।

प्रसन्न चन्द्र श्रेणिक पर बहुत प्रसन्न हुए किन्तु प्रसन्नता बाहर न दिखाई। श्रेणिक को आंख के इशारे से समझा दिया कि इस समय तू यहां से चला जा। श्रेणिक चला गया। बाहर रह कर उसने बहुत रत्न प्राप्त किये। प्रसन्नचन्द्र ने अन्त में उसकी बुद्धिमत्ता से खुश होकर उसी को राज्यभार सौंपा। श्रेणिक भेरी (दुन्दुभी-एक वाद्य विशेष) निकाल कर लाया था। भेरी शब्द का मागधी में भम्भा या बिम्ब होजाता है। श्रेणिक ने बिम्ब को ही सार माना था अतः उसका नाम बिम्बिसार भी है। घर से निकाल दिये जाने पर वह बहुत रत्न लाया था अतः बहुत रत्नों का स्वामी कहा गया।

अब श्रेणिक शब्द का अर्थ देखलें। कहते हैं वह घर से निकाल दिया जाने पर भी राजकुमार ही रहा। ऊँचे ओहदे पर ही रहा, नीचे नहीं गिरा। विपत्ति में पड जाने पर भी वह सम्पन्न ही रहा—श्रेष्ठ ही रहा अतः श्रेणिक कहलाया।

श्रेणिक संसार की सब सम्पदाओं से युक्त था मगर उसके पास ज्ञानसम्पदा नहीं थी। आप लोगों को अन्य सब सम्पदाएं प्रदान करने वाले और ज्ञानसंपदा प्रदान करने वाले में बडा कौन मालूम होता है। एक आदमी आपको बल देता है, धन देता है, सब कुछ देता है और दूसरा आपको आत्मा की पहिचान कराता है। इन दोनों में आपको कौन बडा लगता है। जो आत्मा की पहिचान कराते हैं और यह श्रद्धा पैदा कर देता है कि आत्मा और शरीर, तलवार और म्यान अलग अलग हैं, वे महात्मा जगत् में बहुत छोटे हैं। सम्पदा देने वालों में ये महात्मा कम उपकारक नहीं हैं। बहुत अधिक उपकारक हैं।

यदि आप लोगों को आत्मा और शरीर का तलवार और म्यान के समान पृथक् पृथक् भान हो जाय तो क्या चाहिए। इस बात पर दृढ श्रद्धान हो जावे तो बेडा पार है। किन्तु दुःख है कि व्यवहार के समय ऐसा विश्वास कायम नहीं रहता, यदि कभी किसी वीरयोद्धा के पास तलवार हो और उस समय यदि शत्रु उसके सामने आजाय तो वह वीर तलवार को सभालेगा या म्यान को। यदि उसने उस समय तलवार न सभाल कर म्यान सभाला तो क्या वह वीर कहलायेगा और शत्रु से अपनी रक्षा कर सकेगा। इसी प्रकार आप लोगों पर भी मान लो कोई आपत् आ जाय तो उस समय आप म्यान के समान शरीर का बचाव करोगे अथवा तलवार के समान आत्मा का। शरीर को तो सभाला जाय पर उसमें निवास करने वाले आत्मदेव को न सभाला जाय यह कितनी मूर्खता की बात होगी।

कामदेव श्रावक की परीक्षा करने के लिए एक देव पिशाच का रूप धारण कर हाथ में तलवार लेकर आया और कहने लगा कि तू तेरा धर्म छोड दे नहीं तो मैं तेरे शरीर के टुकडे २ कर डालूंगा। यह सुन कर काम देव किञ्चित् भी भयभीत न हुआ। शास्त्र कहते हैं कि पिशाच के शब्द सुन कर कामदेव श्रावक का एक रोम भी नहीं डिगा। उसे जरा भी भय या त्रास न हुआ। जरा विचार कीजिये कि कामदेव को भय क्यों नहीं हुआ। क्या उसके पास सम्पत्ति नही थी जिसका उसे मोह न था। शास्त्र कहता है उसके पास अठारह करोड सोनैया और साठ हजार गायें थी। वह श्रीमन्त और ठाट बाट वाला था। पिशाच के शब्द सुनकर कामदेव हँसता हुआ विचार कर रहा था कि हे भगवन्! यदि मैं ने धर्म और आत्मा को न जाना होता तथा तेरी शरण न पकडी होती तो आज मेरी क्या दशा होती। इस कठोर परीक्षा में मैं टिक सकता या नहीं। परीक्षा उसी की होती है जो पाठशाला पढ़ने जाता है। जो पाठशाला नही जाता उसकी कौन परीक्षा करे। कामदेव भगवान् का भक्त और श्रावक था अतः उसकी परीक्षा हुई है। उसने भगवान् महावीर का धर्म अंगीकार किया हुआ था अतः परीक्षा हुई। उसने ऐसा न सोचा कि महावीर का धर्म स्वीकार करने से मुझ पर आफत आई है अतः हे महावीर मेरी रक्षा करो—बचाओ।

आज तो भ्रम से उत्पन्न डाकिन भूतों का भी भय होता है लेकिन कामदेव सामने खडे हुए भूत को देखकर भी नहीं डरा। पिशाच बडा भयानक रूप धारण किये हुए था। हाथ में तलवार लिए हुए था। टुकडे करने की बात कह रहा था फिर भी कामदेव का एक रोम भी विचलित न हुआ, यह कितने आश्चर्य की बात है। कदाचित् आप लोग यों दलील दें कि हम गृहस्थ है अतः इतने मजबूत नहीं रह सकते। क्या

कामदेव गृहस्थ नहीं थे। वे नहीं डरते थे तो आप क्यों डरते हो। यह कहो कि हमें अभी आत्मा और शरीर के तलवार–म्यान के समान पृथक् २ होने में पूरा विश्वास नही है। कुछ सदेह है।

यह पिशाच मेरे शरीर के टुकड़े करना चाहता है किन्तु अनन्त इन्द्र भी मेरे टुकडे नहीं कर सकते। मैं जानता हू और मानता हू कि टुकड़े शरीर के हो सकते हैं आत्मा के नहीं। शरीर के टुकड़े होने से आत्मा का कुछ नहीं बिगड़ता। शरीर तो पहले से ही टुकड़ों से जुडा हुआ है।

मैं सब सन्त और सतियों से यह बात कहना चाहता हू कि यदि हमारे श्रावकों में भूत पिशाच आदि का भय रहा तो यह हमारी कम जोरी होगी। विद्यार्थी के परीक्षा में फैल होने पर जैसे अध्यापक को शर्मिन्दा होना पडता है वैसे ही श्रावक श्राविकाओं में भय होने पर साधुओं को शर्मिन्दा होना चाहिए। भगवान् महावीर का धर्म प्राप्त करने के बाद भय खाने की बात ही नहीं रहती।

कामदेव ने हँसते हुए कहा—ले शरीर के टुकडे कर डाल। कामदेव मन में विचार करता है कि इस पिशाच ने धर्म नहीं पाया है अतः यह ऐसा काम करना चाहता है। मैंने धर्म प्राप्त किया है अतः इस अग्नि परीक्षा में उतरकर अपने धर्म को शुद्ध स्वच्छ बनालू। जैसे इसने मुझ पर निष्कारण वैर भाव लाना अपना धर्म मान रखा है। वैसे मैंने भी निष्कारण वैरियों पर क्रोध न करना अपना धर्म मान रखा है। अधर्म वैर करना सिखाता है और धर्म प्रेम करना। यदि मैं शान्त–स्वभाव छोड कर अशान्त बन जाऊ तो इस में और मुझ में क्या अन्तर रहेगा।

दैवी और आसुरी दो प्रकार की प्रकृतियाँ होती है। यहां इन दोनों की परस्पर लडाई हो रही है। गीता में इन दोनों प्रकृतियों का वर्णन इस प्रकार किया गया है।

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ! संपदमासुरीम्॥

दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, निर्दयता और अज्ञान ये छ आसुरी प्रकृति के लक्षण हैं। जिस में ये बाते पाई जाती हो वह असुर है। दैवी प्रकृति के लक्षण निम्न प्रकार हैं।

अभयं सत्त्वसंशुद्धि ज्ञानयोगव्यवस्थिति ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्तमार्दवं ह्रीरचापलम् ॥
तेजः क्षमाधृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥

दैवी प्रकृति का पहला लक्षण अभय है । जो स्वय निर्भय होता है वही दूसरों को अभयदान दे सकता है । भय से कापने वाला व्यक्ति दूसरों को क्या अभयदान देगा । काम देव के समान आत्मा और शरीर को जुदा २ मानने और विश्वास करने वाले ही दूसरों को निर्भय बना सकते है । कामदेव ने अपना अक्रोध रूप धर्म नहीं छोडा । अक्रोध धर्म को छोडना ऐसा समझो जैसे कोढ़ रोग को लेकर अपना स्वास्थ्य दान करना । अथवा चिन्तामणि रत्न देकर बदले में कंकड लेना । कामदेव में ऐसी दृढ़ता थी लेकिन आज आप लोग दर दर के भिखारी बन रहे हो । कहीं किसी देव को पूजते हो और कहीं किसी को । स्त्रियों में यह बात विशेष रूप से पाई जाती है । यदि हम साधु लोग भी मंत्र--तंत्रादि का ढोंग करने लगे तो बहुत लोग हमारे पास उमड पडें किन्तु यह साधु का मार्ग नहीं है । हम तो भगवान् महावीर का धर्म सुनाते हैं जिसे पसन्द पडे वह लेले और जिसे पसन्द न पडे वह न ले ।

पिशाच ने मौखिक भय से कामदेव को डिगते न देखकर उसके शरीर के टुकडे२ कर डाले । कामदेव इस अवस्था में भी यह मानता रहा कि मुझे वेदना नहीं हो रही है किन्तु जन्म जन्म की वेदना जा रही है ।

ऑपरेशन करते समय शरीर में वेदना होती है किन्तु जो लोग दृढचित होते हैं वे उस समय भी प्रसन्न रहते हैं । जब डाक्टर ने मेरे हाथ का ऑपरेशन करने के लिए कहा तब मैंने अपना हाथ उसके सामने लम्बा कर दिया । उसने क्लोराफार्म सुघाने के लिए कहा लेकिन मैंने सुंघने से इन्कार कर दिया । बिना क्लोराफार्म के ही मेरा ऑपरेशन हुआ और जो वेदना हुई उसे मैंने प्रसन्नता पूर्वक सहन किया । सुना है, फ्रांस में एक आदमी ने यह देखने के लिए कि नसें काटने पर कैसी वेदना होती है, अपनी नसें काट डाली । नसें काटते २ वह मर गया मगर अन्त तक वह हँसता ही रहा ।

कामदेव श्रावक भी शरीर के टुकड़े होते समय हँसता ही रहा। आखिर देव हार गया और अपना पिशाच रूप छोडकर दैवी रूप प्रगट किया। कामदेव ने अपने अक्रोध धर्म के जरिये पिशाच को देव बना लिया। भगवान् महावीर देवाधिदेव हैं। अनन्त इन्द्र मिलकर भी उनका एक रोम नही डिगा सकते। आप ऐसे भगवान् के शिष्य हैं अतः कुछ तो दृढ़ता रखिये। जो बात सागर में होती है थोडे बहुत रूप में वह गागर में भी होनी चाहिए। भगवान् का किंचित् गुण भी हम में आये तो हम निर्भय बन सकते है।

देवता कामदेव से कहने लगा कि इन्द्र ने आप के विषय में जो कुछ कहा था वह ठीक निकला। मैंने आपके शरीर के टुकडे क्या किये मेरे पाप के ही टुकडे कर डाले। जिस प्रकार लोहे की छुरी पारस के टुकडे करते हुए स्वय सोने की बन जाती है उसी प्रकार आप की धर्म दृढता देखकर मेरे पाप विनष्ट हो गये हैं। मैं अब ऐसे काम कभी न करूंगा।

कहने का साराश यह है कि श्रेणिक राजा अनेक रत्नों का स्वामी था मगर एक धर्म रूप रत्न की उसमें कमी थी। वह जल तारिणी, उपद्रवादि नाशिनी विद्याए जानता था किन्तु धर्म रूप रत्न उसके पास न था। और इसीसे वह अनाथ था।

आज अनाथ उसे कहा जाता है जिसका कोई रक्षक न हो। जिसे कोई खाने पीने की वस्तुए देने वाला न हो। और जिसका रक्षक हो तथा खाने-पीने की वस्तुएं देने वाला हो वह सनाथ गिना जाता है। किन्तु महा निर्ग्रन्थअध्ययन नाथ अनाथ की व्याख्या कुछ और प्रकार से करता है, यह बात अवसर होने पर बताई जायगी।

सुदर्शन चरित्र—

तिनपुर सेठ श्रावक दृढ़ धर्मी, यथा नाम जिनदास।
अर्हदासी नारी खासी रूप शील गुणवान रे ॥ धन० ॥ ५ ॥
दास सुभग बालक अति सुन्दर गौएं चरावन हार।
सेठ प्रेम से रखे नेमसे करे साल संभाल रे ॥ धन० ॥ ६ ॥

कथा में सुदर्शन का जो पूर्व भव का चरित्र बताया गया है उससे अपने चरित्र को सुधारने की शिक्षा लेनी चाहिए। सुदर्शन के परिचय के साथ उसके मा बाप का भी

परिचय दिया गया सो तो अच्छी बात है मगर उसके पूर्व भव का परिचय देना आज कल के तरूण युवकों को अच्छा नहीं लगता। आज के बहुत से युवकों को पूर्व भव की बातों पर विश्वास नहीं बैठता। उन्हें विश्वास हो या न हो किन्तु यह बात निश्चित है कि पूर्व भव है, पुनर्जन्म है। शास्त्रीय पुरानों के साथ २ पुनर्भव की पुष्टि के लिए कई प्रत्यक्ष प्रमाण भी मिले है। कई बचों को जातिस्मरण ज्ञान हुआ है और उन्होंने अपने पूर्व जन्म के हालात बताये हैं।

चम्पा नगरी में जिनदास नाम का एक सेठ रहता था। उसकी पत्नि का नाम अर्हद्दासी था। दोनों की जोडी कैसी थी इसका वर्णन है मगर अभी कहने का समय नहीं है। जहां एक अंग में धर्म हो और दूसरे में न हो यहा जीवन अधुरा रहता है। आपके दोनों हाथ हैं और इनकी सहायता से आप सब काम कर सकते है फिर भी आपने विवाह किया है दो हाथ के चार हाथ बनाये है। विवाह करके आप चतुर्भुज--भगवान बन गये है चतुर्भुज भगवान को भी कहते है। अर्थात् विवाह करके आदमी अपूर्ण से पूर्ण बन जाता है। गृहस्थ जीवन विवाह करने से पूर्ण बनता है। यदि कोई विवाह करके चतुर्भुज के बजाय चतुष्पद बन जाय तो कैसा रहे। बहुत से लोग विवाह करके जो काम अकेले से शक्य न था वह पत्नि की सहायता से करके भगवान् में लीन हो जाओ यह चतुर्भुज बनना है और यदि ऐसा न करके ससार के विषय विकार या भोगविलास में ही फसे रहो तो चतुष्पद बन जायगे।

जिनदास और अर्हद्दासी धर्म के काम इस प्रकार करते थे मानों ईश्वर के अवतार हों। एक दिन अर्हद्दासी के मन में विचार हुआ कि आज हम दोनों इस घर में धर्म करने वाले हैं मगर भविष्य में हमारे पश्चात् कौन धर्म करेगा। हमारे धर्म का उत्तराधिकारी कोई होना चाहिए। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में धर्म की लगनी और श्रद्धा अधिक होती है। अर्हद्दासी इस चिन्ता में डूब गई। चिन्तावस्था में सब कुछ बुरा लगने लगता है। बाहर से सेठ आये और सेठानी से पूछा कि आज उदास क्यों बैठी हो। सेठानी ने चिन्ता का कारण व्यक्त नहीं किया। अपने भावों को छिपाये रही। सेठ उसकी चिन्ता मिटाने और प्रसन्न करने के लिए उसे बाग बगीचे में लेगये, खेल तमाशे दिखाये किन्तु कोई परिणाम न निकला। सेठानी की चिन्ता न मिटी।

बुद्धिमान लोगों का कहना है कि स्त्री को मुर्झाई हुई न रखना चाहिए। स्त्री को मुर्झाई हुई रखना, अपने अग को ही मुर्झित रखना है। सेठ ने सेठानी को राजी रखने के

अनेक प्रयत्न किए मगर सब व्यर्थ गये। अत में सेठ ने सोचा कि दर्द कुछ और है और इलाज कुछ और हो रहा है। सेठानी से चिन्ता का कारण पूछा। सेठानी से अब रहा न गया। विचार करने लगी कि मेरे पति मेरे सुख दुःख के साथी है अतः इनके सामने अपनी चिन्ता प्रकट करना चाहिए। सेठानी ने कहा मुझे कपडे लत्ते और गहने आभूषण की चिन्ता नही है। जो स्त्रिया ऐसी चिन्ता करती हैं वे जीवन का अर्थ नहीं समझतीं। मुझे तो यह चिन्ता है कि आपके जैसे योग्य पति के होते हुए भी हमारे घर में हमारा उत्तराधिकारी घर का रख वाला नही है। मैं अपना कर्त्तव्य पूरा न कर सकी। कुल दीपक के बिना सर्वत्र अधेरा है।

सेठानी का कथन सुनकर सेठ विचार करने लगे कि मै जिन भक्त हूँ। सतान प्राप्ति के लिए नहीं करने योग्य काम में नहीं कर सकता। योग्य उपाय करना बुद्धिमानों का काम है। सेठानी से कहा—प्रिये! हम लोग जिनेश्वर देव के भक्त हैं। पुत्र होना न होना हमारे हाथ की बात नहीं है। यह बात भाग्य के अधीन है। ऐसी चिन्ता करना अपने नाम को लजाना है। अतः चिन्ता छोड़ कर अपनी सपत्ति दान आदि कामों में लगाओ जिससे सतान विषयक अन्तराय टूटनी होगी तो टूट जायेगी। हमारा धन किसी अयोग्य हाथ में न चला जाय अतः अपने हाथों से ही पात्र कुपात्र का ख्याल रखकर दान दें। सेठ ने सठानी की चिन्ता मिटादी और दोनों पहले की अपेक्षा अधिक धर्म करणी करने लगे। इनके घर में रहने वाला सुभगदास ही भावी सुदर्शन है। दास क्या करके सुदर्शन बनता है इसका विचार आगे है।

राजकोट
१२—७—३६ का
व्याख्यान

श्रेणिक को धर्म प्राप्ति



' श्री महावीर नमूं वरनाणी............।"



यह भगवान् महावीर स्वामी चोवीसवें तीर्थङ्कर की प्रार्थना है। एक एक तार को सुलझाते सुलझाते सारा गुच्छा सुलझ जाता है और एक एक के उलझते सारी वस्तु उलझ जाती है। यह आत्मा इस ससार में उलझ रहा है। इस को सुलझाने तथा सत्य सरल बनाने का मार्ग परमात्मा की प्रार्थना करना है। भक्ति मार्ग आत्मा की उलझन मिटा देता है।

अब हम यह देखें कि आत्मा की उलझन कौन सी है। आत्मा द्रव्य को भूलकर पर्याय की कद्र करता है यही इस की उलझन है। आत्मा घाट तो देखाता है मगर जिस सोनेका वह घाट बना है उसको नहीं देखता। सोने की कद्र नहीं करता सोने के बने हुए विविध प्रकार के घाट (रचनाविशेष) की कद्र करता है। ससार व्यवहार में भी यदि कोई सोने को न देखकर केवल घाट को ही देखे और बनावट के आधार से ही क्रय विक्रय

करले तो उसका दिवाला निकल जायगा। चतुरव्यक्ति घाटकी तरफ गौणरूप से देखेगा। उनकी नजर सोने की तरफ होगी कि यह सोना कितना शुद्ध है। आप लोग भी दागीने खरीदते वक्त केवल डिजाइन (घाट) की तरफ नहीं देखेंगे किन्तु सोनेके टञ्च देखोगे। द्रव्य की तरफ नजर रखोगे। वस्तु का मूल्य द्रव्य के आधार पर होता है। बनावट मुख्य आधार नही होती। जबकि बनावट भी रखनी पडती है। बनावट का खयाल न रखने से घर की श्रीमती जी के नापसन्द करने पर वापस बाजार का चक्कर लगाना पड़ता है।

ज्यों कञ्चन तिहुं काल कहिजे, भूषण नाम अनेक।
त्यों जग जीव चराचर योनि, है चेतन, गुण एक॥

ज्ञानी कहते हैं केवल पर्याय की तरफ ही मत खयाल रखो मगर द्रव्य को भी देखो। कहा है।

जिस प्रकार सुवर्ण हर समय सुवर्ण ही कहा जाता है चाहे उसके बने आभूषणों के कितने ही नाम क्यों न रख लिए गये हों। उसी प्रकार चाहे जिस योनि का जीव हो किन्तु आत्मा सब में समान है। जीव की पर्याय कोई भी हो, चाहे देव हो, मनुष्य हो तिर्यञ्च हो, नारक हो, सब में आत्मा समान है। आपने देव और नारक जीवों को आखों से नहीं देखा है। शास्त्र में सुने हैं। किन्तु मनुष्य और तिर्यञ्च जीवों को प्रत्यक्ष देख रहे हो। ये सब पर्याय हैं। आत्मा की यही भूक है कि वह इन पर्यायों को देखता है मगर इन में जो चेतन द्रव्य रहा हुआ है उसकी तरफ लक्ष्य नहीं देता। घाट पर मोहने वाली स्त्री जैसे पीतळ के दागिने खरीद कर अपनी भूक पर पछताती है उसी प्रकार पर्याय का खयाल करने वाला द्रव्य की कद्र नहीं करके पछताता है।

आत्मा इस प्रकार की भूक न करे अतः ज्ञानियों ने अहिंसा व्रत बतलाया है। सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि व्रत इसी के लिए है। अहिंसा व्रत में यही बात है कि अपनी आत्मा के समान सब जीवों को मानो। '**अप्पसमं मनिज्जा छप्पि कायं**' छहों काया के जीवों को अपनी आत्मा के समान मानो। पर्याय के कारण भेद मत करो। जब तक अपनी आत्मा के समान सब जीवों को नही माना जाता तब तक अहिंसा व्रत का पालन नहीं हो सकता। जिसे पूर्ण अहिंसा का पालन करना होगा उसे पर्याय की तरफ

कतई खयाल न रखकर केवल शुद्ध चेतन रूप द्रव्य का खयाल रखना होगा। भगवद् गीता में भी कहा है कि—

'ब्राह्मणे गवि हस्तिनि, शुनि चैव श्वपाकेच पण्डिता' समदर्शिनः' पंडित अर्थात् ज्ञानी, ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ता, और चण्डाल सब पर समान नज़र रखते है। सब में शुद्ध चेतन द्रव्य को देखते हैं। उनकी विविध प्रकार की शुद्ध अशुद्ध खोलियों का खयाल नहीं करते। सब जीवों की समान रूप से सेवा करते है। पर्याय की तरफ देखने की आदत को मिटाने से आत्मा परमात्मा बन जायगी। जो भगवान् महावीर को मानता है उसे मनुष्य, स्त्री बालक, वृद्ध, रोगी, नीरोगी, पशु-पक्षी, साप, बिच्छु, कीडी मकोडी आदि योनियों का खयाल किये बिना सब की समान रूप से रक्षा करनी चाहिए। जो ऐसा नहीं मानता वह भगवान् महावीर को भी नही मानता। महावीर को मानना और उनकी वाणि को न मानना, यह नही हो सकता। भगवान् स्वय कहते हैं कि चाहे कोई व्यक्ति मेरा नाम न ले किन्तु वह यदि मेरी वाणी को मानता है, मेरे कथनानुसार अपनी आत्मा के समान सब जीवों को मानता है तो वह मुझे प्रिय है। वह मेरा ही है। जो छः काय के जीवों को आत्मतुल्य नही मानता। वह मेरा नाम लेने का भी अधिकारी नहीं है।

आप से अधिक न बन सके तो कम से कम छहो काय के जीवों को खुद की आत्मा के समान मानिये। पर्याय दृष्टि गौण करके द्रव्य द्राष्टि को मुख्य बनाइये। सब का आत्मा समान है और आत्मा तथा शरीर अलग २ है। गीता मे श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

जिस प्रकार मनुष्य पुराने कपड़े उतार कर नये पहन लेता है उसी प्रकार आत्मा पुराने शरीर को छोड कर नया शरीर धारण करता है। शरीर रूप पर्याय बदलता रहता है मगर आत्मा सब अवस्थाओं में कायम रहता है। कपड़े बदल लेने मात्र से मनुष्य नहीं बदल जाता। इसी प्रकार शरीर के बदल जाने से आत्मा नहीं बदल जाती। नाटक में पुरुष स्त्री का साग बनाताहै और स्त्री पुरुषका किन्तु साग बदल लेने से न तो पुरुष स्त्री बन जाता है और न स्त्री पुरुष ही। साधारण मति वाले लोग साग बदल जाने से भ्रम में पड जाते हैं। किन्तु समझदार सूत्र धार ऐसे भ्रम में नहीं फसता। सूत्र धार स्त्री वेष धारी पुरुष को उसके मूल नाम से ही पुकारता है। पोशाक के कारण उसकी असलियत को नहीं भुलाता। इसी प्रकार ज्ञानी जन पर्याय की तरफ न देखकर उसके भीतर रहे

को देखते हैं। पुट्ठा बदल लेने से पुस्तक नहीं बदलती। '**एगे आया**' के सिद्धान्तानुसार सब आत्माएं समान हैं। अन्तर केवल पर्यायों और शरीरों का है। हमारी भूल का मूल कारण यही है कि शरीरों के अनित्य होने से हम आत्मा को भी अनित्य मानने लग जाते हैं। आत्मा नित्य है। शरीर अनित्य है। आत्मा को नित्य मानने पर पर्यायें अपने आप जुदा मालूम होंगी और अनित्य भी मालूम होंगी।

उत्तराध्ययन के बीसवें अध्ययन में यही बात बताई गई है। कल कहा था कि राजा श्रेणिक मगध देश का अधिपति था और प्रभूत रत्नों का स्वामी था। आगे कहा है कि:—

पभूयरयणोराया सेणिओ मगहाहिवा।
विहार जत्त निज्जाओ मंडिकुच्छिंसि चेइये॥ २॥
नाणा दुम लयाइण्णं नाणा पक्खि निसेवियं।
नाणा कुसुम संच्छिन्नं उज्जाणं नंदणोवनं॥ ३॥

महाराजा श्रेणिक को सब रत्न मिले है मगर एक समकित रूप रत्न नहीं मिला है। तत्व ज्ञान नहीं हुआ है। वे इसकी खोज में है।

आपलोग समकितरत्नको बडा मानते हो या मिट्टीके बने रत्न को। एकपैसा खो जानेपर आपको जितनीचिन्ता होतीहै उतनी क्या समकितरत्नके खो जानेपर होतीहै। 'आपलोग हमगृहस्थ हैं' कहकर गिरवेके स्थानपर चलेभी चले जातेहैं। यहबात प्रत्यक्ष जानते हुए कि अमुकस्थान पर निरादरहोंगेहै,आप लोग अर्थ लाभ या कीर्ति लाभ की कामना से चले जाते है। क्या कामदेव श्रावक गृहस्थ नहीं था? वह भी गृहस्थ ही था किन्तु उसके मन में समकित की कीमत इन रत्नों की अपेक्षा अधिक थी। आपके एक खीसे में रत्न हो और एक में कोडी। आप किस खीसे की अधिक सभाल करेंगे? यदि कोई कोडी वाले खीसे की अधिक सभाल करे तो आप उसे महा मूर्ख समझोगे। आप लोगों में यदि यह समझ आजाय कि समकित के रहते धन धान्यादि रहे तो भले रहे किन्तु समकित के जाते इनका रहना बेकार है, तो कितना अच्छा हो। धन धान्यादि और समकित दोनों में से यदि किसी एक के जाने का समय आवे तो धन धान्यादि को जाने देना चाहिये मगर समकित को न जाने देना चाहिये। शास्त्र में कहा है — "**सद्दा परम दुल्लहा**" श्रद्धा परम दुर्लभ। दुःख इस बात का है कि ऐसे

समय पर कमजोरी आ जाती है और मनुष्य बाह्य संपत्ति की रक्षा का विशेष ध्यान रखता है। कामदेव श्रावक में यही विशेषता थी कि वह शरीर तक के जाने पर भी अपने धर्म से न डिगा। अडोल रहा।

श्रेणिक राजा को समकित रत्न मिल गया था अतः शास्त्र में उसकी भावी गति का वर्णन है। यदि समकित प्राप्त न होता तो न मालूम क्या गति लिखी जाती। और लिखी जाती या न लिखी जाती इसका भी पता नहीं। क्योंकि शास्त्रकार धर्म मार्ग पर आये हुए या आने वालों का ही शास्त्र में जिक्र किया करते हैं। प्रसंग से दूसरों का वर्णन् आये यह दूसरी बात है। श्रेणिक को केवल समकित रत्न ही मिला था। श्रावकपन प्राप्त नहीं हुआ फिर भी वह भविष्य में पद्मनाभ नामक तीर्थंकर होगा। आपलोग धर्म क्रियाएं करते हैं किन्तु यदि दृढ़ श्रद्धा विश्वास के साथ करो तो मोक्ष के लिए उपयोगी होगी। बिना समकित या श्रद्धा के की हुई क्रियाए ऐसी है जैसी कि बिना अंक वाली बिंदिया। बिना अंक वाली बिंदी किस काम की। क्रोध, मान, और लोभ को हल्का बनाकर अन्तरात्मा में जागृति लाओ और धर्म क्रियाए करो तो आनन्द ही आनन्द है।

श्रेणिक राजा यद्यपि धर्म क्रियाएं न कर सका मगर वह तत्व का जिज्ञासु था उसकी रानी चेलना राजा चेडा की पुत्री थी, चेडा राजा के सात पुत्रिया थी। सातों ही सतिया हुई है। चेलना के रग रग में धर्म भावना भरी हुई थी। चेलना इस बात की फिक्र में रहती थी कि मेरे पति को कब और किस प्रकार समकित रत्न प्राप्त हो। कब मैं समकित धारी धर्मात्मा राजा की रानी कहाऊं। इधर श्रेणिक राजा यह सोचा करता था कि मेरी रानी यह धर्म का ढोंग छोड कर कब मेरे साथ मनमाने मौज मजा उड़ाये। दोनों की अलग अलग इच्छाए थी। कभी कभी श्रेणिक की तरफ से चेलना के धर्म की मीठी परीक्षा भी हुआ करती थी। जो धर्म पर दृढ रहता है वह अपना सिर तक दे देता है मगर धर्म को नहीं छोडता। दोनों में धर्म सम्बन्धी चर्चा भी हुआ करती थी किन्तु वह चर्चा कभी क्लेश या मनमुटाव का रूप धारण न करती। दूसरे पर अपने धर्म का प्रभाव डालने के लिये बहुत नम्रता और सरलता की जरुरत होती है झगडे टंटे से दूसरे पर हमारे धर्म का प्रभाव न पडेगा। हमारे आचरण ही ऐसे होने चाहिये कि जिन्हे देख कर सामने वाला हमारे धर्म को अपना ले। हमारे आचरण धर्म विरुद्ध हो और हम धर्म की बातें बघारते रहे तो कोई भी हमारे फन्द में न फंसेगा। हमारा चारित्र ही जीता जागता धर्म का नमूना होना चाहिए।

चेलना के धर्म की परीक्षा करते करते एक बार श्रेणिक जिद पर चढ गया । एक महात्मा को देखकर चेलना से कहने लगा । देखो तुम्हारे गुरु कैसे है जो नीची नजर रखकर चलते हैं । कोई मार पीट दे तो भी कुछ नही बोलते । मेरे राज्य में यह कानून है कि कोई किसी को मार पीट दे तो उसे सजा दी जाती है किन्तु ये तुम्हारे धर्म गुरु तो फरियाद ही नही करते । गुरु के कायर होने से उसके अनुयायी में भी कायरता आती है । हमारे गुरु तो वीर होने चाहिए । ढाल तलवार बांधकर घोडे पर सवार होने वाले बहादुर व्यक्ति हमारे गुरु होने चाहिए ।

चेलना ने उत्तर दिया कि मेरे गुरु कायर नही है किन्तु महान् वीर है । मै कायर की चेली नही हू । वीर की चेली हू । मेरे गुरु की वीरता के सामने आप जैसे सौ वीर भी नही टिक सकते । आपके बड़े २ सेनाधिपतियों को भी काम देव जीत लेता है किन्तु हमारे गुरु ने इस काम देव को भी अपने काबू में कर रखा है । जो लाखों को जीतने वाला है उसको जीतने में कितनी वीरता की आवश्यकता होती है, इसका जरा विचार कीजिये । इनके सामने अप्सरा भी आजाय तो ये विचलित नहीं होते । यह बात तो एक बच्चा भी समझ सकता है कि जो लाखों को जीतने वाले को भी जीत लेता है वह कितना बहादुर होगा ।

श्रेणिक राजा ने सोचा कि यह ऐसे मानने वाली नही है । इसके गुरु के पास एक वैश्या को भेजू और वह उन्हे भ्रष्ट कर दे तब यह मानेगी । चेलना यह बात समझ गई कि इस वक्त धर्म की कठिन परीक्षा होने वाली है । वह परमात्मा से प्रार्थना करने लगी कि हे प्रभो ! मेरी लाज तेरे हाथ में है । प्रार्थना कर के वह ध्यान में बैठ गई ।

राजा ने वैश्या को बुलाकर हुक्म दिया कि उस साधु के स्थान पर जाकर उसे आचरण भ्रष्ट कर आ । तुझे मुंह मागा इनाम दिया जायगा । वैश्या बन ठन कर साथ में कामोद्दीपक सामग्री लेकर साधु के स्थान पर गई । साधु ने स्त्री को अपने धर्म स्थान पर देख कर कहा कि खबरदार । यहा रात के समय स्त्रिया नहीं आ सकती । ठहर भी नहीं सकती । यह गृहस्थ का घर नहीं है । धर्म स्थान है ।

वैश्या ने उत्तर दिया, महाराज आपकी बात वह मान सकती है जो आपकी भक्त हो । मैं तो किसी और ही मतलब से आई हूं । मैं आपको आनन्द देने आई हूं । यह

कह कर वैश्या साधु के स्थान में घुस गई । साधु समझ गये कि यह मुझे भ्रष्ट करने आई है । यद्यपि मैं अपने शील धर्म पर दृढ़ हूँ तथापि लोकोपवाद का खयाल रखना जरुरी है । बाहर जाकर कहीं यह यों न कह दे कि मै साधु को भ्रष्ट कर आई हूँ । कथा में यह भी कहा है कि चेलना रानी ने इस बात की परीक्षा कर ली थी कि वह साधु लब्धिधारी है । उसने सब से कह रखा था कि कोई सच्चा साधु यहां न आये । ये साधु यहा आये थे अतः उसे विश्वास था कि वह लब्धि धारी हैं ।

महात्मा ने अपने प्रभाव से विकराल रूप धारण कर लिया । यह देख कर वैश्या घबडाई । कहने लगी, महाराज क्षमा करो । मैं अपनी इच्छा से नहीं आई हूँ । मुझे तो श्रेणिक राजा ने भेजा है । मैं अभी यहा से भाग जाती मगर बाहर ताला लगा है अत विवशता है आप तो चीटी पर भी दया करने वाले हो । मुझ पर दया करो ।

उन महात्मा ने अपना वेष दूसरा ही बना लिया था । शास्त्र में कारण वश वेष बदलने का लिखा है । साधु लिंग को बदलना अपवाद मार्ग में है । चारित्र की रक्षा तो उस समय भी की जाती है ।

इधर यह काण्ड हुआ, उधर श्रेणिक ने चेलना से कहा कि जिन गुरु की प्रशसा के तुम पुल बाध रही थी जरा मेरे साथ चलकर उनके हाल तो देखो । वे एक वैश्या को लिये बैठे है । रानी ने कहा बिना आखो से देखे मै इस बात को नहीं मान सकती । अगर सचमुच मेरे गुरु वैश्या को लिये बैठे मिलेंगे तो मैं उन्हें गुरु नहीं मानूगी । मैं सत्य की उपासिका हू । राजा चेलना को लेकर साधु के स्थान पर आया और किवाड खोले । किवाड खुलते ही वह वैश्या इस प्रकार भगी जैसे पिंजडे का द्वार खुलने पर पक्षी भागता है । भागते हुए वह वैश्या कह गई कि महाराज ! आप मुझ से दूसरे काम ले सकते हैं मगर ऐसे तप तेज धारी महात्मा के पास कभी मत भेजियेगा । मै इन की दया के प्रभाव से ही अपने प्राण बचा पाई हू ।

रानी ने यह बात सुनकर राजा श्रेणिक से कहा कि महाराज यह तो आप की करतूत मालूम पडती है । मै तो पहले ही कह चुकी हूँ कि मेरे धर्म गुरु ऐसा कभी नहीं कर सकते । चालिये उनके दर्शन करें । अन्दर सुविहित जैन वेषधारी साधु न थे किन्तु दूसरा वेष पहिने हुए साधु थे । रानी ने कहा मैं द्रव्य भाव दोनो दृष्टि से जो साधु होता है उसे

सच्चासाधु मानती हू । ये रजोहरण मुखवास्त्रिका धारी नही है । अतः मेरे धर्म गुरु नहीं है। राजा बड़ा लज्जित हुआ । मन में विचारकिया कि रानी ठीककहती है । अब मुझे इस धर्मके तत्व जानने चाहिए। यहीं से राजा को जैन धर्मके तत्वो को जाननेकी रुचि जागृत हुई ।

यद्यपि राजा श्रेणिक राज महलों में रहता था फिर भी जगल की खुशनुमा हवा लेने के लिए जाया करता था । वह यह बात समझता था कि ताजा हवा के बिना ताजा जीवन नहीं बनता । शास्त्र में विहार यात्रा शब्द का प्रयोग किया गया है । जैसी यात्रा होती है वैसा ही उसका फल भी होता है । धर्म यात्रा, धन यात्रा, शरीर यात्रा आदि जुदी जुदी यात्राओं का फल जुदा २ है । धर्म की यात्रा में धर्म की और धन की यात्रा में धन की रक्षा की जाती है । इसी प्रकार शरीर यात्रा का अर्थ शरीर की रक्षा करना है ।

आज शरीर यात्रा के नाम से ऐसे काम किये जाते हैं कि जिनसे शरीर अधिक बिगड़ता है । आप लोग बाहर घूमने जाते हो मगर आपकी यह यात्रा कितनी निकम्मी और व्यर्थ होती है इसका जरा विचार करो । आज शहरों में बिना पाखाने के कोई मकान नजर नहीं आता जब कि पुराने जमाने में अच्छे अच्छे घरों में भी पाखाने न होते थे । शक्तिकी कमीके कारण मैं यहां गोचरी के लिए नहीं निकला हू मगर दिल्ली में मैं गोचरी के लिए घूमा करता था । जहा कहीं भी गया पहले प्रवेश करते ही पाखाने के दर्शन होते थे । बम्बई, कलकत्ता की इस विषय में क्या दशा होगी कहा नहीं जा सकता । एक मारवाडी भाई को यह गाते सुना है कि—

कलकत्ता नहीं जाना यारों, कलकत्ता नहीं जाना ।
जहर खाय मर जाना यारों, कलकत्ता नहीं जाना ॥
कल का आटा, नलका पानी, चर्बी का घी खाना ॥ यारों कल- ॥

यह भाई कलकत्ते जाने का इतना विरोधी क्यों बन गया इसका कारण सोचिये । आज वेजिटेबल घी चला है । गाय रखने में कई लोग पाप मानते हैं मगर वेजिटेबल घी खाने में पाप नहीं मानते । जीवन यात्रा को लोग भूल गये हैं । जीवन नष्ट करने की सामग्री बढ़ रही है ।

राजा श्रेणिक जीवन यात्रा के कामों को नहीं भूला था अत: वह विहार यात्रा के लिए निकला है। बहुत से लोग कहते है, हम शास्त्र क्या सुने उसमें तो तप करके शरीर सुखाने की बातें ही लिखी हैं। मगर यह बात नहीं है। शास्त्रों में इह लोक और परलोक तथा शारीरिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार की उन्नति की बातें हैं। किसी शास्त्र विशारद गुरु से शास्त्र सुने जाय तब उनके कान खुलें। यद्यपि शास्त्रों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय मुक्ति है। तथापि मुक्ति के लिए उपयोगी जिन जिन बातों की आवश्यकता होती है उनका विशद वर्णन शास्त्रों में है। आप लोग आम के फल खाते हो किन्तु फल बिना वृक्ष के नहीं होता। फल के लिए वृक्ष, डाली, पत्तों आदि पर भी ध्यान देना होगा। संवर और निर्जरा से ही आत्मा का कल्याण होता है यह बात ठीक है किन्तु इन से सम्बन्धित बातों पर भी शास्त्रकारों ने विचार किया है। शरीर धर्म करणी करने में मुख्य साधन है और इसीलिए राजा श्रेणिक विहार यात्रा घूमनेके लिये निकला है। ग्राम और शहरके भीतरी भाग की अपेक्षा उनके बाहर निकलने पर हवा बदल जाती है। ग्राम शहर की गन्दगी बाहर नहीं होती। शास्त्र में हवा के सात लाख भेद बताये गये हैं। प्रत्येक भेद के साथ प्रकृति का जुदा जुदा सम्बन्ध है। समुद्री हवा और द्वीपकी हवा का गुण अलग अलग है। इसी प्रकार पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व, अधोदिशा की हवाओं के गुण धर्म जुदा जुदा हैं और मनुष्य पशु पक्षियों पर उनका असर भी जुदा जुदा होता है। जो वायु विशारद होता है वह हवा का रुख देखकर भविष्य की बातें कह सकता है। बिना सोचे यह कभी न कह डालना चाहिये कि शास्त्रों में तो केवल मुक्ति का ही वर्णन है।

श्रेणिक राजा नगर से निकल कर विहार यात्रा के लिए मंडि कुक्षि नामक बाग में आया। शास्त्र के कथनानुसार वह बाग नन्दन वन के समान था। शास्त्र में उस के वृक्ष फल, फूल, पत्तों आदि का वर्णन है जो यथावसर बताया जायगा।

सुदर्शन—चरित्र

दास सुभग बालक अति सुन्दर गौएं चरावन हार।
सेठ प्रेमसे रखे नेम से, करे सालसंभाल ॥ धन ॥ ६ ॥

एक दिन जंगल में मुनि देखे, तन मन उपज्यो प्यार ।
खड़ा सामने ध्यान मुनि में, बिसर गया संसार रे । धन ॥ ७ ॥

कल बताया गया था कि सेठानी को पुत्र की चाहना थी । किन्तु पुत्र प्राप्ति के र उन्होंने अपना धर्म कर्म नही छोड़ा था । धर्म पर कलक लगे ऐसे काम नहीं किये । रणक श्रावक को धन की जरूरत थी अत' जहाज लेकर विदेश गया था । समुद्र में एक ा ने आकर उसे कहा कि अपना धर्म छोड दे अन्यथा जहाज डूबो दूगा । अरणक ने हाज डूब जाना मजूर किया मगर धर्म न छोडा । पहले के श्रावक धर्म पर बहुत ढ रहते थे ।

जिनदास सेठ के यहा गौएं भी थी । वह उन की रक्षा और पालन, पोषण, पने शरीर के रक्षण पोषण की तरह करता था । गायों के लिए प्राचीन भारतीयों की सी दृष्टि थी यह बात सब जानते हैं । कृष्ण महापुरुष थे, यह बात सबको मजूर है । कृष्ण यं हाथ में डण्डा लेकर गायें चराया करते थे । गायों का महत्त्व समझने के लिए यह त बड़े महत्त्व की है ।

श्री उपासक दशाग सूत्र में वर्णित दशों श्रावकों के यहा हजारों की तादादमें गायें ीं । उनका जीवन गौओं की सहायता के बिना नही चल सकता था । विवाह में भी दान दिया जाताथा । गौ के बिना जीवन पवित्र नही रह सकता । अमेरिका निवासी लोग ी की उपयोगिता समझ गये हैं । गो शब्द का अर्थ पृथ्वी भी होता है । पृथ्वी जैसे सब ा आधार है वैसे गाय भी मनुष्य जीवन का आधार है यह बात ध्यान में रख कर गाय ा नाम भी गो रखा गया है । पुष्टि कारक घी और दूध दही गाय से ही मिलता है । ाज हम कितने पतित हो गये है कि ऐसे महान् उपकारक पशु की रक्षा करने में भी मसमर्थ बन गये हैं ।

जिनदास ने अपनी गायों की देखभाल करने के लिए सुभग नामक ऐक गवली न को रखा । सुभग को जिनदास आत्म तुल्य मानता था । सुभग प्रतिदिन गायोंको जगल ले जाता और सध्या को वापस ले आया करता था ।

आज गायों के लिए गोचर भूमि की चिन्ता कौन करें। वकील लोग अन्य कामों के लिए तय्यार हो जाते है मगर इस काम के लिये कौन तय्यार हो। वकील लोग गाये रखते ही नहीं अतः उन्हे क्यों चिन्ता होने लगे। जो लोग गाये रखते है। उन्हे फरियाद नहीं करना आता और जिन्हे अपने हक्को की रक्षा के लिये फरियाद करना आता है वे गाये ही नहीं रखते। आज गोचर भूमि की बहुत तगी हो रही है और इससे गोधन कमजोर हो रहा है। कुछ समय पहिले तक जगल प्रजा की चीज माना जाता था। प्रजा को उसमें पशु चराने और लकडी आदि लाने का अधिकार था। अबतो जगलात कानून लागु हो गया है अत: गायों को खडी रहने के लिये भी जगह नही है।

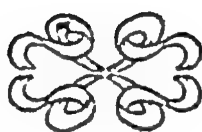
सेठ जिनदास सुभग के खाने--पीने ओढने बिछाने आदि का खयाल रखते थे। उसे शीतताप और वर्षा से बचाने का भी वे प्रबन्ध करते थे। मुसलमानी मजहब में कहा गया है कि जिस गृहस्थ के घर में मनुष्य या पशु--पक्षी दुःखी हों वह गृहस्थ पापी है। अपने आश्रित प्राणियों के सुख दुःख का खयाल रखना परम कर्त्तव्य है। आजकल पोशाक, फर्नीचर, मोटर और घोड़ागाडी आदि की जितनी सम्भाल रखी जाती है उतनी अपने आश्रित मनुष्यों और पशुओं की नहीं रखी जाती। आश्रितजनों को क्या क्या कष्ट है, उनके कुटुम्ब का भरण पोषण ठीक तरह से होता है या नहीं आदि बातों का ध्यान यदि मालिक लोग रखा करें तो आपसी सम्बन्ध मीठा हो जाय।

प्रेम के जरिये किसी से काम लेना अच्छा तरीका है। मारपीट कर जबरदस्ती काम लेना बेहुदा तरीका है। मारपीट कर किसी को नही सुधारा जा सकता। खुद के लडके को भी मारपीट कर नही सुधारा जा सकता, यह बात अब लोग समझने लग गये है। पढ़ाने लिखाने के लिए लडकों को मारना पीटना अब अच्छा नहीं माना जाता। स्कूलों और पाठशालाओं में इसकी मुमानियत होती जा रही है।

पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज कहा करते थे कि मनुष्य को न तो पानी की तरह अति नम्र होना चाहिये और न पत्थर के समान कठोर ही। किन्तु बिकानेरी मिश्री के कुजे के समान होना चाहिये। मिश्री को यदि कोई सिर में मारे तो उसे चोट लगेगी और खून आ जायगा। लेकिन यदि कोई मिश्री को मुख में रखेगा तो वह पानी-पानी होकर मिठास देगी। मनुष्य को भी व्यवहार मे ऐसा ही बनना चाहिए।

जिनदास, सुभग के साथ इसी प्रकार का वर्ताव करता था। वह उसे सुधारने का प्रयत्न करता था। सुभग भी उसे अपने पिता के समान मानता था और कभी कभी जिनदास को धर्म क्रियाएँ करते हुए देखा करता था। वह अभी धर्म के समीप नहीं आया है। एक दिन वह जंगल में गायें चरा रहा था कि वहां एक महात्मा को वृक्ष के नीचे ध्यान लगा कर बैठे हुए देखा। महात्मा और सुभग का संगम किस प्रकार हुआ यह बात अवसर आने पर बताई जायगी। अभी तो यह ध्यान में रखा जाय कि महात्माओं के दर्शन से कैसा चमत्कारिक असर होता है। मनुष्य का कुछ का कुछ बन जाता है।

राजकोट
१४—७—३६ का
व्याख्यान



वृक्षों की उपयोगिता



"श्री आदिश्वर स्वामी हो, प्रणमूं सिरनामी तुम भणी.........."



यह प्रार्थना प्रथम तीर्थ कर भगवान् ऋषभदेव की है। प्रार्थना करने का अभ्यास कम जादा मात्रा में ससार के सब प्राणियों को है। प्रभु प्रार्थना, ईश प्रार्थना, पारमार्थिक प्रार्थना, सब प्रार्थनाओं में उत्कृष्ट प्रार्थना है। यदि प्रभु प्रार्थना सबसे उत्कृष्ट वस्तु है तो उसमें सबसे उत्कृष्ट तत्व का विचार होना चाहिये। हर एक मनुष्य किसी न किसी वस्तु का ग्राहक जरूर होता है किन्तु जो रत्न का ग्राहक होता है वह उत्कृष्ट माना जाता है। परमात्मा की प्रार्थना करने वाले के भाव भी उच्च होने चाहिए। हम लोग इस बातपर विचार करें कि कैसे भाव रख कर ईश प्रार्थना करें। क्या इच्छा लेकर प्रार्थना करें। इच्छायें भी बदलती रहती हैं। अत. निरीह और निर्विकार होकर प्रार्थना करनी चाहिए। पहले अशुभ इच्छाओं का त्याग करके शुभ इच्छाये पैदा करना चाहिए। बादमें धीरे धीरे शुभ इच्छाओं को भी

मिटाकर निरीह-इच्छा रहित शुद्ध इच्छा वाले बनने की कोशिश करना चाहिए । अशुभ से शुभ में और शुभ से शुद्ध में प्रवेश करना चाहिए । शुद्ध इच्छा से प्रार्थना करने वाला व्यक्ति परमात्मा के निकट पहुँचता है ।

भगवान् आदिनाथ की प्रार्थना अनेक कला से की गई है । पानी का किसी भी प्रकार सुधार किया जाय । वह अनादि कालीन ही रहेगा । इसी प्रकार प्रार्थना, किसी भी कला से की जाय वह नई नहीं कही जा सकती । यह बात अलग है कि प्रार्थना करने वालों कि रुचि भिन्न हो और इससे प्रार्थना की भाषा में भी भिन्नता हो । पहले मागधी में प्रार्थना की जाती थी । मागधी से फिर सस्कृत में प्रार्थना होने लगी और अब हिन्दी भाषा में प्रार्थना हो रही है । रुचि के अनुसार भावों और भाषा में परिवर्तन अवश्य हुआ है मगर प्रार्थना पुरातन ही है प्रार्थना में कहा गया है ।

मो पर मेहर करिजे हो, मेटीजे चिन्ता मन तणी ।
मारा काटो पुराकृत पाप ॥

हे प्रभो ! मैं अनेक लोगों की शरण में गया मगर मेरे मन की चिन्ता नहीं मिटी । तथा मेरी आशा भी पूरी नहीं हुई । मेरे मन की चिन्ता कायम है अतः मैं तेरी शरण आया हू । तू मेरी आशा पूर और चिन्ता चूर । भगवान् से आशा पूरी करने की प्रार्थना की जा रही है किन्तु क्या आशा पूरी कराना है यह भी समझलें । आप लोग साधुओं के पास जाते हैं । कौन-सी आशा पूरी कराने के लिए जाते है ? क्या धन दौलत, स्त्री, पुत्र कीर्ति आदि की आशा लेकर जाते हैं । ऐसी आशा तो साधुओं के यहा पूरी नहीं होती अतः ऐसी आशा से उनके पास जाना वृथा है ।

परमात्मा ससार के वातावरण से परे है अतः उससे सांसारिक कामना पूरी कराने की प्रार्थना करना व्यर्थ है । परमात्मा से यह प्रार्थना करनी चाहिए कि हे प्रभो ! हमें आशा रहित बनादे । हमारी कामना मात्र खतम हो जाय । हमें सकल्प विकल्प करते अनन्त काल हो गया है अत: अब संकल्प विकल्प मिटादे । भगवन् ! तू मेरी यह आशा पूरी कर कि मुझ में आशा ही न रहे ।

कोई मनुष्य जब पानी में डूब रहा हो तब वह राज्य लेना पसन्द करेगा अथवा नौका । जो ससार समुद्र को पार करना चाहेगा वह तो परमात्मा की चरण शरण रूप नौका

लेना ही पसद करेगा। उसे राज्य से क्या मतलब । आप भी भगवच्चरण शरण की प्रार्थना करिये ।

मनुष्य सच्ची प्रार्थना कब कर सकता है यह बात शास्त्र द्वारा बताता हू। सिद्धान्त में कहा है कि किस तत्त्व को जान लेने के बाद सच्ची प्रार्थना होती है। सम्यक्त्व रूप तत्त्व का बोध होने पर सच्ची प्रार्थना होती है। श्रेणिक राजा को किसी बात की कमी न थी। वह जिसकी तरफ निगाह डाल देता था सामने वाला अपने को धन्य मानता था। ऐसे श्रेणिक राजा से भी महामुनि अनाथी ने अनाथ होना स्वीकार करा लिया। आप नाथ होने का अभिमान मत करो।

राजा श्रेणिक विहार यात्रा के लिए नगर से बाहर निकला। प्रकृति के नियमों का पालन और रक्षण करना आवश्यक है। ऐसा करने से आगे उन्नति होती है। श्रेणिक ७२ कलाओं में निपुण था। तदुपरान्त शरीर शास्त्र, नीति शास्त्र, अर्थ शास्त्र और भौतिक शास्त्र विशारद अनेक लोग उसके दरबार में रहते थे। फिर भी वह विहार यात्रा के लिए मडी कुक्ष बाग में गया। वह बाग अनेक वृक्षों से परिपूर्ण था। जिसमें अनेक वृक्ष हों, शास्त्रकार उसे बाग कहते हैं। वृक्ष और लता में यह अन्तर है कि वृक्ष अपने आधार पर खडा रहता है जब कि लता दूसरे के आधार से ऊपर की ओर फैलती है। दोनों फूल-फल देते हैं। वृक्ष और लता से जो युक्त हो वह बाग कहा जाता है। वृक्षों के साथ लता होना आवश्यक है।

कोई भाई यह प्रश्न कर सकता है कि मोक्ष मार्ग बताने वाले इस प्रकरण में शास्त्रकार ने बाग का क्यों वर्णन किया। शास्त्रकार जीवनोपयोगी वस्तुओं को नहीं भूले थे। हम कर्त्तव्य च्युत हो रहे हैं। बौद्ध साहित्य में यह बात पाई जाती है कि बुद्ध ने एक बार जब कि वे गया के जगल में गये थे कहा था हम योगियों के भाग्य से ही जगल हरा भरा खडा है। यदि जगल न होता तो हम योगियों की आत्म साधना में बडी कठिनाई होती। योग लेने पर भी योगी जगल का महत्त्व नही भूलते। बडे २ जगलों में ही बडे २ सिंह पैदा होते है। वृक्षों से सिंह नही जन्मते मगर वृक्षों में उनका भरण पोषण होता है। रेत के पहाडों में सिंह नहीं उत्पन्न होते। मतलब यह है कि जीवन के लिए आवश्यक बातें न बताकर केवल मोक्ष की बातें ही बताना आकाश के फूल बताने के समान है। वृक्ष और लताए हमारे जीवन के लिए भाई बन्धुओं के समान उपयोगी हैं। वैज्ञानिकों का तो यहा तक कथन है कि भाई बन्धु और मित्रों से भी वृक्षों की आवश्यकता अधिक है। वृक्षों की

सहायता से हमारा जीवन टिक रहा है। मनुष्य के शरीर में से कारबन हवा निकलती है जिस में बहुत जहर होता है। यदि यह जहरीली हवा बनी रहे, वृक्ष उसे न खींचें तो मनुष्य मर जायें। इस कारबन हवा को वृक्ष खींच लेते हैं। उनके लिए यह अनुकूल है। प्रकृति की कुछ विचित्र रचना है कि जो चीज मनुष्य के लिए जहर है वही चीज वृक्ष के लिए अमृत होती है। वृक्ष उस कारबन हवा को पचा कर आक्सीजन हवा छोडते हैं। मनुष्य जीवन आक्सीजन हवा के आधार पर टिका हुआ है।

वृक्ष की इतनी उपयोगिता होते हुए भी कुछ भाई कहते है कि वृक्षों की क्या जरुरत है, वडाआश्चर्य होता है। पहले के लोग वृक्ष की आत्मीयजन के समान रक्षा करते थे। किसी बडे वृक्ष को काटना महान् पाप समझा जाता था। यदि वृक्ष कट जाता तो उन्हें वडा दुखः होता था। जो जहर लेकर बदलें में अमृत प्रदान करता हो उसकी दया न करना महान् कृतघ्नता है।

महाभारत में वृक्ष को अजात शत्रु कहा है। यानी वृक्ष का कोई शत्रु नहीं है। वृक्ष किसी को अपना शत्रु नहीं मानता। जो उसे पत्थर मारता है उसे भी वह फल देता है और जो कुल्हाड़ा मारता है उसे भी अपना सर्वस्व तक दे देता है। बदले में कोई वस्तु नही मांगता। अहा! वृक्ष के समान उपकारी कौन होगा, फिर भी उसकी रक्षा का उचित प्रबन्ध नहीं किया जाता।

दिल्ली के लोग कहते थे कि पहले पुरानी दिल्ली में बहुत वृक्ष थे, किन्तु जब लार्ड हार्डिङ्ग पर बम फेंका गया तब से सब वृक्ष काट डाले गये है। यह विचारणीय बात है कि बम किसने फेंका और दन्ड किनको मिला। वृक्षों ने क्या अपराध किया था। मित्रवत् उपकारी वृक्षों को कटवा कर भी लोग अपने को सुधरे हुए समझते है। आज जंगल नष्ट करवा दिए गये है जिससे वर्षा में भी कमी हो गई है। जब बड़े बड़े बाग और जंगल होते थे तब केसरीसिंह के समान साधु महात्मा लोग वहीं ठहरा करते थे। किन्तु दुःख है कि महात्माओं को भी आज शहर के गंदे वातावरण के बीच रहना पड़ता है। यदि वृक्षों के प्रति यही उपेक्षा भाव बना रहा तो भविष्य में बड़ी कठिनाई उपस्थित होने की सम्भावना है। श्रेणिक राजा बाग को महान सम्पत्ति मानता था।

वृक्षों के वर्णन के बाद शास्त्र में कहा है कि उस बाग में अनेक पक्षी रहते थे। इस कथन से जाहिर है कि उस समय आज के समान पाक्षियों की हत्या नहीं हुआ करती थी। आज पखों के लिए पक्षियों की हत्या की जाती है। मैंने एक पुस्तक में पढा है कि यूरप और अमेरिका के लोगों की शिकार प्रियता के कारण अनेक पक्षी-कुल-नष्ट- कर दिए गये हैं। आधुनिक सुधार और फैशन ने क्या २ नहीं किया। क्या आप यह प्रतिज्ञा कर सकते हैं कि जिन चीजों में पाक्षियों के पंखों का उपयोग हो वे काम में न लायेंगे। अनेक बुद्धिमान लोगों ने उन वस्त्रों को त्याग दिया है जिनकी बनावट में हिंसा होती है। जैसे रेशमी और चर्बी लगे वस्त्र। क्या आप इतना भी न कर सकेंगे।

उस बाग में नाना प्रकार के पक्षी स्वतत्रता और आनन्द पूर्वक निर्भय हो कर बैठते, खेलते, कूदते और नाचते थे। जहा पक्षी भी निर्भय होकर बैठ सकते हैं वहा समझना चाहिये कि दया है। पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज कहा करते थे कि जब मै टोंक राज्य छोड़ कर जयपुर राज्य में आया तब मेरा मन प्रसन्न हुआ। वहां मुझे पाक्षियों की चा–चूं सुनाई दी। टोंक राज्य में शिकार करने का प्रचार अधिक होने से पाक्षियों का दर्शन दुर्लभ था। पक्षियों से भी मानव जीवन को लाभ पहुँचता है यह बात आप क्या जानो। आप को क्या मालूम कि हीरा कैसे पैदा होता है। यह कहावत है कि जिस देश में बडे रत्न पैदा होते हैं उसी देश में महापुरुष भी पैदा होते हैं। गगा नदी और हिमालय जैसे पर्वत भारत देश में ही हैं। यही कारण है कि यह देश महा पुरुषों की खान है। प्रकृति की जैसी रक्षा की जाती है वैसी ही वह फल भी देती है।

वह मडीकुक्ष बाग फूलों से छाया हुआ था। अनेक प्रकार के सुगन्धित फूलों की महक चारों ओर उड़ रही थी। आजकल लोग महक के लिए सेंट लगाते हैं। उन्हें भारतीय इत्र भी पसन्द नहीं है। उनको यह पता नहीं है कि सेंट में मिली हुई आर्डी दिमाग में जाकर कितना नुकसान करती है। भारतीय होकर भारत की वस्तुओं पसन्द न करना और विदेशी वस्तुओं के पीछे पडे रहना कितना घातक है। आप लोग अनेक प्रकार के तेलों का इस्तेमाल करते हो किन्तु कभी यह नहीं सोचते कि ये किस प्रकार तय्यार किये गये हैं। जिन चीजों से तेल बना है वे हमारी प्रकृति के अनुकूल हैं या प्रतिकूल यह जानना चाहिए। आज का पोशाक ही ऐसा है कि जिसके लिए तेल लवेंडर और साबुन आदि की जरूरत पड़ती है। फूलों की गरदन मरोड़ कर उनमें से इत्र निकलना प्रकृति से वैर करना है। प्रकृति के साथ ऐसा वर्ताव करने के कारण ही आजकल नये नये रोग पैदा हुए है। और डाक्टर भी

वढ़े हैं। डाक्टरों की वृद्धि होना अच्छा चिह्न नहीं है। वास्तविक चीजे नष्ट की जा रही है और भ्रष्ट वस्तुए उन का स्थान ले रही है।

इत्र और सेंट के लिए बडे २ पाप होते हैं। उनके उपयोग से मन और बुद्धि में विकृतियाँ पैदा होती है। किन्तु जगल या बगीचे की प्राकृतिक खुशबू में दोष नहीं होते यदि मैं अपने कान में इत्र का पुम्बा (रुई में लगा इत्र) रखलू तो आप लोग क्या कहोगे। साधु मानने से भी इन्कार कर दोगे। किन्तु प्राकृतिक सुगन्ध हवा के द्वारा हमारे नाक में प्रवेश करे उसमें किसे क्या एतराज हो सकता है? इत्र लगाना यानी कुदरत से लडाई करना है। फूलों से अपने आप जो सुगन्ध निकलती है वह प्राकृतिक है। अनाथी मुनि बाग में बैठे हैं। उनके लिए कोई यह नहीं कह सकता कि वे मौजमजा लेने के लिए बैठे है। वह वाग इतना सुन्दर था कि नन्दन वन के लिए भी उस की उपमा दी जाती थी। आध्यात्मिक साधना में प्रकृति बडी साधक है।

उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंहजी कहा करते थे कि बुद्धि का घर आराम है। जब आराम हो तभी बुद्धि पैदा होती है। आराम का स्थान शहर ही नही है। शहर के बाहर एकान्त स्थान में जाकर देखने से पता लगेगा कि वहा कितना आराम और कैसी बुद्धि खिलती है। आप लोग केवल नगरवासी मत बन जाओ। आप लोग केवल नगर में रहते हो अतः हम साधुओं को भी नगर में आना पडता है। ग्रामों की अपेक्षा नगर में विकार ज्यादा पैदा हो गये है। उनके सुधार के लिये हमें भी शहरों की खाक छाननी पडती है। मेरा मतलब यह नहीं है कि आज ही आप लोग शहर छोडदे। किन्तु वास्तविक जीवन स्रोत कहा है यह वात ध्यान में रखिये। मुझे दया, पौषध और सामायिक आदि धर्म कार्य बहुत प्रिय हैं फिर भी मैं उनके विषय में अधिक भार न देकर शरीर और आत्मा के कल्याण के लिये भार इसलिये देता हू कि विना शरीर स्वस्थता के धर्म कार्य ठीक तरह से नहीं हो सकते। धर्म को पवित्र रखने के लिये ही मै शरीर धर्म पर भार देता हू।

सुदर्शन चरित्र।

जीवन का सुधार कैसे होता है यह वात सुदर्शन के चरित्र से वताता हू:—

एक दिन जंगल में मुनि देखी तन मन उपज्यो प्यार।
खड़ा सामने ध्यान मुनि में निसर गया संसार रे। धन०॥ ७॥

गगन गये मुनिराज मंत्र पढ़ बालक घर को आया।
सेठ पूछते मुनि दर्शन के सभी हाल सुनाया रे। धन० ॥८॥

सुभग बालक गायें चराते हुए नित्य प्रकृति से नया पाठ पढा करता था। आप कहेंगे ज्ञान तो पुस्तकों में भरा पड़ा है प्रकृति से क्या पाठ सीखता होगा। लेकिन यह बात नही है। प्रकृति जीती जागती पुस्तिका है। उससे वह ज्ञान मिलता है जिससे मनुष्य महान् बन सकता है। प्रकृति रूपी पुस्तिका क्या क्या शिक्षा देती है यह बात अभी समयाभाव से नही कही जाती। केवल बात बताता हू। जब जगल में कोई झरना बहता है और कल कल ध्वनि करता है तब महा पुरुष उस ध्वनि से बहुत शिक्षा लेते हैं। वे सोचते है कि अहा! यह झरने की कल कल ध्वनि मेरे सोते हुए हृदय तारों को जागृत कर रही है। यदि मैं भी ऐसा ही बन जाऊ तो क्या अच्छा हो। यह ध्वनि सदा समान रूप से चालू रहती है मैं यहा नहीं आया था तब भी यह ध्वनि चालू थी। वर्तमान में भी चालू है और भविष्य में भी चालू रहेगी। चाहे कोई राजा आओ चाहे कोई रक, चाहे विद्वान चाहे मूर्ख। सब के लिए समान रूप से आवाज करती है। यह सब अवस्थाओं में समान रहती है। झरने को कोई गाली दे या प्रशसा करे सब को अपनी मधुर तान से आनंदित करता है। यह अपना शब्द नही बदलता। महापुरुष मन में विचार करते है कि इस झरने के समान हम भी यदि एक रस रहें, वैश्या के समान अपना रूप न बदला करें तो आत्म कल्याण हो जाय। यह झरना एक धार से बहता रहता है। हम समय समय पर धारा बदलते रहते हैं। आज किस धारा से काम कर रहे है और कल किस धारा से करेंगे पता नहीं है। झरना एक तीसरा गुण भी सिखाता है। यह अपना सब जल किसी बड़ी नदी को दे देता है। उस बडी नदी मे मिलकर समुद्र में लय हो जाता है। अपनी हस्ती को महान् समुद्र में मिला देता है। अपना नामो निशान मिटा देता है। इसी प्रकार हम भी किसी महापुरुष की सगत करके परमात्म रूपी समुद्र में अपने आप को मिला दें, अपने व्यक्तिगत अस्तित्व को महान् ईश्वर में लय कर दें तो कितना उत्तम हो। एक झरने से ज्ञानी जन इतनी शिक्षाएं ले सकते हैं तो जगल की अन्य अनेक वस्तुओं के सम्बन्ध में क्या कहना।

सुभग जगल में जाकर प्रकृति से बहुत बातें सीखता था। वह आधुनिक ढग से गाना बजाना और पढ़ना—लिखना न जानता था किन्तु प्राकृतिक रहना का रसिक

प्राकृतिक दृश्य देख कर आनन्द मानता था। बादलों के उतार चढ़ाव से जीवन के उतार चढ़ाव की कल्पना करता था। वह प्रकृति से प्यार करता था अतः प्रकृति भी उसकी सहायता करती थी। प्रकृति मनुष्य की क्या सहायता करती है यह बात बहुत कम लोग जानते हैं। मनुष्य को अच्छी समझदार स्त्री अथवा पुत्रादि मिलते है यह प्रकृति की ही कृपा है। पूर्व पुण्य के प्रभाव से ही ऐसा होता है।

प्रकृति सुभग के लिए क्या करती थी यह नहीं कहा जा सकता मगर जो कुछ आगे हुआ है उसे देख कर यह कहा जा सकता है कि उसने पुण्यानुबन्धी पुन्य बांधा था जिससे जगल में एक महात्मा से उसकी भेंट हो गई। आप लोग वेश्या को पैसों के बल पर घर बुला सकते हो मगर कोयल को नहीं बुला सकते। उसकी मधुर तान सुनने के लिए वन में ही जाना पडेगा। अन्य लोगों को कहीं भी बुलाया जा सकता है मगर महात्माओं को हर कही नहीं बुला सकते। वे स्वेच्छा से ही जहाँ चाहें जाते हैं।

एक तपोधनी महात्मा उस वन में वृक्ष के नीचे आगये और ईश्वर ध्यान में लीन हो गये। वे महात्मा कैसे थे। कहा है—

ज्ञान के उजागर सहज सुख सागर सुगुन रतनागर विराग रस भर्यो है।
शरण की रीति हरे मरण को न भय करे करन सौं पीठि दे चरन अनुसर्यो है॥
धर्म को मंडन मर्म को विहडन है परम नरम हो के कर्म से लर्यो है।
ऐसे मुनिराज भुवलोक में विराजमान निरखी बनारसी नमस्कार कर्यो है॥

महात्माओं को ज्ञान उजागर नहीं करता मगर वे ज्ञान को उजागर करते हैं। वे शास्त्र को सुशास्त्र बनाते हैं, जगत् को तीर्थ बनाते हैं। वे सहज सुखी हैं। किसी का सुख हरण करके वे सुखी नहीं होते। न कोई उनका सुख हरण ही कर सकता है। इन्द्र में भी यह ताकत नहीं है कि वह महात्माओं का सुख छीन सके। आप पूछेंगे कि सहज सुख कैसा है। आप सहज सुख को जानते हो मगर अभी उसे भूले हुए हो। मान लो एक आदमी के पास खाने पीने और ऐश आराम की सब सामग्री मौजूद है किन्तु किसी ने कह दिया कि एक सप्ताह बाद तुम्हारी मृत्यु होने वाली है। खान पान और भोग विलास से मिलने वाला उसका सुख उसी क्षण काफूर हो जायगा। यदि इन वस्तुओं मे सुख होता तो इनके होते हुए भी सुख कैसे हवा हो गया। अतः मानना पड़ेगा कि वस्तु

जन्य सुख वास्तविक सुख नहीं है। वास्तविक सुख सदा एक समान रहता है। महात्माओं को यदि कोई कह दे कि आपका मृत्यु सन्निकट है तो उन्हें बडा आनन्द होता है।

मरने से जग डरत है मो मन बड़ो अनन्द।
कब मरिहों कब भेटिहों पूरण परमानन्द॥

महात्मा सहज सुखी है। उन का आनन्द उनके भीतर होता है। बाह्य वस्तु पर उनका आनन्द अवलम्बित नही होता। इन्द्रिय-विषय विकास में सुख नहीं है, सुखाभास है, भ्रम है।

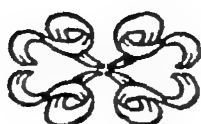
महात्मा लोग गुण के भडार और वैराग्य के सागर होते है। जो वैरागी है, वह न किसी की शरण में जाता है और न किसी से भय खाता है इन्द्रियों के व्यवहार को जीत कर चारित्र का पालन करता है। महात्मा जहा जाते हैं वहा धर्म का मडन ही होता है भले वे मोन ही क्यों न रहते हो। उनका जीता जागता चेहरा ही धर्म का मण्डन करता है। वे मिथ्यातम का नाश करते है। चुप नहीं वैठे रहते किन्तु सदा दुष्कर्मों से लडाई करते रहते है जिस प्रकार कुत्ता घर से परिचित होजाने के कारण वार वार घर आया करता है उसी प्रकार काम क्रोध लोभ आदि विकार परिचित होने के कारण वारवार मन में आया करते हैं मगर महात्मा सदा जागरूक रहते है उनको मन में स्थान ग्रहण नहीं करने देते। हमारे मन में सद् भाव जागृत हो गया है अत. श्वानवत् विकारी भावों का अब गुजारा यहा नहीं हो सकता। साथ ही नम्र वन कर कर्मनाश करते हैं। कर्म नाश नम्र हुए बिना नहीं होता।

ऐसे आध्यात्मिक गुरु के पास सुभग आकर खडा है। उधर जिनदास और अर्हद्दासी जिनको कि पुत्र कामना थी अपने धर्म पर आरूढ थे। पुत्र प्राप्ति के लिए किसी प्रकार का धर्म विरुद्ध काम नहीं किया। '**धर्मो रक्षति रक्षितः**' अर्थात् जो धर्म की रक्षा करता है धर्म भी उसकी रक्षा करता है। वे महात्मा मानो इन दोनों की कामना पूर्ण करने के लिए ही आये हो। इन महात्मा को देखकर सुभग बडा प्रसन्न हुआ। मन में विचार किया कि ये मेरे गुरु है। जब मैं सेठजी के साथ ऐसे महात्मा के यहा जाता था तब सेठजी कहते थे कि मेरे गुरु हैं। अभी सेठजी यहा नहीं है तो क्या हुआ। ये मेरे गुरु है। उसने बडे भक्ति भाव से मुनि को नमन किया।

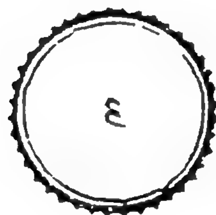
आजकल लोग मुनियों को नमस्कार करते हुए ऐसे खडे रहते हैं मानो उनकी कमर ही अकड गई हो । यह भी कहते हैं कि नमन करने में क्या रखा है । उन अक्कड़बाज भाइयोंसे मैं पूछना चाहता हूँ कि किसी साहबबहादुर के द्वार पर जाकर उन्हें नमन न करो तो वे नाराज हो जायगे । उनकी नाराजी आप सहन नहीं कर सकते । दूसरी बात उनको नमन करने में सभ्यता मानते हो । पैसे की गुलामी के लिए नमन करने में शर्म नहीं लगे और गुणवान् महात्माओं को नमन करने में शरम लगे यह कितनी आश्चर्य की बात है ।

मुनि को वन्दन करके सुभग सामने खड़ा है । मुनि की दृष्टि में अपनी दृष्टि मिला रहा है । मुनि की तरह वह भी ध्यान में डूब गया । वह इस बात को भूल गया कि मैं कहा हूँ और मेरी गायें कहा हैं । ध्यान के प्रताप से क्या होता है यह बात यथावसर बताई जायगी ।

राजकोट
१५—७—३६ का
व्याख्यान



जन्म भूमि की महत्ता



"श्रीजिन अजित नमो जयकारी, तू देवन को देवजी ....।"



भक्त परमात्मा को किस रूप में देखता है? वह परमात्मा की अनन्य भाव से भक्ति करता है। जिसकी प्रार्थना की जाय उसे सर्वोत्कृष्ट मानना, उसके गुणों पर मुग्ध हो जाना जो उसकी निन्दा करे उसके प्रति उदासीनता रखना अनन्य भक्ति का लक्षण है। जो आराध्य की निन्दा करता है उसके साथ किसी प्रकार का द्वेष भाव न रखे न उस पर क्रोध करे। इस प्रार्थना मे अनन्य भक्ति बताने के लिए ही कहा गया है—

> दूजा देव अनेरा जग में, ते मुज दाय न आवे जी।
> तहमने तहवचने हमने तू ही अधिक सुहावेजी ॥ श्री० ॥

इस कथन पर पूरी तरह विचार करने से आपको अनन्य भक्ति की बात समझ में आ जायगी और प्रार्थना का मर्म भी ज्ञात हो जायगा। यह सब विस्तार पूर्वक समझाने

जितना समय नहीं है। थोड़ा कहता हू—

प्रार्थना करने वाला भक्त कहता है कि मुझे तू (अजितनाथ) ही पसन्द है। दूसरा कोई देव मुझे पसन्द नहीं है। इस पर से यह प्रश्न उठता है कि क्या अन्य देवों में शक्ति या सामर्थ्य नहीं है जिससे वे पसन्द नहीं पड़ते। अन्य देवों से सासारिक कामों में जैसी सहायता मिलती है वैसी श्रीअजितनाथ तीर्थङ्कर से नहीं मिलती। वे वीतराग है अतः संसार व्यवहार की बातों में हमारे मदद गार नहीं हो सकते। इस प्रश्न का विशेष विचार एक प्रकार का चमत्कार मालूम होगा किन्तु अभी समय नहीं है। इस प्रश्न का उत्तर किसी पतिव्रता स्त्री से पूछा जाय। उसे अपना पति ही क्यों पसन्द है।

रावण के यहां किसी सांसारिक सुख की कमी न थी। उसकी लंका सोने की थी। दूसरी ओर राम वन में रहते थे। वल्कल वस्त्र धारण करते थे, वन्य फल फूल पर अपना गुजारा चलाते थे और ज़मीन पर सोते थे। सीता ने राम को क्यों पसन्द किया ? रावण को पसन्द क्यों नहीं किया ? आधुनिकलोगोंका साजोसामान की वस्तुओंके प्रति आकर्षण अधिक है अतः ऐसा प्रश्न उठता है कि ऐश्वर्य को छोड़कर सादगी को क्यों पसद किया गया था। सासारिक पदार्थों के प्रति राग भाव न हो तो ऐसा प्रश्न ही खड़ा न हो। सीता का रावण के साथ कोई द्वेष भाव न था। रावण, राम से स्नेह तुडवाकर अपने प्रति जुडवाना चाहता था। इसी कारण वह उससे नाराज थी।

भक्त कहते है, जो दूसरे देव परमात्मा से हमारा नेह तुडवाते है वे हमें पसन्द नहीं है। सीता भी यही कहती थी कि जो राम से मेरा नाता तुडाना चाहता है वह मुझे प्रिय नहीं है। जो राम के साथ स्नेह जुड़ाता है वह मुझे अति प्रिय है जैसे जटायु पक्षी और त्रिजटा राक्षसी।

भक्त लोग माया के ठाट बाट की तरफ नहीं देखते अत : सांसारिक पदार्थों का आकर्षण होते हुए भी अन्य देवों से प्रेम नहीं करते। शंका कांक्षा आदि पांच दोष इसी लिए बताये गये हैं कि कहीं भक्त संसार की माया में फंसकर दूसरे देवों को न मानने लग जाय। पहले के श्रावकों के जीवन चारित्र की तरफ ध्यान देंगे तो आप अनन्य भक्ति कर

सकते। मगर प्रयत्न करो, कुछ तो उनका अनुकरण करो। बालक अक्षर जमाने के लिए अपने सामने अच्छे अक्षर रखते हैं। यद्यपि वे तादृश अक्षर नहीं लिख सकते तथापि वैसेही हुरूफ लिखने की कोशिश करते हैं। और कोशिश करते करते कभी तादृश अक्षर और उनसे अच्छे भी लिखने लग जाते हैं। यही बात चित्रकार के विषय में भी है। आप प्राचीन श्रावकों का आदर्श सामने रखकर आगे बढ़िये।

आनन्द श्रावक था। उसके पास सम्पत्ति थी। वह हमारा आदर्श कैसे हो सकता है। उसने सर्वथा निवृत्ति मार्ग अंगीकार नहीं किया था। साधारण श्रावक के लिए उत्कृष्ट श्रावक आदर्श हो सकता है। इस में किसी प्रकार की बाधा नहीं आती। अतिम मजिल तो मुक्ति ही है यह बात ठीक है मगर बीच की सीढ़िया जब तक कि उन पर न चढ़ा जाय तब तक के लिए आदर्श हो सकती है। कुटुम्ब का मोह छोड़े बिना यदि आनन्द निवृत्ति मार्ग को ग्रहण कर लेता तो वह कहीं का न रहता। वह क्रामिक विकास का मार्ग पकड़े हुए था। भगवान् ने भी उसे साधु बनने का उपदेश नहीं दिया किन्तु बारह व्रत धारण करने का उपदेश दिया था।

आजकल तो बारह व्रतों के अर्थ में भी सकुचितता आगई है। आनन्द के यहां चालीस हजार गायें थी फिर भी वह श्रावक था। भगवान् का अनन्य भक्त था। प्रवृत्ति मार्ग में रह कर भी भक्त भगवान् की अनन्य भक्ति कर सकता है। जिसे कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का वास्तविक भान होता है। वह सच्ची भक्ति कर सकता है। आनन्द श्रावक के पास चालीस हजार गायें थीं। गायें अधिक न बढ़ने का यह कारण मालूम पड़ता है कि जिसको उसे सहायता करनी होती थी उसे वह गायें ही देता था। ऐसे देकर मनुष्यों को आलसी न बनाता था। जब तक स्वय कुटुम्ब न छोड दिया जाय तब तक दूसरे कुटुम्बों का रक्षण करना और उन्हें सुखी बनाने का प्रयत्न करना श्रावक का नैतिक कर्त्तव्य है। कुटुम्ब की ममता त्यागे बिना अन्य प्राणियों की दया छोड़ देना अनुचित है। निवृत्ति क्रमशः होती है। अनधिकार चेष्टा से किसी को लाभ नहीं हो सकता।

एक राजमहल है जिसमें सगमरमर की फरसी लगी हुई है। दीवालों पर चित्रादि चित्रित हैं। सब सजावट से सुसज्जित है। दूसरी ओर एक खेत है जिसमें काली मिट्टी है। राजमहल और खेत दोनों में से आप किसे पसन्द करेंगे। दोनों में से कौनसी वस्तु आपके लिए अधिक उपयोगी है। यदि आपको कुछ दिन के लिए राजमहल में रख दिया जाय तो अच्छा लगेगा किन्तु साथ में यह शर्त लगादी जाय कि जब तक राजमहल में रहोगे खेत से निपजने वाली कोई वस्तु वहां न दी जायगी। शायद आप ऐसी अवस्था में एक दिन भी रहना पसन्द न करोगे। इसके विपरीत यदि आपसे कहा जाय कि आपको खेत से उत्पन्न सब वस्तुए दी जायगी मगर रहना झोंपडे में पड़ेगा। आप झोंपडे में रहना पसन्द कर लेंगे क्योंकि खेत के बिना निर्वाह नहीं हो सकता है। राजमहल का व्यामोह दु ख देने वाला है।

नदन बन और मन्डीकुक्ष के विषय में यही बात लागू है। नदन बन देवों के मन बहलाव के लिए है। वहां मनुष्यों के जीवन के लिए उपयोगी सामग्री नहीं है। मडी-कुक्ष बाग में फलफूल आदि हैं जिनसे हमारे शरीर को पुष्टि मिल सकती है। पक्षी भी फलादि खाकर आनन्दित होते थे तो मनुष्य अवश्य उससे लाभ प्राप्त करते थे। पक्षी फलों के पहले परीक्षक हैं। आक का फल बदर और पक्षी नहीं खाते। अत· मनुष्य भी उसे नहीं खाते। एक बात और है। जो पशु पक्षी फल खाते हैं अर्थात् फलाहारी है वे मास नही खाते। मनुष्य कैसा प्राणी है जो फल भी खाता है और मास भी खा जाता है। बदर फलाहारी है अतः मास नही खाता। पर मनुष्य ने फलाहार की मर्यादा का उल्लघन कर दिया है। क्या अधिक बुद्धि मिलने का यह दुरुपयोग नहीं है।

मडीकुक्ष बाग से सब को पोषण मिलता था लेकिन नदन बन के लिए यह बात नहीं है। यही कारण है कि मडीकुक्ष बाग में तपोधनी मुनि बैठे हैं और भगवान् के चौमासे भी हुए हैं मगर नदन बन में क्या कोई साधु मिल सकता है। अतः नदन बन की अपेक्षा मण्डीकुक्ष बड़ा ठहरता है। आप लोग स्वर्ग का सुन्दर वर्णन सुन पढ कर ललचा मत जाइये। आपका राजकोट बड़ा है या स्वर्ग ? राजकोट में धर्म की जो जागृति हो सकती है वह स्वर्ग में नहीं हो सकती। स्वर्ग में मुनि नहीं मिल सकते मगर आपके यहां मुनियों का ठाट लग रहा है।

कहा जाता है कि गोपिकाओं की भक्ति से प्रसन्न होकर इन्द्र ने उन्हें स्वर्ग में लिवा लाने के लिए विमान भेजा। गोपियों ने क्या उत्तर दिया सो सुनिये—

व्रजवालो म्हारे वैकुण्ठ नथी आवो।
त्यां नन्द नो लाल क्यां थी लावो ॥ व्रज ॥

गोपियों ने कहा स्वर्ग में नन्दलाल श्री कृष्ण नही हैं अतः हमें वहां आना पसद नहीं है। विमान लाने वालों ने कहा कि अरी तुम क्या पागल हो गई हो जो स्वर्ग में आने मे मना कर रही हो। वहा रत्नों के महल है और इच्छा करने मात्र से ही पेट भर जाता है। तुम्हारे व्रज में दुष्काल का भय रहता है और अनेक प्रकार के दुःख भी मौजूद हैं। गोपियों ने कहा कि पहले यह बताओ कि तुम विमान लेकर हमें लेने के लिए किस कारण से आये हो। हमारे किस शुभ कार्य से प्रेरित होकर यहा आये हो। नन्दलाल की भक्ति से प्रेरित होकर ही यहां आये हो। तुम्ही बताओ कि नन्दलाल की भक्ति बडी चीज़ है या स्वर्ग। स्वर्ग में नन्दलाल की भक्ति नहीं हो सकती अतः हम वहां आना नहीं चाहती। हम भक्ति का विक्रय करना नही चाहती। तुम्हारा स्वर्ग हमारे व्रज से बड़ा होता तो वहा नन्दलाल ने जन्म क्यों नहीं लिया। गोपियों के उत्तर से देव चुप हो गये और उनकी भक्ति और श्रद्धा की प्रशसा करते हुए आकाश में चले गये।

आप लोग भी यदि स्वर्ग को बड़ा मानों तो क्या वहां साधु श्रावक मिल सकते है। क्या वहां तीर्थकर जन्म धारण कर सकते हैं। यहां रहकर धर्म की जैसी साधना की जा सकती है वैसी वहा नहीं हो सकती।

मुसलमानों की हदीसों में कहा है कि अल्लाने दुनिया बनाकर फरिश्तों से कहा कि तुम लोग इन्सानों की इनायत करो। उनकी वन्दगी करो। इस हुक्म के अनुसार सब फरिश्ते इन्सानों की वन्दगी करने लग गये मगर एक फरिश्ते ने इस हुक्म का पालन नहीं किया। उसने अल्ला से कहा कि आप ऐसी क्या आज्ञा देते है। कहां हम फरिश्ते और कहाँ इन्सान। इन्सान खाक का बना है अतः नापाक है हम पाक हैं। अल्लामियां ने उसको फटकार दी और वन्दगी के लिए हुक्म दिया। इन्सान की वन्दगी फरिश्ते भी करते है अत इन्सान बड़ा है।

एक राजमहल है जिसमें सगमरमर की फरसी लगी हुई है। दीवालों पर चित्रादि चित्रित हैं। सब सजावट से सुसज्जित है। दूसरी ओर एक खेत है जिसमें काली मिट्टी है। राजमहल और खेत दोनों में से आप किसे पसन्द करेंगे। दोनों में से कौनसी वस्तु आपके लिए अधिक उपयोगी है। यदि आपको कुछ दिन के लिए राजमहल में रख दिया जाय तो अच्छा लगेगा किन्तु साथ में यह शर्त लगादी जाय कि जब तक राजमहल में रहोगे खेत से निपजने वाली कोई वस्तु वहां न दी जायगी। शायद आप ऐसी अवस्था में एक दिन भी रहना पसन्द न करोगे। इसके विपरीत यदि आपसे कहा जाय कि आपको खेत से उत्पन्न सब वस्तुए दी जायगी मगर रहना झोंपडे में पडेगा। आप झोंपड़े में रहना पसन्द कर लेंगे क्योंकि खेत के बिना निर्वाह नहीं हो सकता है। राजमहल का व्यामोह दु ख देने वाला है।

नदन बन और मन्डीकुक्ष के विषय में यही बात लागू है। नदन बन देवों के मन बहलाव के लिए है। वहां मनुष्यों के जीवन के लिए उपयोगी सामग्री नहीं है। मडी-कुक्ष बाग में फलफूल आदि हैं जिनसे हमारे शरीर को पुष्टि मिल सकती है। पक्षी भी फलादि खाकर आनन्दित होते थे तो मनुष्य अवश्य उससे लाभ प्राप्त करते थे। पक्षी फलों के पहले परीक्षक हैं। आक का फल बदर और पक्षी नही खाते। अत॰ मनुष्य भी उसे नहीं खाते। एक बात और है। जो पशु पक्षी फल खाते हैं अर्थात् फलाहारी है वे मास नही खाते। मनुष्य कैसा प्राणी है जो फल भी खाता है और मास भी खा जाता है। बदर फलाहारी है अतः मास नही खाता। पर मनुष्य ने फलाहार की मर्यादा का उल्लघन कर दिया है। क्या अधिक बुद्धि मिलने का यह दुरुपयोग नहीं है।

मडीकुक्ष बाग से सब को पोषण मिलता था लेकिन नदन बन के लिए यह बात नहीं है। यही कारण है कि मडीकुक्ष बाग में तपोधनी मुनि बैठे हैं और भगवान् के चौमासे भी हुए हैं मगर नदन बन में क्या कोई साधु मिल सकता है। अत. नदन बन की अपेक्षा मण्डीकुक्ष बड़ा ठहरता है। आप लोग स्वर्ग का सुन्दर वर्णन सुन पढ कर ललचा मत जाइये। आपका राजकोट बड़ा है या स्वर्ग ? राजकोट में धर्म की जो जागृति हो सकती है वह स्वर्ग में नहीं हो सकती। स्वर्ग में मुनि नहीं मिल सकते मगर आपके यहा मुनियों का ठाट लग रहा है।

कहा जाता है कि गोपिकाओं की भक्ति से प्रसन्न होकर इन्द्र ने उन्हें स्वर्ग में लिवा लाने के लिए विमान भेजा। गोपियों ने क्या उत्तर दिया सो सुनिये—

व्रजवालो म्हारे वैकुण्ठ नथी आवो।
त्यां नन्द नो लाल क्यां थी लावो ॥ व्रज ॥

गोपियों ने कहा स्वर्ग में नन्दलाल श्री कृष्ण नहीं हैं अतः हमें वहां आना पसद नहीं है। विमान लाने वालों ने कहा कि अरी तुम क्या पागल हो गई हो जो स्वर्ग में आने से मना कर रही हो। वहां रत्नों के महल है और इच्छा करने मात्र से ही पेट भर जाता है। तुम्हारे व्रज में दुष्काल का भय रहता है और अनेक प्रकार के दुःख भी मौजूद हैं। गोपियों ने कहा कि पहले यह बताओ कि तुम विमान लेकर हमें लेने के लिए किस कारण से आये हो। हमारे किस शुभ कार्य से प्रेरित होकर यहां आये हो। नन्दलाल की भक्ति से प्रेरित होकर ही यहां आये हो। तुम्ही बताओ कि नन्दलाल की भक्ति बड़ी चीज़ है या स्वर्ग। स्वर्ग में नन्दलाल की भक्ति नहीं हो सकती अतः हम वहां आना नहीं चाहती। हम भक्ति का विक्रय करना नहीं चाहती। तुम्हारा स्वर्ग हमारे व्रज से बड़ा होता तो वहां नन्दलाल ने जन्म क्यों नहीं लिया। गोपियों के उत्तर से देव चुप हो गये और उनकी भक्ति और श्रद्धा की प्रशसा करते हुए आकाश में चले गये।

आप लोग भी यदि स्वर्ग को बड़ा मानों तो क्या वहां साधु श्रावक मिल सकते हैं। क्या वहां तीर्थकर जन्म धारण कर सकते हैं। यहां रहकर धर्म की जैसी साधना की जा सकती है वैसी वहां नहीं हो सकती।

मुसलमानों की हदीसों में कहा है कि अल्लाने दुनिया बनाकर फरिश्तों से कहा कि तुम लोग इन्सानों की इनायत करो। उनकी बन्दगी करो। इस हुक्म के अनुसार सब फरिश्ते इन्सानों की बन्दगी करने लग गये मगर एक फरिश्ते ने इस हुक्म का पालन नहीं किया। उसने अल्ला से कहा कि आप ऐसी क्या आज्ञा देते हैं। कहां हम फरिश्ते और कहाँ इन्सान। इन्सान खाक का बना है अतः नापाक है हम पाक हैं। अल्लामियां ने उसको फटकार दी और बन्दगी के लिए हुक्म दिया। इन्सान की बन्दगी फरिश्ते भी करते है अतः इन्सान बडा है।

आप लोगों के लिए राजकोट बडा है। राजगृही नगरी भी नहीं है राशि की दृष्टि से दोनों एक है। कमी इस बात की है कि यहा अनाथी मुनि जैसे मुनि नहीं हैं। मगर श्रेणिक जैसे श्रोता भी तो नहीं हैं। साधु और श्रावक दोनों साधारण कोटि के हैं फिर भी स्वर्ग से आपका राजकोट बढ़कर के है क्योंकि स्वर्ग में साधारण कोटि के साधु

श्रावक भी नहीं होते। आप लोग इस सुअवसर से लाभ उठाइये। स्वर्ग के लिए अपनी धर्म करणी को बेंच मत डालिये। निष्काम होकर धर्म कर्म करिये। मैं आपको विश्वास दिलाता हू कि निष्काम कर्म हजार गुना फल देता है।

आपका विवाह हो चुका है। आपकी श्रीमती यदि कहे कि मैं रोटी बनाती हू अतः बदले में कुछ दीजिये तो आप अपनी स्त्री से क्या कहेंगे। आप यही कहेंगे कि क्या तुम मेरे यहा किराये पर आई हो। जब स्त्री को आप यह उत्तर देते हैं तब भगवान् से किसी प्रकार की माग करना कितना बेहुदापन है।

मीराबाई से किसी ने पूछा कि तुम्हें राणा प्रिय क्यों नहीं लगते उसने उत्तर दिया कि:—

संसारी नो सुख एवो, झांझवानो नीर जेवो।
तेने तुच्छ करी फरीये रे मोहन प्यारा॥

ससार का सुख तुच्छ है। मुझे भगवान् अति प्रिय हैं। राणा एक जन्म के साथी बन सकते हैं। मैं ऐसे साथी की खोज में हू जो कभी साथ न छोड़े।

मैंने शांकर भाष्य देखा तो उसमें भी यही बात देखने को मिली ससार के जीव मृगजल के समान भुलावे में पडे हुए है। सूर्य की किरणें रेत पर गिर कर ऐसा भ्रम पैदा करती हैं मानों पानी भरा पडा हो। बेचारा मृग पानी की लालसा से दौड़ता जाता है मगर कहीं पानी नहीं मिलता। और आगे दौड़ लगाता है मगर उसकी इच्छा पूरी नहीं होती। यही हाल ससार के लोगों का है। उनकी इच्छायें कभी पूरी नहीं होती। मीराबाई इस तत्त्व को समझ गई थी अतः सासारिक सुखों के भ्रम जाल में न फंसी। एक साथ दो घोडों पर सवार नहीं हुआ जा सकता परमात्मा की भक्ति और विषयवासना दोनों साथ नहीं चल सकते। विषय वासनाओं का ममत्व त्यागे बिना ईश्वर भक्ति असभव है।

कहने का मतलब यह है कि न तो स्वर्ग से यह भूमि कम है और न मडीकुक्ष बाग नन्दन बन से कम है। फिर आप स्वर्ग की प्रशसा और इच्छा क्यों कर करते हैं।

अमेरीकन डाक्टर थोरे जो कि महान् आध्यात्मिक विद्वान था। एक दिन अपने शिष्य के साथ जगल में गया। शिष्य ने प्रश्न किया कि स्वर्गभूमि बढी है या यह भूमि।

थेरे ने उत्तर दिया कि जिस भूमि पर तू पैर देकर खड़ा है और जो तेरा वजन उठा रही है उससे यदि स्वर्ग भूमि को बडी मानता है तो तुझे यहां खडा रहने का भी अधिकार नहीं है। आम लोगों का कल्याण भी इसी भूमि पर होने वाला है। स्वर्ग के गुण गान करना व्यामोह है।

सुदर्शन चरित्र–

अब तक मैं बगीचे की बात कर रहा था जिसे श्रेणिक राजा ने बनवाया था। अब जगल की शोभा देखिये और उस पर विचार कीजिये हमारे यहा के जगल की समता भी स्वर्ग नहीं कर सकता। यदि कोई व्यक्ति जंगल से स्वर्ग को बडा मानता है तो उसका अर्थ इतना ही है कि जैसे नाटक में पाउडर लगाई हुई स्त्रीं में चमक अधिक दिखाई देती है वस्तुतः उसमें उतनी चमक दमक नहीं होती। नाटक में साग करने वाली स्त्री और घर की स्त्री में जितना अन्तर है उतना ही स्वर्ग और वन में है। नाटक सीनेमाओं की नटी थोडी देर के लिए है। वह मोह पैदा करती है और जीवन को जंजालमय बना देती है। इसके विपरीत घर की स्त्री स्वदार संतोष व्रत सिखाती है। खुद भी शील का पालन करती है।

सुभग ग्वाले को ऐसे सुन्दर जगल में ही महात्मा मिले हैं। जिन्हें इन्द्र नरेन्द्र भी वन्दन करते है ऐसे महात्मा जगल में मिले हैं। भारत के जगल का ऐसा अनुपम प्रताप है। इससे बढ़कर स्वर्ग को उत्तम मानना कितनी भूल है। पेरिस शहर की बडी तारीफ सुनते हैं। राजकोट के साथ उसकी तुलना कीजिये कि कौन अच्छा है। जहा आत्म साधना हो वह अच्छा है।

मुनि को देखकर सुभग वहुत खुश हुआ और हाथ जोडकर सामने खड़ा रहा। मुनि के प्रति वह इतना आकर्षित हो गया कि सब सुध बुध भूल गया। जैसे लोह चुम्बक से आकर्षित होता है। परमात्मा का आकर्षण भी लोह चुम्बकवत् है मगर हम लोहा बने तब परमात्मा हमें आकर्षित करे। सुभग को प्राकृतिक शिक्षा मिली थी। विकारी शिक्षा का स्पर्श भी उसे नहीं हुआ था। वह लोहा बना हुआ था अतः पारस के समान मुनि का उस पर कैसा प्रभाव पड़ा है सो देखिये।

सुभग एकाग्र मन से मुनि के सामने ध्यानमुद्रा में खडा है। योग शास्त्र का कथन है कि अपने मन का प्रभाव दूसरे पर डाला जा सकता है। मेस्मेरेजम योग की एक तुच्छ

क्रिया है। उसके प्रभाव से भी आदमी इतना कठोर बना दिया जा सकता है कि लोहे के धन की मार भी वह सह सकता है। मेस्मेरेजम का प्रभाव स्त्री और बालक पर अधिक पडता है। भोले सुभग पर भी मुनि के योग का प्रभाव पडा और वह सब कुछ भूल गया वह समाधि में लीन हो गया। शाम होने का भी उसे खयाल न रहा।

गगन गये मुनिराज मंत्र पढ़, बालक घर को आया।
सेठ पूछते मुनि दर्शन का, सभी हाल सुनाया रे धन ॥ ८ ॥

ध्यान पूरा होते ही वह महात्मा नवकार मत्र पढ़कर आकाश में उड़ गये। भगवती सूत्र में जंगाचारण विद्याचारण मुनियों का जिक्र है। मुनि को आकाश में उडते हुए देखकर सुभग चिल्लाने लगा ओ महात्मा ओ महात्मा। मगर वे निस्पृह महात्मा कब रुकने वाले थे। जिस प्रकार सूर्य के अस्त हो जाने पर कमल बन्द हुए बिना नहीं रहता उसी प्रकार समय हो जाने से वे महात्मा उडकर चले गये। महात्मा चले गये मगर उनका उच्चारण किया हुआ नमो अरिहन्ताण मत्र उसे याद रह गया। वह सोचने लगा कि इस अरिहन्ताण मत्र के प्रभाव से ही वे आकाश में उड सके हैं जिनके प्रभाव से आकाश में उडा जा सकता है वह मत्र कैसा होगा। अवश्य बहुत शक्ति शाली होगा।

इस प्रकार विचार करते हुए सध्या होजाने का उसे भान आया। वह गायों को खोजने लगा। सध्या समय घर जाने का रोजमर्रा का अभ्यास था अतः गायें घर पहुच गई। किन्तु सुभग को आया हुवा न देख कर सेठ जिनदास को चिन्ता हुई। आज क्या बात हुई जो जिनदास नहीं आया है। उस पर कोई विपत्ति तो नहीं गुजरी अथवा कोई ठग उसे ललचा कर कहीं ले तो नहीं गया है। सेठ वडा व्याकुल हुआ और इधर उधर घूमता हुआ उसकी प्रतीक्षा करने लगा।

जो आदमी केवल अपने स्वार्थ का ही खयाल करता है वह अपने स्वार्थ का भी नाश करता है और जो दूसरों पर उपकार करता है वह अपना भी भला करता है। सेठ सुभग के लिए चिन्ता क्या कर रहा था, अपने यहां पुत्र का आह्वाहन कर रहा था।

इतने में सुभग घर पर आया। सेठ ने उसे गले लगा लिया और पूछने लगा कि आज इतनी देरी से कैसे आये। सुभग भी दौडता और घबडाया हुआ आया था कि पिताजी मेरी चिन्ता करते होंगे। सेठ को देखकर वह भी बहुत प्रसन्न हुआ। कहने लगा पिताजी

आज जगल में बड़ा आनन्द आया । आज मैंने जगल में एक महात्मा को देखा । उनका मैं क्या वर्णन करू । मेरे में इतनी शक्ति नहीं है । वे मुझे इतने प्यारे लगे जितना बछड़े को गाय लगती है । मै उन्हें देखकर अपने आप को भूल गया । उनके चेहरे से अनन्त शाति झरती थी । मैं उनपर मुग्ध बन गया । सेठ कहने लगा तुझे धन्य है जो ऐसे महात्मा के दर्शन हुए । यदि अभी वहीं पर हो तो मैं भी चलू और दर्शन करू । लड़के ने कहा अब वे वहां कहा हैं वे तो अरिहन्ताण कह कर आकाश में उड़ गये ।

लडके की बातें सुनकर सेठ उसकी सराहना करने लगे और धन्यवाद देने लगे । कोई काम खुद से न बन सके तो कम से कम उसके करने वाले की प्रशसा तो करनी ही चाहिए । पौषध में बैठे हुए सुबाहु कुमार ने कहा था 'वे लोग धन्य हैं जो भगवान् की वाणि सुनते हैं' । वे धन्य हैं जो सयम लेते हैं । आप से यदि अच्छा काम न बन पड़े तो उसके करने वाले की प्रशसा तो जरूर करिये । इससे लाभ है ।

सुभग सुदर्शन का ही जीव है । उसको धन्य कहना सुदर्शन के शील को धन्य कहना है । अथवा यों कहिये कि आत्मा को ही धन्य बनाना है । दूसरों के गुणों को देख कर प्रसन्न होना यह हृदय की विशालता प्रकट करता है । बहुत से लोग इतने ईर्षालु प्रकृति के होते हैं कि वे दूसरों के द्वारा किए हुए अच्छे कामोंको सहन नहीं कर सकते और भीतर ही भीतर जलते रहते हैं । इससे उनको खुद को ही नुक्सान है ।

सुभग और जिनदास की बातें आगे यथावसर बताई जायगी । आज इतना ही भाव कहा । जो अच्छाई को गृहण करेगा उसका भला है ।

राजकोट
१६—७—३६ का
व्याख्यान

फूल और लेश्या का समन्वय



आज म्हारा संभव जिनजी का हित चित से गुण गास्यां राज। आ०।



परमात्मा की प्रार्थना करते वक्त कैसी भावना रखनी चाहिए यह बात मैं बारबार कहता हूं और आप लोग सुनते हो। इस प्रार्थना में कहा गया है—

तन, मन, धन, प्राण समर्पी प्रभु ने इन पर वेग रिझास्यां राज।

परमात्मा की प्रार्थना कुछ लेने के लिए नहीं करना चाहिए मगर देने के लिए करना चाहिए। परमात्मा से प्रार्थना करना कि हे भगवान्! यह दो वह दो अथवा अमुक इच्छा पूरी करो स्वार्थी प्रार्थना है। इसके विपरीत यह चाहना करना कि हे प्रभो! मैं तेरी प्रार्थना इसलिए करता हूं कि मुझ में तन मन धन और प्राण तक दूसरों के लिए न्योछावर

करने की शक्ति आजाय, सच्ची और निस्वार्थ प्रार्थना है। हे भगवान्! मुझे ऐसा बल दीजिये कि मैं अपनी शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, कौटुम्बिक या अन्य समस्त शक्तियाँ तेरे समर्पित करदूं।

लेने में सुख मानने वाले लोग जगत् में बहुत हैं। किन्तु चन्द लोग ऐसे भी हैं जो देने में राजी होते हैं। ऐसे भी कई व्यक्ति हो गये हैं जिन्होंने स्वय भूखा रह कर दूसरों को भोजन खिलाया है। दूसरों के प्राणों की रक्षा करने के लिए अपने प्राणों का बलिदान करने वालों की भी कमी नहीं है। मेघरथ राजा ने कबूतर की रक्षा के लिए अपना सारा शरीर तक दे डाला था। मोहम्मद साहब के लिए कहा जाता है कि वे एक फाखता के लिए अपने गाल का मांस काट कर देने के लिए तैय्यार हो गये थे। महाभारत में राजा शिबी और रन्तीदेव की कथा है। राजा रन्तीदेव चालीस दिन से भूखा था। जब वह भोजन करने के लिए बैठा तब एक चाण्डाल चिल्लाता हुआ आया कि मैं भूखों मर रहा हू। रन्ती॰ देव ने अपना भोजन उसे देदिया। इस प्रकार देकर राजी होने वालों की सख्या भी कम नहीं है। दूसरों को कुछ भी देना निस्वार्थ भाव से देना परमात्मा को ही देना है। नम्रीभूत होकर देना चाहिए अभिमान से नहीं देना चाहिए। देते देते कभी आप महापुरुष बन जायगे।

शास्त्र के साथ व्यावहरिक बातों का भी जिक्र करना पड़ता है। शास्त्र—कथन का उद्देश्य आत्मा में जागृति लाना है। जागृति जिस प्रकार से हो उस प्रकार से उपदेश देने की आवश्यकता होती है। दो दिन से मंडीकुक्ष बाग का वर्णन किया जा रहा है और संभव है कि आज का दिन भी इसी में लग जाय।

फूलों से छाये हुए उस बाग में अनाथी मुनि आये हुए थे। यहीं पर राजा श्रेणिक की उन से भेंट हुई थी। इस कथन में बहुत कुछ रहस्य भरा है। कोई पूर्ण पुरुष ही पूरी तरह वर्णन कर सकता है। मैं अपूर्ण हूं अतः मेरा वर्णन भी अपूर्ण होगा।

फूल और मनुष्य का कैसा निकट का सम्बन्ध है यह बात वैज्ञानिक जानते हैं। मैं वैज्ञानिक नहीं हूं किन्तु वैज्ञानिकों के विचार सुनकर तदनुसार कुछ कहना चाहता हूं। मैंने जो सुना है उसके विरुद्ध यदि कोई बतायेगा तो उसे मानने को मैं तय्यार हूं।

फूलों में अनेक रंग होते हैं। वैज्ञानिकों के कथनानुसार रंग की विभिन्नता सूर्य की किरणों से सम्बन्ध रखती है। सूर्य किरणों से ही फूलों में तरह तरह के रंग आते हैं। इस

पर प्रश्न होता है कि सूर्य किरणें सब फूलों पर समान रूप से पड़ती हैं फिर विभिन्नता का क्या कारण है। वैज्ञानिक उत्तर देते है कि किरणों को ग्रहण करने में विभिन्नता है अतः रंगों में भी विविधता है। जो फूल सूर्य किरणों ग्रहण कर के स्वयं में से अधिक से अधिक त्याग करता है वह सफेद बनता है जो कुछ कम त्याग करता है वह गुलाबी होता है। जो उससे भी कम त्याग करता है वह पीला होता है। इसके बाद लाल रंग होता है। जो लेता ज्यादा है और त्यागता कम है वह हरा होता है। जो फूल सूर्य की किरणों को खा जाता है त्यागता कुछ भी नहीं वह काला होता है। जो अधिक से अधिक त्याग करता है वह सफेद और जो कुछ भी त्याग नहीं करता वह काला होता है। काला रंग किरणों को खा जाता है, यह बात फोटो के केमेरे पर काला कपडा डाला जाता है, इससे भी सिद्ध होती है। काला कपड किरणों को भीतर नहीं पहुचने देता जिससे फोटो अच्छा आता है।

मण्डीकुक्ष बाग में फूलों का वर्णन करके शास्त्रकार ने यह बतलाया है कि किरणों को ग्रहण करने और त्याग ने का तारतम्य क्या है। जैन शास्त्रों को किसी अभ्यासी गुरु से समझा जावे तो मालूम होगा कि उनमें क्या क्या सामग्री भरी पड़ी है। आज के लोग पोथिया पंडित बन जाते हैं और कहने लगते हैं कि जैन शास्त्रों में कुछ नहीं है। वास्तव में ऐसे लोगों ने शास्त्र समझने का प्रयत्न ही कब किया है। केवल पोथियां पढलेने से ही ज्ञान नहीं होता। ज्ञान प्राप्त करने के लिए किसी योग्य गुरु की शरण लेना चाहिए। एक कवि कहता है—

पढ़ के न बैठे पास अक्षर बांच सकै,
बिना ही पढ़े कहो कैसे आवे फारसी।
जौहरी के मिले बिन हाथ लग लिए,
फिरो, बिना जौहरी वाको संशय न टारसी।
वैद हू के मिले बिन बूटी को बतावे कौन,
भेद बिन पाये याकी औषध है छारसी।
सुन्दर कहत मुख रंच हू न देख्यो जाय,
गुरु बिन ज्ञान जैसे अन्धेरे में आरसी॥

पुस्तक में अक्षर लिखे हैं मगर गुरु के बताये बिना फारसी भाषा कैसे आ सकती है। हाथ में नग है मगर बिना जौहरी की सहायता के उस की कीमत कैसे आंकी जा सकती है। बूंटियां तो अनेक हैं मगर किसी अनुभवी वैद्य की सहायता के बिना उनका तत्त्व कैसे समझा जा सकता है। बिना गुरु के ज्ञान प्राप्त करना वैसा ही है जैसा अंधेरे में काच लेकर मुँह देखना। आज कल लोग पुस्तकों से ही ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। पुस्तकों के नाम से बहुत सारा गंदा और घासलेटी साहित्य भी प्रचलित हो गया है। प्रत्येक बात गुरु मुख से समझी जाय तो भ्रम में पड़ने का कोई कारण नहीं है।

जैन शास्त्रों में अनेक स्थान पर लेश्याओं का जिक्र है। लेश्या दो प्रकार की है—१ द्रव्य लेश्या २ भावलेश्या। लेश्यताति लेश्या। जैसे गोंद दो कागजों को चिपकाता है वैसे आत्मा और कर्मों को जो चिपकाती है वह लेश्या है किसी आचार्य के मत से योग प्रवृत्ति भी लेश्या है। अर्थात् मन वचन और काया की प्रवृत्ति लेश्या है। किसी के मत से **"कृष्णादि द्रव्य साचिव्यादात्मनः परिणाम विशेषः लेश्या"** कृष्णादि द्रव्यों के संयोग से आत्मा में जो परिणाम विशेष होताहै वह लेश्या है। द्रव्य भाव दोनों लेश्याएं छ.२ प्रकार की हैं।

१ शुक्ल लेश्या २ पीत लेश्या ३ तेजो लेश्या ४ कापोत लेश्या ५ नील लेश्या ६ कृष्ण लेश्या। शुक्ल का रंग सफेद होता है। पीत का पीला, तेजो का लाल, कापोत का बैंगनी, नील का नीला और कृष्ण का काला होता है।

अब हमें फूल और लेश्या का साम्य समझना है। यह आत्मा प्रकृति से कुछ न कुछ ग्रहण करता ही है। हवा, पानी, गरमी आदि प्राकृतिक पदार्थों की सहायता के विना आत्माका निर्वाह नहीं हो सकता। जैसे फूल किरणें लेताहै वैसे आत्मा भी प्राकृतिकसहायता लेता है। जो आत्मा जितनी सहायता लेता है उसकी अपेक्षा अधिक त्याग करता है वह शुक्ल लेश्या वाला है। कई आत्मा स्वार्थ में इतनी रची पची रहती है कि अपने स्वार्थ के सामने वे दूसरों का खयाल ही नहीं कर सकती। किन्तु कई आत्मा परमार्थ में इतनी मशगूल रहती है कि उन्हें अपने प्राणों का भी ध्यान नहीं रहता। सब से अधिक परमार्थ करने वाला शुक्ल लेश्या धारी होता है और जो केवल लेना ही जानता है देना कुछ नहीं जानता वह कृष्ण लेश्या धारी है।

वर्ण के समान लेश्या में गन्ध, रस और स्पर्श भी है कोई कृष्ण लेश्या वाले व्यक्ति को सूंघकर यह पता नहीं लगा सकता कि इसमें अमुक लेश्या है। इसका पता लगाने का साधन जुदा है। मन का फोटो लिया जाता है मगर साधारण कैमेरे से नहीं। उसके साधन जुदा हैं। द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या का परस्पर सम्बन्ध है अतः द्रव्य लेश्या के समान भाव लेश्या को भी समझना चाहिए।

जैसे फूलों में सुधार किया जाता है वैसे लेश्या में भी सुधार होसकता है। आप भी अपनी लेश्या को सुधारने का प्रयत्न कीजिये। वस्त्र और खानपान के साथ भी लेश्या का सम्बन्ध है। भगवान महावीर ने साधुओं के लिए सफेद वस्त्रों का विधान किया है। यह बात रहस्य पूर्ण है। आधुनिक राष्ट्रीय पोषाक भी सफेद ही पसंद किया गया है। रंग के साथ भावों का सम्बन्ध है स्वाभाविक रंग से स्वाभाविक भाव पैदा होते हैं। भगवान ने खानपान के विषय में भी विधि बतलाई है। कौनसी वस्तुएं खाने योग्य है और कौनसी नहीं खाने योग्य है इसका विस्तृत विवेचन है। बहुत से भाई कहते हैं कि जीव रहित पदार्थ खाने योग्य हैं। किन्तु केवल जीव रहित होना ही भोजन की उपयुक्तता नहीं है। किस भोजन से कैसी प्रकृति बनती है यह मुख्य बात है। गीता में तामसी राजसी और सात्विक भोजन का विस्तृत वर्णन है। विकारी निर्विकारी आहार का वर्णन जैनागमों में भी है। तमोगुणी पदार्थों को जैनागमों में विगय अर्थात् विकृति कहा गया है। जो साधु आचार्य उपाध्याय के दिये बिना ऐसा आहार करता है उसे दण्ड आता है। दूध दही घी शक्कर आदि में जीव नही है मगर ये विगय हैं। खाने पर नियन्त्रण रख कर अपनी प्रकृति सतोगुणी बनाने से लेश्या में भी सुधार होता है।

आजकल बहुत से लोग लाल शरबत पीते हैं जो शराब का ही रूपान्तर है। कुरान हदीसों में भी कहा है कि जो वस्तु बुद्धि में विकार पैदा करती हो वह न खानी पीनी चाहिए। वह हराम है। देशकाल के अनुसार खाने पीने की वस्तुओं में थोड़ा परिवर्तन हो सकता है। मैंने कुरान में पढा है कि अल्ला ने जमीन और आसमान बनाकर इन्सान के खाने के लिए फल और वृक्ष बनाये। इससे मालूम पड़ता है कि इन्सान का आहार फलादि है। मास आदि नहीं। सब समझदार लोगोंने मास खाने का निषेध किया है और कहा कि अपने पेट को किसी की कब्र मत बनाओ।

सारांश यह है कि खान पान और पहनने का भावों परिणामों के साथ सम्बन्ध है अतः इस पर पूरा कण्ट्रोल रखना चाहिये । । हमारे पूर्वजों ने संयम पर इसी कारण भार दिया है । आज कल लेंडी फैशन चली है । फैशन से बडी हानि है । जैन सामायिक में कपडे उतार कर बैठले है और मुसलमान नमाज पढते वक्त सादे कपडे पहनते हैं । इस में यही रहस्य है खादी और विलायती कपड़ों में भी अन्तर है । खादी सादगी की पोषाक है जब कि विलायती कपडे अभिमान के । जिसकी आदत ही खराब हो वह बुरी वस्तु को भी अच्छी मानता है गाधीजी की लिखी आरोग्य तत्त्व दर्शक पुस्तक में देश विशेष के लोगों द्वारा विष्ठा खाने का जिक्र है । अमुक देश के लोग विष्ठा खा जाते हैं। एतावता विष्ठा भक्ष्य नहीं हो जाता । जयपुर के भगी टट्टी को सडाकर उसमें उत्पन्न कीडों का रायता बनाकर बड़ी खुशी से खा जाते हैं । पनवेल में मछलियों की दुर्गन्ध से मैं हैरान था मगर सुना कि मछली खाने वाले इन्हें बडे शौक से खाते हैं । खाने वाले खाये मगर बुरी वस्तु बुरी ही रहेगी । खान पान पर विचार कीजिये जिससे आपके खयालात भी सुधरे । आपके भावों में महान् गुण उत्पन्न हो ऐसी कोशिस कीजिये । आत्मा के सुधार के लिए खान पान का सुधार आवश्यक है । श्रेणिक राजाने मंडीकुक्ष बाग का सुधार करवाया था वह पूर्ण चौकसी रखताथा कि बाग के फल फूलों में दोष न आने पायें । आत्मा का सुधार तो अनाथी जैसे महात्माओं की कृपा से ही हो सकता है । जो अपनी लेश्या सुधार रहा है देवता भी उसे नमन करते हैं ।

देवावि तं नमंसन्ति जस्सधम्मेसयामणो ।

जिसका मन सदा धर्म में लीन रहता है उसको देवता भी नमस्कार करते हैं । आत्मा में देवों को झुकाने की भी शक्ति मौजूद है ।

सुदर्शन चरित्र-

अब सुदर्शन का चरित्र सुनाया जाता है । किस प्रकार भावों में शुद्धता लाकर आत्म कल्याण किया जा सकता है ।

प्रमुदित भावे सेठ कहे, धन मुनि दर्शन जो पाया ।
अपूर्ण मंत्र को पूरण करके, शुद्ध भाव सिखलाया रे ।। धन० ।।६।।

मुनिराज ने सुभग को कोई प्रत्यक्ष उपदेश नहीं दिया था । सुभग ने उनकी चेष्टाएं देखकर तथा मत्र सुनकर कुछ ग्रहण कर लिया था । जिनदास सेठ सुभग को धन्य-

वाद देता है. । तेरा अहो भाग्य है जो तूने ऐसे लब्धीधारी मुनि के दर्शन किये हैं । जो बात घर बैठे नहीं होती वह जंगल में हो गई है । यदि मुझे श्रीकृष्ण द्वारा गौएं चराने का महत्त्व ज्ञात होता तो मैं खुद गायें चराने आता और ऐसे महात्मा के दर्शन करता । इस वक्त गोरक्षा के काम भुलाये जा रहे हैं । बल्कि बहुत से लोग ऐसे कामों में बाधक भी होते हैं । एक भाई ने गोरक्षा के लिए भूमि दान किया था । उसके मर जाने के बाद उसके वारिस ने कहा कि भूमि दान मरने वाले के साथ मर गया । अब उस भूमि का मैं मालिक हू । मुकद्दमा चल रहा हैं । वकीलों की बन आई है । अच्छे काम के लिए दान की हुई भूमि का महत्त्व छोड़ देने में क्या हर्ज है । मुख से बातें करने मात्र से गौरक्षा नहीं हो जाती । यदि आप लोग विचार पूर्वक यत्न करें तो एक भी गाय न कटने न पाये । सुना है मोटेमियां ने यह जाहिर किया था कि गौरक्षा करना हिन्दु और मुसलमान दोनों का कर्त्तव्य है । गाय हिंदुओं को मीठा और मुसलमानों को कडुआ दूध नहीं देती । सबको समान रूप से दूध देती है और पोषण करती है । लोग अपने बगलों की चिन्ता करते है मगर गाय की चिन्ता नहीं करते ।

सुभग बड़ा राजी हो रहा था । जब सेठने उसकी सराहना की तब उसकी खुशी का पार न रहा । पाप के कामों की सराहना करने से पाप वृद्धि होती है और धर्म कार्यों की सराहना करने से धर्म की । आज कल कुछ युवकों ने तो केवल निन्दा करने का ही काम अपना रखा है । वे कहते है हमारे दिल में जो धधक होगी वही काम करेंगे । युवकों से मेरा कहना है कि युवावस्था के जोश में होंश गुमाकर काम मत करना । होंश कायम रखकर विचार पूर्वक कार्य करने से सफलता चेरी बन जाती है । बेसमझी से आपकी धधक कहीं आपको गिरा न दे इसका ध्यान रखना । पहले के श्रावक जहां कहीं मिलते कहते थे । अययाउसो ?

अयमाउसो ! यह निग्रन्थे पावयणे अट्ठे । अयमाउसो ! निगन्थे पावयणे परमट्ठे । सेसे अणट्ठे ।

हे आयुष्मन् ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन अर्थ है, यह निर्ग्रन्थ प्रवचन परमार्थ है । इसके सिवा सब अनर्थ है । इस प्रकार धर्म की प्रशसा करते थे । हज जाकर आने वाले से मुसलमान भाई इसी लिए मिलते हैं । वे कहते हैं हम हज करने के लिए नहीं जा सके । तुम्हें धन्य है जो तुम हज करके आ सके हो । जो लोग व्याख्यान सुनने के लिए नहीं आये हैं वे व्याख्यान सुनने वालों की प्रशसा किया करें और व्याख्यान सुनने वाले हमारी

सुनाई हुई बातें सुनाया करें तो हमारा काम कितना हल्का हो जाय । तथा उपदेशक ही उपदेशक हो जाय ।

सुभग ने सेठ से कहा कि आकाश में उडते समय वे मुनि कुछ मंत्र बोल रहे थे । आप मुझे वह मंत्र सिखा दीजिये ताकि मैं भी आस्मान में उड़ा करूं । सेठ ने पूछा वह कौनसा मंत्र था जरा बताओ । 'अरिहंताण, नमो अरिहंताण' ऐसा वे बोलते थे । सेठ समझ गया और उसे सिखाने लगा--

नमो अरिहंताणं
नमो सिद्धाणं
नमो आयरियाणं
नमो उवज्झायाणं
नमो लोए सव्व साहुणं
ऐसो पंच नमोकारो, सव्व पाव पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलम् ॥

कहो यही वह मंत्र है न? जो साधु महात्मा बोले थे । जी हां, यही मंत्र था सुभग ने उत्तर दिया । सेठ ने कहा तू ने अच्छी बात याद रखी ।

मित्रो ! एक दिन मैं जंगल गया था । रास्ते में एक फकीर बोल रहा था 'याद से आबाद, भूल से बरबाद' । वह किसकी याद के लिए कह रहा था । धन पुत्र स्त्री आदि को तो लोग खूब याद रखते हैं । वह परमात्मा की याद के लिए कह रहा था । जो परमात्मा को नहीं भूलता उसके हाथ से कभी पाप नहीं हो सकता । वह बरबाद नहीं होता ।

बिस्मिल्लाहि रहमाने रहीम

अर्थात् अल्ला के नाम के साथ शुरू करता हूँ । जो भगवान् का नाम याद रखता है उससे बुराई नहीं हो सकती । क्या वह किसी के गले पर छुरी चला सकता है । क्या कोई ठाकुर साहिब राजकोट का नाम लेकर किसी के गले पर छुरी चला सकता है । या चोरी कर सकता है ।

कई लोग कहते हैं नाम से क्या होता है। मैं कहता हू नाम के बिना काम नहीं होता। अदालत में जाकर कोई जज महोदय से केह कि मुझे दस हजार रुपये लेने हैं सो दिलवावें। बिना नाम के जज किससे रुपये दिलाये। अतः नाम याद रखना बहुत जरूरी है।

नाम लेने में भी अन्तर है। एक तो सम्बन्ध जोड कर नाम लिया जाय और दूसरा बिना सम्बन्ध के नाम लिया जाय। उदाहरणार्थ समझिये कि एक तो वर या कन्या एक दूसरे का नाम सगाई होने के पहले लेते हैं और एक सगाई होने के बाद। दोनों समय के नाम लेने में कितना अन्तर हो जाता है। बाजारू रिती से ईश्वर का बार बार नाम लेने में और उसके साथ सम्बन्ध जोड़कर नाम लेने में बडा फर्क है। परमात्मा से तादात्म्य सम्बन्ध जोड़कर नाम लिजीये, बडा आनन्द आयगा।

नवकार मत्र सिखाकर सेठ जिनदास सुभग से कहने लगे कि इस मत्र का बडा प्रभाव है। भगवान् पार्श्वनाथ ने जहरीले साप को यह मत्र सुनाया था। इसके प्रभाव से वह धरणेन्द्र देव हुआ।

एक चोर को शूली की सजा दी गई थी। वह शूली पर लगे हुए था कि उसे प्यास लगी। राजा के डर से कोई उसके पास न जाता था। एक दयालु सेठ उधर से निकला। चोर ने कहा सेठजी मैं प्यास के मारे मर रहा हू। शूली से जितनी वेदना नहीं हो रही है उतनी प्यास के मारे हो रही है। सेठने कहा मैं पानी लेने के लिए जाता हू। मगर न मालूम मेरे पहुँचने के पूर्व ही तेरी मृत्यु हो जाय। अतः तब तक तू नमो अरिहन्ताण आदि मत्र बोलते रहना ताकि मर जाय तो तेरी सद्गति हो जाय। वह चोर नमो अरिहन्ताण आदि मत्र भूल गया मगर बोलने लगा—

आणु टाणु कछु न जानू सेठ वचन परमाणू।

जो कुछ सेठने कहा वह प्रमाण है। सेठ पानी लेकर आया तब तक वह मर चुका था। नवकार मत्र के प्रभाव से वह देव हुआ। उधर चोर को पानी पिलाने की कोशिश करने के कारण राजा के आदमियों ने सेठ को पकड लिया और राजा के सामने उपस्थित किया। राजा ने राजाज्ञा भग करने के कारण उसे शूली की सजा दी। किन्तु देव बने हुए चोर के जीव ने अपना आसन कपायमान होने से आकर उसकी रक्षा की। शूली का सिंहासन बन गया।

नवकार मन्त्र का प्रभाव बताने के लिए जिनदास सेठ एक और कथा सुभग को सुनाते हैं। एक श्रीमति नवकार मन्त्र का बहुत जाप किया करती थी। उसकी सासू उसके इस कार्य से बहुत अप्रसन्न रहा करती थी। एक दिन अपने बेटे से शिकायत की कि बहू मेरा कहना नहीं मानती है और दिन भर नवकार मन्त्र जपती रहती है। इस से यह मन्त्र छुडा दे मगर उसने न छोड़ा। श्रीमती ने कहा पति देव ! इस मन्त्र के प्रभाव से ही मै सासूजी के कठोर वाक्य बाण सहन करती हू। यह मन्त्र क्रोध पर काबू करना सिखाता है। 'नमो अरिहन्ताणं का अर्थ है जिन्होंने अरि अर्थात् काम क्रोध लोभ आदि शत्रुओं को हन्ताण यानी नष्ट कर दिया है उनको नमस्कार हो इस मन्त्र में क्या बुराई है। आप मेरी परीक्षा कर सकते हैं कि मैं इस मन्त्र के प्रभाव से क्रोध को जीतती हू या नहीं।

श्रीमती के पति ने सोचा इस प्रकार रोज रोज घर में क्लेश होना ठीक नही है, इसको मार डालना ही अच्छा है। एक दिन एक गारुडी साप लेकर उधर से निकला। उसने सोचा यह अच्छा उपाय है। लोग समझेंगे सांप काटने से मर गई है। गारुड़ी से साप लेलिया और एक मटके में बन्द करके रख दिया। रातको जब श्रीमती अपने पति के पास गई तब कहा पति देव ! क्या आज्ञा है। पति ने कहा तू आज्ञा आज्ञा कहती है मगर मेरा कहा तो करती नही है। श्रीमती ने कहा ऐसा तो मैंने कभी नहीं किया। मैं सदा आपकी आज्ञाएँ पालन करती रही हूँ। पति ने कहा, जा उस घड़े में फूलों की माला रखी है, उठा ला और मुझे पहना दे। नवकार बोलती हुई चट से वह गई और माला लाकर उसे पहना दी। पति के आश्चर्य का पार न रहा। वह नवकार मन्त्र के प्रभाव से बहुत प्रभावित हुआ।

मंत्र बड़ो नवकार, सुमरलो, मंत्र बड़ो नवकार।
कृष्ण भुजंग को घाला घट में, दिया मारण को हार।
नाग मिट के भई फूल की माल, मंत्र जपा नवकार ॥ सुमरलो ॥

श्रीमती के पति ने अपनी माता से कहा कि मां ! तू बहू से झगड़ा करना छोड़दे वह साधारण स्त्री नहीं है। कोई देवी है। मा ने कहा तू इसके चक्र में फस गया है। पुत्रने मन में सोचा माता ऐसे न मानेगी इसे भी चमत्कार दिखाना पड़ेगा। माता के सामने ही कहा, श्रीमति जाओ उस घड़े में से माला उठा लाओ और मेरी मा को पहिनादो। श्रीमति

के जाने के पहले माता को बता दिया था कि घड़े में क्या है। माता घड़े में साप देख कर डर गई थी। मगर श्रीमती तुरत गई और घडे में हाथ डालकर माला लाई। नवकार मन्त्र के प्रभाव से जब श्रीमती साप को हाथ लगाती थी तब वह माला हो जाता था और जब मा बेटे देखते तब साप ही दिखाई देता था। लड़के ने माता को समझाया कि माता नवकार मन्त्र के प्रभाव से ही यह साँप माला बन जाया करता है। जिस नवकार मन्त्र को छुड़ाने के लिए आप जिद्द पकडे हुइ हो उसका यह प्रभाव है। हम सब क्रोध किया करते हैं मगर श्रीमती कभी किसी के प्रति क्रोध नहीं करती है यह भी इस मन्त्र का ही प्रभाव है। श्रीमती के घर का क्लेस उसदिन से शान्त हो गया। सब आराम से रहने लगे।

सुभग नवकार मन्त्र के प्रभाव की कथाएँ सुनकर बहुत खुश हुआ। उसे नवकार मन्त्र याद होगया था अतः अपने को निर्भय अनुभव करने लगा। आगे क्या होता है यह अवसर होने पर कहा जायगा।

राजकोट
१७—७—३६ का
व्याख्यान

—: मुनि का प्रभाव :—



श्री अभिनन्दन दुःख निकन्दन वंदन पूजन योग जी ॥ प्रा० ॥



भक्त भगवान् की प्रार्थना किस भाव से करते हैं यह बात मैं बारंबार कहता हूँ। यह विषय इतना लम्बा और सरस है कि जितना अधिक इस पर विचार किया जाय, उतना ही चमत्कार मालूम होगा।

इस प्रार्थना में परमात्मा को दुःखनाशक मानकर उससे प्रार्थना की गई है कि हे प्रभो! तू मेरे दुःखों का भी नाशकर। प्रत्यक्षवादी भाई दलील करते हैं कि यदि दुःखनाश के लिए ही प्रार्थना की जाती है तब तो प्रार्थना करने की कोई आवश्यकता नहीं है। दुःखनाश अन्य उपायों के द्वारा भी शक्य है। जो परमात्मा हमें दिखाई [illegible] केवल श्रद्धा के बल पर उससे दुःखनाश करने की प्रार्थना करना [illegible]

दुःख मिटाने के लिए डाक्टर मौजूद है । मानसिक दुःख मिटाने के लिए आमोद प्रमोद की सामग्री है मानापमान का दुःख होतो वकील बेरिस्टर की शरण में जानेसे दुःख दूर हो सकता है । स्त्री पुत्र की आवश्यकता हो तो विवाह किया जा सकता है । मतलब यह कि दुःख मिटाने के प्रत्यक्ष साधन मौजूद है फिर अप्रत्यक्ष परमात्मा से प्रार्थना करने में क्या लाभ है। परमात्मा से ऐसी प्रार्थनादि कहना वृथा है ।

श्री अभिनंदन दुःख निकन्दन वन्दन पूजन योग जी ।
आशा पूरो चिन्ता चूरो आपो सुख आरोग जी ॥

इस दलील के उत्तर में ज्ञानियों ने बहुत विचार किया है । जिन साधनों या वैद्य डाक्टर और वकीलों को दुःख मिटाने का कारण माना जाता है वे दुःख मिटाने के वास्तविक कारण नहीं है । ऐसा निश्चित नहीं है कि इन उपायों को काम में लेने पर दुःख मिट ही जाते हों । दुःख मिट जाने पर वापस भी हो सकते है । डाक्टरों के द्वारा रोग घटने के बजाय बढ भी सकता है । वकीलों से पोजिशन की रक्षा होने के स्थान पर पोजिशन बिगड भी सकती है । स्त्री और पुत्र सुख देने के बजाय दुःख भी देते हैं । ऐसे अनेक दृष्टान्त मौजूद है । ये सब साधन दुःख मिटाने के लिए पूर्ण कारगर कारण नहीं है । एक मात्र परमात्मा की शरण ही अचूक साधन है जिससे दुःख मिट जाते है वापस कभी नही होते ।

बहुत से भाई मानसिक शान्ति प्राप्त करने के लिए पुस्तकों का वाचन करते है । मेरा कहना है कि केवल पुस्तको के भरोसे पर भी नहीं रहना चाहिए बहुत सी पुस्तके अच्छी होती है जिनसे आत्म शान्ति का उपाय मालूम पड़सकता है और बहुत सी खराब भी होती है जिनसे अशान्ति और दुःखके कारण बढ़ जाते है । अतः ज्ञानियों के वचन पर विश्वास करिये । वे कहते हैं जो सुखदुःख कर्म के निमित्त से होते हैं वे अस्थाईक्षणिक होते हैं । स्वर्ग और नरक भी अस्थायी है । स्वर्ग सुख की आशा भी छोड़ देना चाहिए । परमत्मा की शरण लेने से ही स्थायी शान्ति मिलती है और हमेशा के लिए दुःख नाश हो जाता है ।

आप कहेंगे महाराज ! यह तो आध्यात्मिक सुख की बात हुई । हम तो सांसारिक जीव हैं । हमें भौतिक सुख की आवश्यकता है । उसकी कुछ बात बताईये । मेरा कहना है भौतिक सुख, आध्यात्मिक सुख का दास है । आप आध्यात्मिक सुख के लिए ही यत्न कीजिये । धान्य के साथ जैसे भूसा पैदा होता है वैसे आध्यात्मिक सुख के साथ भौतिक

सुख निश्चित् है। आप भूसे के लिए यत्न मत कीजिये। धान्य के लिए यत्न कीजिये तो भूसा तो मिलेगा ही। भूसे का यत्न करने पर मिले और न भी मिले। परमात्मा की शरण में जाने से आप में एक आकर्षण शक्ति पैदा होगी जिससे समस्त भौतिक चीजें आपके पास खिंचकर चली आयेंगी किन्तु तब आप उनको तुच्छ मानने लगेंगे। किसी आदमी को एक रत्न मिला। उस रत्न में प्रत्यक्ष रुप से खाने पीने आदि की वस्तुए न दिखाई देती थी मगर उसके प्रभाव से सब कुछ मिल जाता था। आध्यात्मिक सुख मिलने पर भौतिक सब सुख मिल जाते हैं। आध्यात्मिक सुख प्रभु शरण से ही मिल सकता है।

उत्तराध्ययन सूत्र के बीसवें अध्ययन में आत्म कल्याण का स्पष्ट मार्ग बताया हुआ है। उस मार्ग पर चलने की कोशिश की जाय तो सांसारिक सुख के लिए किये जाने वाले सकल्प विकल्प मिट जायं और आध्यात्मिक सुख प्राप्त हो जाय। आत्मा भ्रम जाल में फसकर कई बार भौतिक वस्तुओं के कारण अपने को नाथ मानने लगता है। होता यह है कि वह वस्तुओं में बुरी तरह फंस जाता है और उल्टा उनका दास बन जाता है। जो वस्तु नाथ बनाने वाली है उसे वह भूल जाता है राजा श्रेणिक भी इस विषय मे भूला हुआ था। उसने महा मुनि अनाथी के उपदेश से अपनी भूल को किस प्रकार दूर किया यह बात आप इस अध्ययन से समझिये।

बाग का वर्णन कर चुकने के बाद आगे शास्त्रकार कहते हैं:—

तत्थ सो पासई साहुं, संजयं सुसमाहियं।
निसन्नं रुक्खमूलम्मि, सुकुमालं सुहोइअं ॥ ४ ॥

राजा श्रेणिक उस बाग में विहार यात्रा के लिए आया था। वह किस ठाट बाट के साथ आया होगा इस बात का शास्त्रकार ने वर्णन नहीं किया है। मगर हम अनुमान लगा सकते हैं कि वह राजसी ठाट के साथ आया होगा। वह बगीचे में इधर उधर घूमता हुआ फूलों की खुशबू ले रहा था। इतने में उसे एक सयत, सुसमाहित, सुकुमार, सुशोभित और वृक्ष के मूल में निषण्ण साधु दिखाई दिए। उनका चेहरा इस बात की गवाही दे रहा था कि वे सयम धारी और समाधिवन्त थे उनकी सुकुमारता और शरीर शोभा भी स्पष्ट दिखाई दे रही थी। मुनि के बाग में विराजमान होने से बाग में भी विशेषता आ गई थी। शास्त्र कहता है, महात्माओं के सयम का पता उनके आसपास का वातावरण दे देता है।

जहां वे विराजते हैं वहां वैर भाव नहीं रहता। आपस में वैर रखने वाले जीव भी निर्वैर होकर विचरने लगते है। शेर और बकरी तक साथ रहने लगजाते हैं। भयभीत होने वाले प्राणी निर्भय होजाते है। चैतन्य प्राणियों के अलावा जड़ जगत् पर भी महात्माओं का प्रभाव पड़ता है।

राजा श्रेणिक विचार करने लगा आज बगीचे का वातावरण क्यों बदला हुआ मालूम होता है। मैं नित्य यहां आया करता हू मगर आज कुछ नवीनता अनुभव हो रही है। क्या मेरा मन बदल गया है। अथवा बगीचे के सब प्राणी और वृक्षादि बदल गये हैं। वृक्ष के नीचे एक मुनिराज को देखकर वह विचार में डूब गया। साधु का और वृक्ष का क्या सम्बन्ध है जिससे शास्त्रकार ने दोनों को जोड दिया है। यदि परस्पर तुलना की जाय तो ज्ञात होगा कि साधु और वृक्ष में बहुत साम्य है। वृक्ष पर शीत और ताप गिरते हैं। वह शांति पूर्वक अडिग खडा रहकर उन्हें सहता है। किसी से इस बात की फरियाद नहीं करता। आप कहेंगे 'वह क्या फरियाद करें, वह जड है। क्या हम भी उसके समान जड बन जाय'। आप वृक्ष के समान जड़ मत बनिये-मगर आपको शक्ति मिली है उसका कुछ तो उपयोग करिये। वृक्ष शीत ताप को सहन करता है। आप भी कुछ सहन करिये। आपको वह बहू पसन्द है या नहीं जो सासू के वचनों का आघात सह लेती है और सामने नही बोलती। यदि आघात सहने वाली बहू पसन्द है तो इसका अर्थ स्पष्ट होगया कि आघात सहन करना अच्छी बात है। जो सासुए अच्छी बहूए चाहती है उन्हें स्वयं अच्छा बनने की कोशिश करना चाहिये। वृक्ष जैसे पवन का आघात सहन करता है वैसे ही जो पुरुष संसार व्यवहार के अनेक आघात सहन करता है वह महान् बन जाता है। संसार में कैसे भी काण्ड हों सब अवस्थाओं में शहन शील रहना, कल्याण का मार्ग है।

महाभारत में कहा है कि युधिष्ठिर ने भीष्मपितामह का अन्तिम समय जानकर एक बात पूछी थी। धर्म और राजनीति की अनेक बातें जानने के बाद आखीरी शिक्षा लेने के लिए यह बात पूछी गई थी। भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा तुम जो कुछ पूछना चाहो पूछ सकते हो। मैं तुम्हारी तिजोरी में जितनी भी शिक्षा की बातें हो रखना चाहता हू। युधिष्ठिर ने पूछा किसी प्रबल शत्रु के आक्रमण करने पर राजधर्म का अनुसरण करते हुए क्या करना चाहिए। भीष्म ने दिया उत्तर कि यह बात समझाने के लिए मैं तुम्हें एक प्राचीन कथा सुनाना चाहता हू।

नदियों का स्वामी समुद्र सब नदियों पर बड़ा प्रसन्न था मगर वेत्रवती नदी पर अप्रसन्न था। समुद्र ने वेत्रवती नदी से कहा तू बड़ी कपटिन है। अन्य नदिया अनेक प्रकार का सामान लाकर मुझे भेंट करती हैं मगर तुने एक टुकड़ा भी मुझे नहीं दिया। तेरे में बेंत की लकड़िया बहुत होती है मगर कभी एक लकड़ी भी मेरे लिए नही लाई। जिसके पास जो वस्तु हो वह यदि अपने पति को न दे तो उसका व्यवहार अच्छा नहीं गिना जा सकता।

समुद्र का कथन सुन कर वेत्रवती ने उत्तर दिया कि इस में मेरा कोई कसूर नहीं है। जब मैं बडे जोर से पूर के साथ बहती हू तब बेंत की लकड़ियाँ नीचे झुक जाती हैं जिससे मेरा पानी उनके उपर होकर निकल जाता है। पूर निकल जाने के बाद वे लकड़ियां पुनः जैसी की तैसी खडी हो जाती है। जो मेरे सामने झुक जाते है उनका मैं कुछ भी बिगाड़ने में असमर्थ हू। हे समुद्र! अब आपही बताइये कि इस में मेरा क्या कसूर है।

समुद्र और वेत्रवती का यह सवाद सुनाकर भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा, जब प्रबल शत्रु चढ़कर आये तब वही करना चाहिये जो बेंतों ने किया। बेंत पानी का पूर आने पर, झुक जाती है मगर अपनी जड नहीं उखड़ने देती। इसी प्रकार शत्रु के आने पर नम्र होजाना चाहिए और जब उसका जोश ठण्डा हो जाय तब वापस अपनी मूल स्थिति में आजाना चाहिए। युधिष्ठिर! तुम अजातशत्रु हो अतः तुम्हारे लिए ऐसा प्रसग न आयेगा मगर यह शिक्षा दूसरों के लिए हितकारी होगी। युधिष्ठिर अजातशत्रु थे। इसी प्रकार वृक्ष भी अजातशत्रु है। युधिष्ठिर की अजातशत्रुता के विषय में सन्देह हो सकता है मगर वृक्षों की अजातशत्रुता के विषय में सन्देह को कोई स्थान नहीं है। किसी कारण से यदि एक आध डाली गिर जाय तो भी वृक्ष ऋतु के अनुसार फल फूल देता ही है। वृक्ष किसी के सामने अपना रोना नहीं रोता।

मनुष्यों पर पुत्रमरण आदि का दुःख तो होता ही है मगर रो रो कर वे दूसरा दुःख भी मोल लेलेते हैं। यदि मनुष्य ऐसे प्रसगों पर वृक्षों से शिक्षा ग्रहण कर लिया करें और शोक दु.ख की वृद्धि न करें तो कितना अच्छा हो। एक कवी कहता है—

रे मन वृक्ष की मति लेहुरे।
काटन वाले से नहीं वैर कछु, सिंचन वाले से नहीं स्नेह रे॥

कवि अपने मन को सम्बोधित करके कहता है हे मन ! तू वृक्ष की मति ग्रहण कर। वृक्ष अपने पर कुल्हाड़ी मारने वाले पर वैरभाव नहीं रखता और न पानी सिंचने वाले पर स्नेह भाव रखता है। सुख दुःख में समान भाव रखता है। न काहूं सो वैर न काहू सो द्वेष। यदि मनुष्य समाज वृक्ष से शिक्षा लेकर किसी से राग द्वेष न करे तो यह ससार कितना सुन्दर बन जाय।

कदाचित् कोई यह कहें कि यदि हम इतने सीधे और सरल बन जाय तो हमारे शत्रु हमें काट डाले और हमारा नामो निशान मिटा डाले। पर इस विषय में वृक्ष क्या कहता है सो सावधान होकर सुनिये। वृक्ष कहता है 'मैं किसी से भी नही कट सकता। जब कटता हू तब अपने ही वशज की सहायता से कटता हू। यदि कुल्हाड़ा में लकडी का हत्था न हो तो मै कट नहीं सकता' इसी प्रकार सामने वाला व्यक्ति आप से वैर भाव रखता है किन्तु यदि आप उसे अपने मन की सहायता न पहुँचाये तो वह आपका कुछ भी नहीं बिगाड सकता। आप अपना मन रूपी हत्था शत्रु को पहुँचाते हैं अतः वह आपका नुक्सान कर सकता है। वैर से वैर की वृद्धि होती हैं। यदि हम में सामने वाले के लिए बुरी भावना नहीं है किन्तु सद्भावना है तो सामने वाले की ताकत नहीं है कि वह अपने दुष्ट परिणामों का हम पर असर कर सके। उसकी दुष्ट भावना का असर हम तक नही पहुँच सकता बशर्ते कि हम प्रतिवैर करके उसके भावों को उत्तेजित न करें।

इस प्रकार सुशिक्षा देने वाले महान् उपकारी वृक्ष को भी मनुष्य काट डालते हैं यह कितनी कृतघ्नता है। घाटकोपर (बम्बई) में एक दिन मैं जगल गया था। वापस लौटते वक्त, जिस वृक्ष को मैं जाते वक्त हरा भरा और लहलहाता हुआ छोड़ गया था, कटा हुआ देख कर मुझे बहुत दुख हुआ। मेरे साथी सन्तों ने वृक्ष काटने वालों से पूछा कि इसे क्यों काट डाला तो उत्तर मिला कि इसके कोयले बनाकर चूना पकाया जायगा जिससे सेठिया लोगों के बंगले बनेंगे। आप लोगों के बगलों के लिए बेचारे वृक्षों की यह दशा होती है।

मैंने हदीसों मे पढा है कि कातिलुल शजर को महापाप माना गया है अर्थात् हरे वृक्ष को काटना बड़ा गुनाह माना है। हरा वृक्ष सबको शांति देता है। बगला सबको शांति

नहीं देता। मकान बनाने के लिए ही वृक्षों का विनाश नहीं हुआ है किन्तु इस मशिनरी युग में एंजिनों और मील आदि कारखानों को आहुती देने के लिए जगल उजाड़ कर दिए गये है। कही लकड़ी के कोयले जलाये जाते है और कही लकड़ी। मेवाड़ के कई कारखानों में लकड़ी जलाई जाती है। जिससे वृक्ष काटे जाते है। इस प्रकार इस यन्त्रयुग ने वृक्षों का बडा नाश किया है। वृक्षों के नाश के साथ प्रकृति का सौंदर्य और आपका सुख भी नष्ट हो रहा है।

मंडीकुक्ष बाग में वृक्ष के नीचे जो महात्मा विराजमान हैं वे वृक्ष के ही समान है। किसी भी प्रकार के आघात प्रत्याघात की वे शिकायत करने वाले नही हैं। आप भी ऐसे बनिये।

सुदर्शन चरित्र—

कल कहा था कि सेठ ने सुभग को नवकार मंत्र सिखा कर उसका महत्व समझाने के लिये कुछ कथाए सुनाई थी। श्रावक के सपर्क में रहने से रहने वाले का सुधार होना चाहिये। आज तो लोग अपने लड़के का भी सुधार नहीं कर सकते हैं। अपनी स्त्री को भी नहीं सुधार सकते। वकील बेरिस्टर और पंडित लोग अन्य कामों में समय दे देते है मगर घर की स्त्री के सुधार के लिये उन्हे समय नही मिलता। बल्कि यों कहते हैं कि वह अपनी गति से काम करे। हमें क्या। लेकिन श्रावक का कर्त्तव्य है कि जो गुण खुद में हो वह दूसरों को भी दे। उववाई सूत्र में श्रावक को धम्मक्खाई कहा है। धम्मक्खाई का अर्थ है धर्म का कथन करने वाला। श्रावक स्वय धर्म का अभ्यासी हो तभी दूसरों को धर्मका स्वरूप समझा सकता है। खरे खोटे गुरु की परीक्षा भी तभी की जा सकती है। घर सुधार पहले होना चाहिये।

शास्त्र में कहा है कि जितशत्रु नामक राजा के सुबुद्धि नामक प्रधान था सुबुद्धि श्रावक था। जितशत्रु धर्म को न मानता था मगर सुबुद्धि ने उसे धार्मिक बना दिया। श्रावक का लक्षण बताते हुए कहा है।

स्वारथ के सांचे परमारथ के सांचे, चित्त सांचे वेन कहे सांचे जैन मती है।
काहु के विरुद्ध नाहीं पराजय बुद्धि नाहीं, आतम गवेषी न गृहस्थ है न जती है॥

सिद्धि ऋद्धि वृद्धि दीसें घट में प्रकट सदा, अन्तर की लच्छी सो अजाची लच्छपति है।
दास भगवान के उदास रहे जगत सों, सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती है ॥

श्रावक सोचता है कि मै गृहस्थ नहीं हू और साधु भी नहीं हू। श्रावक अपना स्वार्थ साधता है मगर सत्य के साथ। दूसरो को पीडा पहुचाये बिना। यदि सत्य का घात होता हो तो श्रावक लाखों की सम्पात्ति की भी परवाह नही करता। कई लोग किसी भी प्रकार से विषय भोग की सामग्री इकट्ठा करने में ही भक्ति मानते है। मगर भक्ति भोग में नही है, त्याग में है।

श्रावक सत्य का उपासक होता है। कोई कहे कि उपाश्रय में रहे तब तक सत्य का उपासक रहे और दुकान पर जाये तब सत्य का आश्रय कैसे लिया जाय। किन्तु शास्त्र कहता है सत्य की खरी कसौटी तो लोक व्यवहार ही है। उपाश्रय में धर्म या सत्य का पाठ पढाया जाता है। उस पाठका अमली आचरण तो व्यवहारमें ही होना चाहिये। मदरसे में छात्र पाच और पाच दस सीख और दुकान पर आकर पाच और पाच ग्यारह बताने लगे तो कैसे काम चले। क्या वह शिक्षा सच्ची गिनी जा सकती है? कदापि नही। धर्म स्थानक में सत्य अहिंसा की शिक्षा ली जाय और बाहर जाकर बाजार में सफेद झूठ का व्यवहार किया जाय तो धर्म की हसी कराना है।

श्रावक लोग बारह व्रत ग्रहण करके व्यवहार में उसका पालन करते है। कई लोग दलील करते है कि '**कन्नालीए**' अर्थात् कन्या सम्बन्धी गोवालीए—गाय सम्बन्धी और भोमालीए—भूमि सम्बन्धी झूठ न बोलना इतना अर्थ ठीक है। व्यवहार में यह निभ भी सकता है। मगर कन्या, गाय और भूमि को उप लक्षण बनाकर मनुष्यमात्र, पशुमात्र और भूमि से उत्पन्न सम्पूर्ण पदार्थों के विषय में झूठ न बोलना, कैसे निभ सकता है। दलील करने वालों की मशा है कि व्रतों में कुछ छूट होनी चाहिए। मगर ज्ञानी कहते है यदि कन्या के विषय में झूठ बोलना पाप है तो वर या अन्य किसी के विषय में झूठ बोलना कैसे धर्म होजायगा। झूठ मात्र पाप है। श्रावक को इसके लिए अपने आप पर काबू करना ही चाहिए। यदि यह कहा जाय कि विना झूठ बोले व्यापार करना सभव नही है तो यह मिथ्या धारणा है यूरोप के लोग सत्य के साथ अपना व्यापार चला सकते हैं तो आप क्यों नहीं चला सकते। बल्कि जो सत्य पूवर्क—व्यापार करता है उसका व्यापार अच्छा चलता है। असत्य के विना काम चल सकता है किन्तु सत्य के विना काम नही चल सकता।

जितशत्रु राजा को धर्म की बातें अच्छी न लगती थी। मगर सुबुद्धि प्रधान राज्य का काम सभालता हुआ भी धर्म का पालन करता था। एक दिन राजा और प्रधान दोनों साथ में हवा खाने निकले, मार्ग में एक खाई के सडे हुए पानी से बडी दुर्गन्ध निकल रही थी। राजा घृणा-भाव दिखाता हुआ झट से निकल गया। सुबुद्धि ने कहा, राजन्! हमारी कमी के कारण ही यह पानी दुर्गन्ध युक्त है। राजा ने कहा प्रधान! दुर्गन्ध सुगन्ध कैसे हो सकती है। प्रधान ने बात को वहीं छोड़ कर मन में नक्की कर लिया कि राजा को यह बात प्रत्यक्ष करके दिखानी चाहिए। उसने अपने एक खानगी नौकर से उस खाई का सडा पानी एक घड़े में भरवाकर मगवाया और उसमें क्षारादि द्रव्य डालकर एक घड़े से दूसरे में और दूसरे से तीसरे में, इस प्रकार ४९ दिन तक उंडेल कर उसे शुद्ध किया। फिर राजा की पनिहारी को एक कलश भर करके दिया और कह दिया कि आज राजा जब भोजन करे तब पीने के लिए यही पानी रखना, राजा ने पानी पीकर पनिहारी से कहा कि आज पानी बहुत अच्छा है। सदा ऐसा ही क्यों नही लाया करती। पनिहारी ने कहा महाराज! यह पानी प्रधानजी के यहां का है। प्रधान को बुलाकर राजा ने उपालभ दिया कि तुम अच्छा पानी पीते हो और हमारे लिए उसका प्रबन्ध नही करते यह कितनी भद्दी बात है। प्रधान ने कहा यह तो पुद्‌गलों का स्वभाव है कि बुरे के अच्छे और अच्छे के बुरे बन जाते हैं। उस दिन जिस खाई के पानी की दुर्गन्ध के मारे आप ने नाक बद कर लिया था, यह वही पानी है जिस का आप आज बखान कर रहे हो। महाराज! किसी पर घृणा करने से उसका सुधार नही हो सकता। मगर उसे सुधारने का भरसक प्रयत्न करने से वह सुधर सकता है। पानी का सुधार हो सकता है तो मनुष्य का क्यों नही।

राजा ने प्रधान की अक्ल होंशियारी से प्रसन्न होकर कहा कि तू मुझे प्ररूपित धर्म सुना। प्रधान ने कहा महाराज! पानी की तरफ क्या देखते हैं अपनी आत्मा की ओर देखिये। वह भी पानी के समान दुर्गन्ध युक्त है। उसे शुद्ध बनाने का प्रयत्न करना चाहिए, मूल खराब होने से सारा वृक्ष खराब होता है। आत्मा सब का मूल है अतः प्रथम उसे सुधारना चाहिए।

कहने का साराश यह है कि श्रावक दूसरों को इस प्रकार सुधारा करते हैं। जो खुद सुधरे हुए होंगे वही दूसरों को सुधार सकते हैं एक फारसी के शायर ने कहा है 'अपने दिलके कोट में बदी को स्थान मत दो, नेकी को दो'।

सुभग नवकार मन्त्र सीखकर खाते, पीते, उठते, बैठते हर वक्त उस की रट लगाने लगा। भोले लोगों में विश्वास अधिक होता है। सुभग एक भोला और सीधा साधा लड़का था। दुनिया के गुढ़ माया जाल से एकदम अपरिचित था। सुभग नवकार मन्त्र के कारण अपने आपको निर्भय अनुभव करने लगा। 'अब मैं कहीं भी जाऊं, मुझे भूत प्रेत डाकिन शाकिन आदि किसी का भी कोई भय नहीं है मैं निर्भय और अमर हूँ'।

गाधीजी की अन्य बातों में चाहे किसी का मतभेद हो मगर उनके सत्य के विषय में किसी को भी सदेह नहीं है। उन्होंने अपनी आत्म कथा में लिखा है कि 'मुझे मेरी धाय माताने यह बात सिखाई थी कि राम का नाम लेने से किसी तरह का भय न रहेगा। मेरे कोमल दिमाग में उसके उस कथन पर विश्वास जम गया था अतः इस प्रकार का भय नही होता था।

आप लोग भी नवकार मंत्र जानते हैं। आपके हृदय में भूत प्रेत आदि का भय तो नहीं है। यदि आपसे कोई स्मशान में रहने के लिए कहे तो आप इन्कार तो नही करेंगे? आपकी कल्पना का भूत और शास्त्र कथित देवयोनि का भूत जुदा जुदा है। आपका कल्पित भूत तो एक थप्पड में भाग जाता है। एक ताविज या गंड़ा बाध लेने से भी भाग जाता है। शास्त्र वर्णित देव के लिए तो कहा गया है 'क्रोड चक्री एक सुर कह्यो।

अमेरिका में भूतों की लीला का ढोंग चला। दो मित्रो ने इसकी जांच करने का नक्की किया। भूत लाने वाले के पास जाकर एक ने कहा कि मेरी बाहिन का भूत ला दो। बाहिन जीवित थी। भूत लाने वाले ने जरा ऊँचा करके कहा को भूत आ गया है। वह बड़े आश्चर्य में पड़ गया कि जीवित व्यक्ति का भूत कैसे आ गया। खामोश होकर बैठा रहा। दूसरे ने कहा, नेपोलियन का भूत ला दो। झट नेपोलियन का भूत आ गया। वह मित्र तलवार लेकर उसके सामने दौड़ा भूत नौ दो ग्यारह हो गया। वह सोचने लगा कि जिस नेपोलियन ने अपनी वीरता से सारे यूरप को कम्पा दिया था उसका भूत क्या एक तलवार से डर सकता है। फिर शकराचार्य के भूत को बुलवाकर उससे वेदान्त के प्रश्न पूछे गये मगर उत्तर नही दिये जा सके। उन दोनों मित्रों ने भूत लाने वाले ढोंगियों का भण्डाफोड़ कर दिया।

आप लोग नवकार मंत्र पर विश्वास रखो तो ऐसे चक्र में कभी न फंसो। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में वहम की मात्रा अधिक होती है। वे बच्चों को डराया करती है 'यहां

मत जा वहा भूत रहता है ' कोमल दिमाग के बच्चों में वह बात घर कर जाती है और कल्पना भूत उम्र तक साथ रहता है । इस प्रकार के बहम दिल में से निकाले बिना धर्म की इज्जत रखने में आप समर्थ नही हो सकते ।

सेठ ने सुभग की रग २ में नवकार मंत्र के महत्त्व को उतार दिया जिससे वह भय रहित होकर रहने लगा । आप भी इस प्रकार परमात्मा के नाम पर विश्वास रखकर निर्भय बनो तो कल्याण है ।

राजकोट
१७—७—३६ का
व्याख्यान

:—: स्तैत्य व्याख्या :—:



" सुमति ! सुमतिदातार महामहिमानिलो जी........ । "



परमात्मा की प्रार्थना करने के कुछ उदाहरण इस प्रार्थना में बताये गये है । ये उदाहरण स्पष्ट है फिर भी मैं और स्पष्ट करता हू । यदि इन उदाहरणों को हृदय में रख कर प्रार्थना की जाय तो प्रार्थना में पूर्ण सफलता मिल सकती है ।

भ्रमर की फूल से प्रीति होती है । सूर्य से कमल की और पपिहा की पानी से प्रीति होती है । जैसी इन तीनों—भ्रमर कमल और पपिहा की अपनी इष्ट वस्तुओं के प्रति प्रीति होती है वैसी यदि मनुष्य की प्रीती परमात्मा के साथ हो जाय तो बेडा पार है । भ्रमर एक ही दिशा में गमन करता है । अर्थात् जिससे उसने प्रीति करली है उससे विपरीत दिशा में नही जाता । उसकी प्रीति पुष्प से हैं । वह पुष्प की सुगन्ध का रासिक है । वह फूलों से सुगन्ध ग्रहण

करता है। यदि उससे कोई कहे कि हे भ्रमर ! तू विष्ठा की सुगन्ध ग्रहण कर तो वह कदापि ग्रहण न करेगा। पुष्पों की सुगन्ध छोड कर भला वह विष्ठा की दुर्गन्ध क्यों ग्रहण करने लगा। ऐसी कल्पना करने में भी उसे घृणा होगी।

परमात्मा की भक्ति पुष्प की सुगन्ध के समान है और विषयों की इच्छा विष्ठा की दुर्गन्ध के समान है। जिन लोगों की आदत प्रभु भक्ति करके भक्ति रस का पान करने की है वे विषय वासना जन्य निकृष्ट सुख की कभी भावना नहीं कर सकते। यह नहीं हो सकता कि कोई परमात्मा की भक्ति करके फिर विषय वासना की ओर दौडे। यदि भक्ति करने के वक्त भी मन विषय वासना की ओर दौडता होतो समझना चाहिए कि अभी भक्ति में कसर है। पुष्प की सुगन्ध के बाद विष्ठा की दुर्गन्ध लेने की इच्छा होना असंभव है। जिसने भक्ति रस का आस्वादन कर लिया है वह काम भोग जन्य सुख की वाछा नहीं कर सकता। यह बात ठीक है कि इस आत्मा को अनादि काल से विषय सुख की आदत पडी हुई है अतः भक्ति जन्य आनन्द की तरफ खिंचाव होने पर भी संस्कार वशात् विषयों की ओर मन दौड़ जाता है। मगर प्रयत्न यह होना चाहिए कि मन विषयों की तरफ जाय ही नहीं। जितना जितना प्रभु भक्ति का रंग गहरा चढता जायगा उतना उतना विषयों पर का रंग फीका पडता जायगा। प्रभु भक्ति और विषय भक्ति में परस्पर विरोध है।

अभी युवक परिषद् के मंत्री ने आप लोगों को युवक परिषद् में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रण दिया है। युवक लोग, परिषद् भर रहे हैं। युवकों से मुझे यह कहना है कि वे पहले अपना खुद का सुधार करलें बाद में अपने विचार दूसरों के सामने रखने चाहिए। अपने ही चरित्र का प्रभाव दूसरों पर पड़ता है।

मतलब यह है कि सच्चरित्र बन कर परमात्मा की प्रार्थना करनी चाहिए। कोई पूछ सकता है कि यदि सच्चरित्र बन जायगे तब परमात्मा की प्रार्थना करने की क्या आवश्यकता रहेगी। प्रार्थना सच्चरित्र बनने के लिए ही की जाती है। उत्तर—प्रार्थना और सच्चरित्रता का आपस में द्रव्य कर्म और भाव कर्म जैसा सम्बन्ध है। जैसे द्रव्य कर्म की वजह से भाव कर्मों को पुष्टि मिलती है और भाव कर्मों से द्रव्य कर्म को इसी प्रकार प्रार्थना करने से आत्मा में नम्रता आदि गुणों की प्राप्ति होती है और नम्र बनकर प्रार्थना करने से भगवान की तरफ विशेष खिंचन होता है। सच्चरित्र अथवा सदगुणी बनकर प्रार्थना करने से प्रभुमय बनने की हमारी मुराद जल्दी पूरी हो सकती है।

प्रार्थना भी करते जाना और दुराचरण भी सेवन करते जाना, ठीक नहीं है 'तो क्या हम सब लोग साधु बन जायँ ?' मैं सब को साधु बनने के लिए नहीं कहता। सब लोग साधु बन जाय तो रोटियाँ कहा से मिलेगी। साधु होना तो अपनी अपनी अंत: करण की भावना और शक्ति पर निर्भर है। किन्तु जो व्यक्ति जिस स्टेज-दर्जे पर है उसे उसके अनुसार सच्चरित्र बनना ही चाहिये। आप गृहस्थ हैं अतः गृहस्थ के योग्य सच्चरित्रतो बनना ही चाहिए। गृहस्थों की सच्चरित्रता के हालात आप लोग उपासक दशाग सूत्र से सुन ही रहे हो। बिना साधु हुए यदि धर्माचरण न किया जा सकता होता तो भगवान महावीर स्वामी यह न कहते कि—

दुविहे धम्मे पराणत्ते, तं जहा आगार धम्मे अणगार धम्मे ।

धर्म दो प्रकार का है। एक साधु के लिए और दूसरा गृहस्थों के लिए। गृहस्थ अपने धर्म का पालन करे और साधु साधु धर्म का। यदि गृहस्थ अपने धर्म का सम्यक् प्रकार से पालन करने लगें तो साधु भी अपना साधुपन अच्छी तरह निभा सकें। साधु धर्म और गृहस्थ धर्म एक दूसरे पर आधार रखते हैं। गृहस्थों को भी अपने पद के अनुसार प्रार्थना में वर्णित उदाहरणों के अनुसार भगवान् की भक्ति करनी चाहिए।

अब मैं शास्त्र की बात कहता हूँ। अनाथी मुनि की कथा सम्बन्धी गाथा की एक चर्चा रह गई है जिसे स्पष्ट करना उचित है।

विहारजत्तं निजाओ मंडिकुच्छिसि चेइये ।

श्रेणिक राजा मंडिकुक्ष नामक चैत्य में बिहार यात्रा के लिए गया। यहा मंडिकुक्ष-उद्यान का प्रयोग न करके मंडिकुक्ष चैत्य शब्द का प्रयोग किया गया है। चैत्य शब्द का अर्थ समझ लेना चाहिए। इस उत्तराध्ययन सूत्र के टीकाकार 'चैत्य इति उद्याने' अर्थात् 'चैत्य शब्द का अर्थ उद्यान है,' ऐसा लिखते है। श्रेणिक राजा उद्यान में गया।

चैत्य शब्द **'चिय चयने, चिति-संज्ञाने'** धातु से बना है। जहा प्रकृति का बहुत उपचय हो, बहुत सुन्दरता हो उस स्थान को चैत्य कहते है। अथवा आत्मा के ज्ञान को भी चैत्य कहते हैं। मनः प्रसन्नता के कारण को भी चैत्य कहते हैं। यह बात मै मनगढ़न्त नहीं कह रहा हू मगर पूर्वाचार्यो के कथनानुसार कह रहा हू। रायप्पसेणी सूत्र में वर्णन है

कि सूर्याभदेव ने भगवान को '**देवयं चेइयं**' कहकर वन्दना की है। मलयागिरि टीका में इस बात का खुलासा किया गया है कि भगवान् को चेइय क्यों कहा गया। टीकाकार ने लिखा है '**सुप्रसन्न मनहेतु त्वादिति चैत्यं**' अर्थात् मनः प्रसन्नता का कारण होने से भगवान चेत्य हैं। किसी के लिए संसार व्यवहार मनः प्रसन्नता का कारण होता है और किसी के लिए भगवान् मनः प्रसन्नता के कारण होते है। सुर्याभदेव को देवलोक के सुख मन. प्रसन्नता के कारण न जान पडे किन्तु भगवान् मनः प्रसन्नता के कारण मालूम हुए। इसी कारण से भगवान को चेइय शब्द से सम्बोधित करके वन्दना की है।

चैत्य शब्द रूढ़ नहीं है किन्तु व्युत्पन्न प्रातिपादक है। इसके अनेक अर्थ है—बाग ज्ञान, मनः प्रसन्नता का कारण आदि। मगर चैत्य शब्द का अर्थ व्युत्पात्ति से मूर्ति नहीं होता। जैनागमों में जहां कहीं प्रतिमा का वर्णन आया है वहा स्पष्ट शब्दों में '**जिणपडिमाणं या जक्ख पडिमाणं**' कहा है। मूर्ति के लिए कहीं भी चैत्य शब्दका प्रयोग नहीं है। मूर्ति के लिए पडिमा शब्द का प्रयोग किया गया है। पडिमा और चेइय शब्द भी अलग अलग हैं और इन का अर्थ भी जुदा जुदा है। चैत्य शब्द का जहा कहीं प्रयोग हुआ है वहा बाग, ज्ञान या साधु के अर्थ में हुआ है। शान्ति आचार्य कृत पाई टीका में भी चैत्य शब्द का अर्थ बाग किया गया है। यहां प्रकरण से भी यही मालूम होता है कि राजा श्रेणिक बाग में विहार यात्रा के लिए गया है। यह बाग नाना वृक्षों और लतादि से संयुक्त था। उसमें नाना प्रकार के पक्षी और पुष्प थे।

बाग का वर्णन और मुनि का दर्शन करके आगे क्या हुआ सो शास्त्रकार कहते हैं—

तत्थ सो पासई साहुं, संजयं सुसमाहियं।
निसन्नं रुक्ख मूलम्मि, सुकुमालं सुहोइयं ॥ ४ ॥
तस्स रूवं तु पासित्ता, राइणो तंमि संजये।
अच्चन्त परमो आसी, अउलो रूव विम्हिओ ॥ ५ ॥
अहो वण्णो अहो रूवं, अहो अज्जस्स सोमया।
अहो खंति अहो मुत्ति, अहो भोगे असंगया ॥ ६ ॥

इन गाथाओं का पूर्ण विवेचन कोई योगीश्वर ही कर सकता है। मैं योग मार्ग को नहीं जानता अतः इन का पूर्ण वर्णन नहीं कर सकता। फिर भी पूर्वाचार्यों की व्याख्या के आधार से अपनी बुद्ध्यानुसार कुछ कहने की चेष्टा करता हू।

गाथा में कहा है पहले राजाने साधु को देखा है। अतः हम भी पहले साधु का अर्थ समझलें।

साधयति स्व पर कार्याणीति साधुः

जो अपना और दूसरों का काम साधता है वह साधु है। जिस प्रकार नदियां समुद्र की ओर जाती है मगर जाती हुई अपने आप पास के क्षेत्रों का सिंचन करती जाती है। उनका मुख्य उद्देश्य अपने आपको समुद्र में मिला देना है। मगर उनकी चेष्टाए और क्रियाए ऐसी है कि अपना काम साधते हुए दूसरों का भला हो जाता है। उनके पास पडने वाले प्रदेश हरे भरे और फल फूलों से सयुक्त हो जाते है। ठीक यही बात साधुओं के विषय में लागू पडती है। साधुओं का लक्ष्य अपना आत्म कल्याण करना है। अर्थात् अपने आप को परमात्मा रूप समुद्र में मिलाना है। मगर समुद्र मिलन रूप मुख्य कार्य के साथ, उनके आचरण से उनके आसपास रहने वाले और उनकी सोबत में आने वालों का बडा भला हो जाता है। साधु अपना मुख्य ध्येय त्याग कर दूसरों की भलाई करने में नहीं पडते किन्तु अपने साध्य की सिद्धि के साथ २ दुसरों का भी उपकार करते हैं। जिस प्रकार वृक्ष अपनी प्रकृति से ही फलते फूलते है दूसरों पर उपकार करने के लिए नही फलते फूलते। यह बात दूसरी है कि दूसरे उन का लाभ लेते है। उसी प्रकार साधु भी अपना काम साधते हुए दूसरों के उपकारी बन जाते है। उनके मन में यह भावना नही होती कि हम दूसरों की भलाई के लिए अमुक काम कर रहे हैं। उनकी स्वाभाविक क्रियाए ही दूसरों के उपकार करने में निमित्त भूत बन जाती है। पत्थर या कुल्हाडी मारने वाले के लिए भी जैसे वृक्ष फल प्रदान करने में परहेज नही करता वैसे सन्त जन भी गाली देने वाले या बुराई करने वाले का उपकार करने में किसी प्रकार का भेद भाव नही रखते। ऐसा कभी नहीं कहते कि अमुक आदमी ने हमारी बुराई की है अतः उसे हमारे व्याख्यान सुनने का अधिकार नही है। 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' अपनी आत्मा के समान सब प्राणियों के साथ वर्ताव करते है।

अब प्रश्न यह है कि जब गाथा में साधु शब्द आ गया है तब सयति शब्द के प्रयोग की क्या आवश्यकता थी। टीकाकार इस बात का खुलासा करते हैं कि स्वपर कल्याण साधन रूप साधुता गृहस्थावास में रहते हुए गृहस्थ मे भी हो सकती है। वह अल्पारंभ और अल्प परिग्रही रहता हुआ अपना और दूसरों का भला कर सकता है। साहित्य में, जो अपना स्वार्थ साधते हुए परमार्थ को नही भूलता उसके लिए भी साधु शब्द का प्रयोग पाया जाता है। गृहस्थ अपने बाल बच्चों और स्त्री का पालन पोषण करता हुआ दीन हीन गरीब

जनों का भी भरण पोषण कर सकता है। आप लोग केवल अपने कुटुम्बी जनों को अपनी छाया मत प्राप्त प्रदान करो मगर दुःखी जनों के लिये भी अपनी पाखे फैलाये रहो। यदि आपने किसी दुःखी मनुष्य को दुतकार दिया तो आपको क्या समझना चाहिये। तब आप गृहस्थ साधु न रह जायंगें। मेघ कुमार ने हाथी के भव में पशु होते हुए भी गरीब ससले को आश्रय दिया था। क्यों आप तिर्यञ्च पशु से भी गये बीते बनेगें। उस हाथी ने कितने शास्त्र और पोथियां पढ़ी थीं जिनके कारण उसमें इतनी उदारता आई थी। हाथी में बिना ग्रन्थ वाचन के भी उदारता आ गई और आपमें ग्रन्थ वाचन के होते हुए भी जरुरत मन्दों की जरुरत पूरी करने की उदारता नहीं आई यह आश्चर्य की बात है। आपमे बहुत से भाई बी. ए., एम. ए. आदि डिग्रियों और रायसाहिब, रायबहादुर आदि उपाधियों के धारक होते हुए भी पर दुःख भजन करने की उदारता नही दिखाई देती।

मतलब कि गृहस्थोंमें भी चन्द लोग साधु हो सकते हैं। क्या श्रेणिक राजा ने उद्यान में ऐसे गृहस्थ साधु को देखा है? नहीं। इसी बात का खुलासा करने के लिये आगे सयति शब्द का प्रयोग किया गया। वे सयति थे। संयम के धारक थे। पूरी तरह से आत्मा का कल्याण साधने वाले थे। निरारभी और निस्परिग्रही थे।

तीसरा सुसमाधिवन्त पद इस लिये दिया गया है कि बाह्य क्रियाओं का यथावत् पालन करके ढोंगी लोग भी सयति कहे जा सकते हैं। अथवा जिनका ऊपरी दिखावा सारा साधु के जैसा ही हो किन्तु अन्तःकरण में केवली प्ररूपित धर्म के प्रति सन्देह हो जैसे गोशालक और जामाली, वे सुसमाधिवन्त नहीं कहे जा सकते। वे उल्टे तत्त्व श्रद्धते थे। उनके मन में भ्रान्ति थी। अतः ऐसे साधुओं का व्यवच्छेद करने के लिए सुसमाधिवन्त पद दिया गया है। इन मुनि के मन में किसी प्रकार की भ्रान्ति न थी। इन की आत्मा समाधि में तल्लीन थी।

वे मुनि सुकुमार थे। सुकुमार का अर्थ है जो कामदेव को अच्छी तरह जीत ले उनका शरीर कामदेव को भी जीतने वाला था। इसके साथ ही एक विशेषण 'सुहोइअं' और है। वे मुनि सुखो चित थे। उनका शरीर सुख में पला था। उन्होंने कभी दुःख या कष्ट नहीं पाया था। किसीआदमी ने तकलीफ झेली हुईहों तो उनकी छाया उसके शरीर पर थोड़े बहुत अंशों में रह जाती है। किन्तु पहले कष्ट सहा हुआ होने पर भी उ े शरी

पर इस बात का कोई चिह्न नही था। सुखो चित का यह भी अर्थ होता है कि उनका शरीर सुख के योग्य था। वे सुख भोगने के योग्य रूपवान् थे।

आजकल गुणों की अपेक्षा रूप की कद्र ज्यादा की जाती है। इसीलिए लोग बाल रखाते है और तेल साबुन का उपयोग करते है। रूपवान होने का दिखावा करके अपना महत्त्व बढाना चाहते हैं। हिन्दुओं के सिर पर रहने वाली चोटी—शिखा बाल रखाने के रूप में आगे आगई है स्त्रियों में भी लेडी फेशन घुस गई है। जब स्त्रियाँ लेडी बनेगी तो उनके पतियों को भी साहब बनना होगा। स्त्रियों ने रूप को अपना अस्त्र मान रखा है। इसी अस्त्र के द्वारा वे पुरुष को अनेक प्रति मुग्ध करना चाहती है। वास्तविक रूप कैसा होता है इसका उन्हें पता नही होता। वस्तव में रूप का सम्बन्ध शरीर से नहीं है मगर हृदय से है। जिसका हृदय कलुषित हो उसका शरीर सौन्दर्य कैसा भी क्यों न हो चेहरा विकृत ही होगा। चेहरे पर मनोभावों का असर रहता है।

राजा श्रेणिक ने मुनि को देखकर आश्चर्य से कहा, अहो वर्ण और अहो रूप। यदि बाल सँवारने मात्र से ही रूप होता तो उन मुनि के न तो बाल सँवारे हुए थे और न अच्छे कपड़े ही थे। श्रेणिक जैसा व्यक्ति जो कि अनेक रत्नों का स्वामी और शृगार शास्त्र पारगत था रूप और वर्ण की प्रशसा कर रहा है इस से मालूम होता है कि उन मुनि का वर्ण और रूप असाधारण थे। मुनि के शरीर पर किसी प्रकार की शृगार सामग्री न थी फिर भी श्रेणिक ने इतनी प्रशसा क्यों की इस बात पर विचार करिये। इस विषय में मैं अधिक न कह कर केवल इतना ही कहना चाहता हू। आधुनिकसभ्यता और ऊपरी टापटीप दिखावे पर अवलम्बित है जब कि पुरातन भारतीय लोग हृदय की शुद्धी अशुद्धी के प्रमाण मे सुरूपता कुरूपता मानते थे। मनोगत भावों का सुन्दरता पर गहरा असर पडता है। ब्रह्मचर्य पालन करने वाले की आखों की तरफ देखिये। उसका चेहरा कैसा खिला हुआ और पुष्ट होगा। व्यभिचारी का सुन्दर रूप भी कुरूप मालूम पडता है। इस विषय का विशेष स्पष्टी करण सुदर्शन—चरित्र मे होगा। अतः आप लोग ध्यान लगा कर सुनिये।

सुदर्शन चारित्र

सिखा मंत्र नवकार बाल, मन में करता ध्यान।
उठत बैठत सोवत जागत, बस्ती और उद्यान॥

सेठ ने सुभग को नवकार मंत्र लिखा कर उसका महत्व बताया और कहा कि यदि करोड़ों की सम्पत्ति मिल जाय और नवकार न हो तो सब वृथा है। और गरीबी अवस्था हो किन्तु नवकार मत्र पास हो तो सब कुछ सार्थक है।

आज कल बच्चों में अच्छे सस्कार डालने का बहुत थोडा प्रयत्न किया जाता है। बच्चों को बचपन में मिली हुई सुशिक्षा जीवन पर्यन्त काम देती है। यदि बचपन में उल्टे संस्कार पड़ गये तो जीवन तक उसका असर भोगना पडता है। मेरी माता मुझे छोड़ कर चलबसी थी और पिताजी पांच साल का छोड कर। मेरा पालन पोषण मेरे मामा के घर हुआ है उसके पास थोडी दूर पर एक मकान है जो स्वाभाविक ही कुछ नीचा था। नीचा होने के कारण उसमें अंधेरा रहा करता था। स्त्रियाँ कहा करती थी कि उस मकान में भूत है। मैं यह बातें सुना करता था अतः रातको दूकान से घर आते समय उस भूत वाले मकान की तरफ होकर न आता था मगर चक्कर काट कर दूसरी ओर से घर आता था। मुझ में भूत के भय का जो संस्कार दाखिल हो गया वह दीक्षा अगीकार करने बाद तक कायम रहा। मैं जिसकी नेश्राय में चेला बना वे गुरु डेढ मास बाद ही काल धर्म को प्राप्त हो गये। उस समय मैं पाँच मास तक पागल सा रहा। भय के पड़े हुए सस्कारों के कारण मुझे ऐसा मालूम होता था कि कोई प्रत्यक्ष ही मुझ पर जादू टोना कर रहा है लेकिन जब मैं अच्छा हुआ तब ज्ञात हुआ कि वह सब भ्रम था और कुछ न था।

पहले जमाने में भूत के भ्रम का बोल बाला था अतः साहित्य में भी उसकी छाया नजर आती है। कदाचित् शास्त्र के विषय में कहो कि उस में भी भूतों का जिक्र है। शास्त्र में जो वर्णन है वह दूसरी तरह का है। इस प्रकार भय घुसेड़ने वाला वर्णन नहीं है।

सेठने सुभग में सुसंस्कार डाले। मानो सुभग के बहाने अपने पुत्र में ही सुसस्कार डाले हो। अपनी कल्पना में घडे हुए पुत्र के लिए जैसे सस्कार डालने चाहिए वैसे सस्कार सुभग में डाले। किसी हाथ में हथौडा हो लेकिन बुद्धि न हो तो वह हथौड़ा उसका पैर तोड सकता है और बुद्धि हो तो सुन्दर दागिना बनाया जा सकता है। हथौडा बडा नहीं है मगर बुद्धि बड़ी है। सेठने सुभग की शक्ति रूप हथौडे से मनः कल्पित पुत्र रूप दागिना बनाया है। सेठ ने सुभग में अच्छे संस्कार डाले अतः आगे जाकर उसके लिए यह कहा जाता है—

धन सेठ सुदर्शन शील पाली ने तारी आतमा।

सुदर्शन को जो धन्यवाद मिल रहा है उसमें पूर्व जन्म के सस्कार भी कारण है। कोई काम एक जन्म में ही पूरा नहीं हो जाता मगर कभी कभी अनेक जन्म भी लग जाते हैं। गीता में कहा है—

अनेक जन्म संसिद्धिस्ततो याति परांगतिम्।

अनेक जन्मों के सुसंस्कारों के बाद आत्मा परागति—मोक्ष को पहुँचता है। जिस प्रकार कुभकार के द्वारा मिट्टी और सुनार द्वारा सोने का सुधार होता है। उसी प्रकार आपका और हमारा समागम हुआ है उससे अच्छा सुधार होना चाहिए। मगर सुधार में यह शर्त रहनी चाहिए कि पहले खुद का सुधार हो। यदि सेठ खुद सुधरा हुआ न होता तो नाटकीय पात्रों की माफक उसके कथन का सुभग पर कोई असर न हो पाता। सेठ सुधरा हुआ था अतः उसने अपना कलेजा निकाल कर उस में रख दिया। कवियों के लिए कहा जाता है कि मानों कविता में हृदय निकाल कर रख दिया है। अन्तःकरण से निकली हुई कविता के लिए ही ऐसा कहा जाता है। जिस व्यक्ति में सुसस्कार पड गये हो वही दूसरों पर असर डाल सकता है।

आजकल व्याख्यान बडे लम्बे लम्बे दिये जाते हैं मगर व्याख्यता स्वय उन पर अमल नहीं करते। ऐसे व्याख्याताओं के व्याख्यान का क्या असर हो सकता है एक व्याख्याता के सम्बन्ध में सुना कि उनका व्याख्यान बहुत अच्छा था मगर व्याख्यान से आते ही लाओ २ की रट लगादी। कहने लगे अभी तक जलेबी नहीं आई दूध नहीं आया आदि ऐसी लेक्चर बाजी केवल नाटक का रूप धारण करती है। उसका असर कुछ नहीं होता।

सेठने सुभग को स्वातः करण से आत्मीय जन की माफक शिक्षा दी थी। खुद भी नवकार मत्र पर पूर्ण श्रद्धा रखते थे। आजकल लोग नवकारमन्त्र का अभ्यास भूल गये हैं। आपका पैसा चला जाता है उसकी बडी चिन्ता करते हो मगर अमूल्य समय, की कुछ भी परवाह नहीं करते हो। अंग्रेज जाति के लोगों को रुपयों की अपेक्षा भी समय की चिन्ता ज्यादा रहती है। भगवान् महावीर ने तो क्षण २ की चिन्ता करने का फरमाया है।

समय गोयम ! मा पमाइये।

हे गौतम ! समय मात्र के लिए भी प्रमाद मत कर । भगवान् की इस शिक्षा को ध्यान में रखकर अपने मन को भगवन्नाम रूपी तार में पिरो दो । तार से अलग रहा हुआ मोती गिर जाता है । मन रूपी मोती को अलग रखोगे तो विमार्ग में चला जायगा ।

स्त्रीयों को मैंने गाते सुना है कि जिस मुख पर राम का रग नहीं है वह मुख नहीं देखना चाहिए । राम का रग क्या है यह बात समझने की है । जो चोरी जारी आदि बुरे काम नहीं करता उसके मुख पर जो तेज है वह राम का रग है । सदाचरण राम का रग है । **'गई सो गई अब राख रही को'** कहावत के अनुसार भूत कालीन बातों को भुलाकर वर्तमान को सुधारिये जिससे भविष्य उज्ज्वल बने । भगवद् भक्ति बिना एक सांस भी खाली मत जाने दो । एक भक्त कहता है—

दम पर दम हरि भज नहीं भरोसा दम का,
एक दम में निकल जायगा दम आदम का ।
दम आवे न आवे इसकी आश मत कर तू,
एक नाम साईं का जप हिरदे में धर तू ॥
नर इसी नाम से तरजा भवसागर तू ,
एक नाम साईं का जप हिरदे में धर तू ।
छल करता थोड़े जीने की खातिर तू,
वह साहिब है जल्लाद जरा तो डर तू ।
वहाँ अदल पड़ा इन्साफ इसी दम दमका ॥

आदम का अर्थ मनुष्य है । मनुष्य में दम आ इस अर्थ में आदम कहा जाता है । जब तक दम आता रहता है तब तक आदम है । दम आता रहता है इस बात की क्या सबूत है । इसके लिए कवि कहता है '**दम पर दम हरिभज**' । हर श्वास उच्छ्वास में हरि का भजन कर । '**हरति दुःखान् इति हरिः**' जो दुखों का हरण करता है वह हरि है । भगवान् का चाहे कोई नाम हो मगर हर श्वासोच्छ्वास के साथ उसे जोड़ देना चाहिए । एक क्षण भी खाली मत जाने दो । ऐसा होने पर स्वप्न में भी प्रभु नाम हर श्वास में चालू रहेगा । एक कवि कहता है—

तो सुमिरन बिन या कलिजुग में अवर नहीं आधारो।
मैं वारी जाउं तो सुमिरन पर दिन दिन प्रीति वधारो॥

आप लोग दिन ब दिन परमात्मा का नाम भूलते जा रहे हो सो कहीं इस कारण से तो नहीं भूल रहे हो कि परमात्मा का नाम लेने पर झूठ कपट का सेवन नहीं किया जा सकेगा और इस प्रकार हमारा धंधा रोजगार बन्द होगया। अगर इसी विचार से नाम भुला रहे हो तो इसमें आपकी भूल है। जो परमात्मा का स्मरण भजन करेगा वह झूठा केस हाथ में न लेगा फिर भी भूखों न मरेगा। यदि नाम लेने वाले भूखो मरते हों तो आपको प्रभु नाम लेने के लिए कभी नहीं कहा जाता। यह बात जूदी है कि कभी आपकी कसौटी हो। मगर भूखो नहीं मर सकते।

सुभग को नवकार मंत्र पर पूरी आस्था बैठ गई अतः वह उसीका जाप करता रहा अब उसकी कसौटी का समय आता है। एक दिन सुभग जगल में गाये लेकर गया। वह जंगल में ही था कि बहुत जोरों की वर्षा शुरु होगई। वर्षा साधारण न थी मगर घनघोर थी। बालक मन में विचार कर रहाथा कि इस प्रकार गरजना बरसना मेरी परीक्षा के लिए है। भक्त लोग कहते हैं—

गरजि तरजि पाषाण बरसि पवि प्रीति परखि जिय जाने।
अधिक अधिक अनुराग उमंग उर पर पर परमिति पहिचाने॥

ये बादल गरजते हैं, पानी बरसता है, बिजली चमकती है, कभी गिरती भी है, और ओले पडते हैं, यह सब परीक्षा के लिए है। हमने भजन किया है या नहीं और भजन पर विश्वास है अथवा नहीं इस बात की जांच भी तो होनी चाहिए। पपीहा स्वाति का ही पानी पीता है दूसरा नहीं। जब बादल गरजते हैं और बिजली चमकती है तब वह बडा प्रसन्न होता है कि इस परीक्षा के बाद मुझे पानी मिलेगा। इसी प्रकार भक्त लोग भी ऐसे अवसरों पर घबडाते नहीं मगर डटकर सामना करते हैं।

सुभग यही सोच रहा है कि आज मेरी परीक्षा है। वह चाहता तो मन में यह सन्देह कर सकता था कि रोज रोज नवकार मत्र का जाप करते रहने पर भी आज यह क्या

आफत आगई। किन्तु नहीं। सच्चे भक्त इस प्रकार की औंधी कल्पनाएँ नहीं किया करते। वे सीधा सोचते और करते है। आपको जोर की प्यास लगी हो और कोई आदमी गाली सुनाता हुआ आपको पानी पिलाये, उस वक्त आप उसकी गाली की तरफ ध्यान दोगे या पानी पियोगे। कोई छात्र परीक्षा देने के लिए परीक्षा हॉल मे आये और उस समय यदि कोई उसको गाली गलौच दे तो वह गाली देने वाले से लडने बैठेगा या अपना प्रयोजन सिद्ध करेगा। बुद्धिमान् गाली गलौच का खयाल न करके अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। आप लोग भी बुराइयों पर ध्यान न देकर इस संसार की परीक्षा में उत्तीर्ण होइये।

सुभग इस अवसर को अपने लिए कसौटी का समय मानकर गायें लेकर घर की ओर चल दिया। मार्ग नदी बहुत पूर से बह रही थी। नदी के दोनों किनारों से सटकर पानी बह रहा था। गायें तैर कर परली पार पहुंच गई मगर सुभग न जा सका। वह उस पार खडा खडा सोचने लगा कि इस समय मुझे क्या करना चाहिए। अन्त में निश्चय किया कि जब मैं नवकार मत्र जानता हू तब डर किस बात का। नदी का पूर कैसा भी हो मेरा साहस उससे कम नहीं है। वह नदी में कूदने के लिए वृक्ष पर चढ़ गया। इस विषय में अनेक तर्क वितर्क किये जा सकते हैं और उनका निवारण करने के लिए सामग्री भी है मगर कहने का समय नहीं है। अभी तो इतना ही ध्यान में रखिये कि वह नदी में कूदने के लिए वृक्ष पर चढ़ गया है। अब क्या होता है इसका बयान यथावसर किया जायगा।

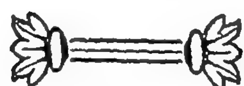
राजकोट
१९—७—३६ का
व्याख्यान



साधुता का आदर्श



"पदम प्रभु पावन नाम तिहारो............... ।"



प्रार्थना अनेक तरीकों से की जा सकती है। इस प्रार्थना में वह तरीका अख्तियार किया गया है जो विद्वान और मूर्ख, बलवान् और निर्बल, धनवान् और गरीब, राजा और प्रजा, पुरुष और स्त्री, साधु और गृहस्थ सब के लिए समान रूप से उपयोगी है। इस में कहा गया है, परमात्मा का नाम स्मरण करना सब के लिए सुलभ है।

संसार में जितने भी आस्तिक दर्शन है उनमें अन्य बातों के विषय में मत भेद हो सकता है मगर परमात्मा के नाम स्मरण की उपयोगिता के विषय में कोई मत भेद नहीं हो सकता है। हर एक दर्शन ने किसी न किसी रूप में परमात्मा के नाम स्मरण का महत्त्व स्वीकार किया है। जो निष्काम होकर प्रभुनाम का स्मरण करते हैं उनके शरीर में बहुत अलौकिक

गुण प्रकट हो जाते हैं। जो नाम स्मरण की बात सुन लेता है और सुनकर हँसी उडाता है उसके लिए नाम काम का नहीं है। नाम के साथ श्रद्धा होना बहुत जरूरी है।

नाम स्मरण में एक बात पर खास तौर से ध्यान रखना चाहिए। वह है नाम और नामी में अभिन्नता साधना। परमात्मा का नाम क्या लेना उसमें तल्लीन हो जाना चाहिए नाम और परमात्मा में भेद न रहने पाये।

शास्त्र-चर्चा—

मुझे शास्त्र में भी परमात्मा की प्रार्थना ही जान पडती है। राजा श्रेणिक साधु की भेंट करने के उद्देश्य से घर से नहीं निकला था। आत्म कल्याण का साधन कब किस को मिल जाता है इसका कोई निश्चय नहीं है। इधर श्रेणिकका हवा खाने के लिए बगीचे में आगमन हुआ और उधर घूमते फिरते कहीं से अनाथी मुनि भी पधार गये। यह कैसा सुयोग मिला। मानना पडेगा कि इसके पिछे कोई अदृश्य शक्ति काम कर रही थी। आप प्रत्यक्ष प्रमाण से इस बात को न मानो मगर अनुमान से आपको मानना ही पडेगा। आपके शरीर पर पहने हुए कपडे किसने बनाये। किसने रूई पैदा की और किसने उसे कातकर सूत बनाया। फिर कपडा बुना गया। किसी दूकानदार से आपने खरीदा। आपके कपडों के लिए अनेक लोगों ने अनेक प्रयत्न किये इस में आपकी कोई गुप्त शक्ति काम कर रही थी। जिसे भाग्य नसीब या अदृष्ट कह लीजिये। हमारे लिए विलायत में सामग्री तैय्यार होती है इस में भी हमारा अदृष्ट शामिल है। इस ससार में स्थूल कारणों के पीछे प्रत्येक काम में गुप्त शक्तिया भी काम करती हैं। इन शक्तियों को धर्म शास्त्र में अदृष्ट भाग्य, नसीब आदि नामों से पुकारा गया है।

जब फल सामने आ जाता है तब जमीन में डटा हुआ बीज मालूम नहीं देता फिर भी अनुमान से मानना ही पडता है कि बीज जरूर रहा होगा। अन्यथा फल कहां से होता। राजा श्रेणिक और अनाथी का समिलन हुआ है अत. मानना पडेगा कि इसमें कोई अदृष्ट कारण है।

राजा श्रेणिक मुनि को देखकर उनकी ओर इस प्रकार आकर्षित हुआ जिस प्रकार लोहा चुम्बक की ओर होता है।

तस्स रूवं तु पासित्ता, राइणो तंमि संजए।
अच्चन्त परमो आसी, अउलो रूव विम्हिओ ॥५॥

अहो वण्णो ! अहो रूवं ! अहो अज्जस्स सोमया ।
अहो खंति ! अहो मुत्ति ! अहो भोगे असंगया ॥६॥

श्रेणिक राजा बाग में राजसी ठाट से गया था और मुनि बड़ी सादगी से वृक्ष के नीचे बैठे है । वे मुनि संयति, सुसमाधिवन्त, सुकुमार और सुखोचित थे । 'सुहोइयं' का अर्थ शुभोचित भी होता है । सब शुभ गुणो से युक्त उन मुनि का शरीर था ।

नाम की महिमा बहुत बताई गई है मगर नाम के साथ रूप का भी सम्बन्ध है । वैसे नाम के द्वारा किसी की पहिचान कराई जाती है किन्तु कभी रूप से भी नाम जाना जाता है और परिचय हो जाता है । राजा ने उन मुनि का रूप देखकर ही नक्की कर लिया था कि ये मुनि संयति और सुसमाधिवन्त है ।

ठाणांग सूत्र में चार प्रकार का सत्य बताया गया है । १ नाम सत्य २ स्थापना सत्य ३ द्रव्य सत्य ४ भाव सत्य । नाम से सत्य होता है मगर इसमें समझने की जरूरत है । किसी ने अपना नाम झूठा बता दिया । रूप सत्य भी होता है मगर किसीने झूठा रूप बता दिया । अतः नाम या रूप सत्य है या नहीं इसकी पहचान करने की जरूरत है । लोग छल से भी काम लेते हैं अतः सावधानी की आवश्यकता है । एक आदमी ने अपना नाम कुछ और था और बता कुछ और दिया । यह नाम सत्य कहा रहा । साधु नही है फिरभी अपने को साधु बतायें । यह झूठ है या नही ? द्रव्य से है तो पीतल मगर उसे सोना बताये । कल्चर मोती को असली बताये । यह सब झूठ है । इसी प्रकार भाव में भी झूठ होता है । शास्त्र मे कहा है—

तवतेणे वयतेणे रूवतेणेय जे नरा ।
आयारभाव तेणेय हवइ देवकिव्विसं ॥

तप, रूप, वय. आचार विचार आदि में झूठ चलाना अथवा इनकी चोरी करना भाव चोरी है । जो भाव-विचार या खयालात अपने नहीं है फिर भी उनके सम्बन्ध में कह देना कि ये हमारे भाव हैं, यह भाव चोरी है । दूसरों के विचार अपने नाम से जाहिर करना भी भाव चोरी है । नाम स्थापना द्रव्य और भाव चारों सत्य भी होते हैं और असत्य भी । अत इन में विवेक रखने की जरूरत है ।

वीर्य से उसके समान आकृति वाली संतान बनती है। यह परम्परा है। मगर इस परम्परा में यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि जैसा अन्न पानी होगा वैसा वीर्य बनेगा और तदनुसार सन्तान भी। जो अपने धर्म कर्म, और भावी संतान का खयाल रखता है वह मानव है।

इस पर प्रश्न होता है कि इस व्याख्या से तो विद्वान्, मूर्ख, बालक वृद्ध जंगली और नागरिक सब मानव कहे जायगे। ज्ञानी इसका उत्तर देते हैं कि मानव की खोरी होने पर भी जिसमें मानव धर्म पाया जाता है। वह मानव है। एक कवि कहते हैं:—

दीसतके नर दीसत है, पर लक्षण तो पशु के सब ही हैं।
पीवत खावत उठत बैठत, वो घर वो वनवास यही है॥
सांझ पडे रजनी फिर आवत सुन्दर यों फिर भोर वही है।
और तो लक्षण आन मिले सब, एक कमी सिर सींग नहीं है॥

जिसमें मानव धर्म नहीं है, ज्ञानियों ने उसे बिना सींग पूंछ का पशु कहा है। जिसमें द्रव्य मानवता है मगर भाव मानवता नहीं है वह वास्तविक मानव नहीं है। धर्म के बिना मानवता संभव नहीं है। आजकल लोग धर्म को एक प्रकार का बोझा समझते हैं। वे उसका तत्काल और प्रत्यक्ष फल चाहते हैं। जैसे रुपया भुनवाया और चीजें मिली उसी प्रकार धर्म का तत्काल फल भोगना चाहते हैं। परलोक किसने देखा। परलोक में धर्म का फल मिलेगा, इस आशा पर धर्म करना और समय बरबाद करना, ठीक नहीं। आदि बातें सुनने में आती हैं। मगर यह कथन ठीक नहीं है। जन्म होने के बाद यदि धर्म का उपक्रम न हो तो मनुष्य असंस्कारी रह जायगा। जैसे खेती करके कपास पैदा किया जाता है। यदि किसी से लज्जा ढांकने के लिए अपने शरीर पर कपास लपेटने के लिए कह दिया जाय तो वह न लपेटेगा। जब तक उसकी रुई बनाकर कपड़ा न बना लिया जाय, कोई शरीर पर न धारण करेगा। इसी प्रकार बालक को, जैसा जन्मा है वैसा ही रखना, उसका क्रिया द्वारा संस्कार या सुधार न करना, कपास को कपास ही रखना है। जो किसी को उपयोगी न होगा।

ज्ञानी कहते है राग भाव के समान दूसरा कोई जल्म नहीं है। राग भाव के वश होकर माता पिता अपनी सन्तान को भार स्वरूप बना देते हैं। सन्तान में धर्म के संस्कार न

डाल कर उसको कोरी रख देते हैं। बिना धर्म के न तो सुधार ही हो सकता है और न जीवन ही बन सकता है।

श्री अनुयोगद्वार सूत्र में उपक्रम के छः भेद बताये गये हैं १ नाम उपक्रम २ स्थापना उपक्रम ३ द्रव्य उपक्रम ४ क्षेत्र उपक्रम ५ काल उपक्रम ६ भव उपक्रम। सब उपक्रमों के वर्णन का अभी समय नहीं है अतः सम्बन्धित उपक्रमों के विषय में कुछ कहता हू। भूत और भविष्य को छोडकर जो वर्तमान में बरता है उसका उपक्रम, द्रव्य उपक्रम है। इसके सचित्त और अचित्त दो भेद है। सचित्त उपक्रम के द्विपद चतुष्पद और अपद में तीन भेद है। द्विपद में मनुष्य, चतुष्पद में पशु और अपद में वृक्षादिकों का समावेश होता है। इन सब का उपक्रम होता है। उपक्रम भी दो प्रकार से होता है। १ वस्तु विनाश और २ परिक्रम। वस्तु को भ्रष्ट करना यह वस्तु विनाश है और वस्तु को नाना प्रकार से सुधारना संस्कारित करना परिक्रम है। मनुष्य का शारीरिक मानसिक और बौद्धिक विकास करना उसका परिक्रम करना है। जैसे मिट्टी में घडा बनने की योग्यता रही हुई है किन्तु जब तक कुंभकार क्रिया द्वारा उसकी शक्ति को विकसित न करे, घडा नहीं बन सकता। मिट्टी का उपक्रम किये बिना उसका घडा नहीं बन सकता। बिना उपक्रम के कोई मिट्टी में खीचडी नहीं पका सकता। हडिया मिट्टी की ही बनती है मगर उपक्रम करने से बनती है। बिना उपक्रम के मिट्टी का ढेला, ढेला ही बना रहेगा। इसी प्रकार मनुष्य शरीर भी एक प्रकार से मिट्टी के ढेले के समान ही है मगर उसका परिक्रम किया जाय तो यह ढेला ऐसे चमत्कार करके दिखा सकता है जिन्हें देखकर दुनिया चकित रह जाती है।

शक्ल या इन्द्रियों की बनावट के कारण ही कोई मानव नहीं कहा जा सकता। मानव तो तब कहा जायगा जब धर्म की बातों का उसमें संस्कार या परिश्रम किया जायगा। आज परिश्रम को विकास कहा जाता है। जिस व्यक्ति का जिस विषय में विकास हो वह उसी ओर प्रगति कर सकता है। जो पढा लिखा है वह थोड़ी देर में बहुत कुछ लिख सकता है। मगर बे पढा व्यक्ति चार हरुफ लिखने में भी बहुत समय लगा देगा। उपक्रम ही इस अन्तर का कारण है। जिसने बचपन में लिखने का खूब अभ्यास किया है वह शीघ्र लिख सकता है। बड़ी उम्र में तो ऐसा मालूम होता है मानो हमारी कलम में सरस्वती उतर आई है मगर विचार करना चाहिए कि वर्तमान की इस सफलता के पीछे भूतकाल का कितना परिश्रम रहा हुआ है। किसी किसान से लिखने के लिए कहा जाय तो वह नहीं लिख

सकेगा क्योंकि बचपन में उसका इस विषय का परिक्रम नहीं हुआ है। यदि आप सदृश पढ़े लिखे लोगों से खेती करने की बात कही जाय तो आप इसमें सफल नहीं हो सकते क्योंकि इस विषय में आप का उपक्रम नहीं हुआ है। किन्तु यह न भूल जाइये कि आपका जीवन निर्वाह खेती के उपक्रम से ही होता है। कला कौशल के विकास को शास्त्रकार द्रव्य उपक्रम कहते हैं।

एक व्यक्ति में सम्पूर्ण उपक्रम नहीं पाया जाता। यदि व्यक्ति का सार्वत्रिक उपक्रम या विकास हो गया तब तो उसमें और परमात्मा में कोई अन्तर न रह जायगा। व्यक्ति को निराश होने की जरूरत नहीं है उसे विकास के लिए हर क्षण प्रयत्न करते रहना चाहिए।

शास्त्र में मेघकुमार राजकुमार था। उसको गर्भ से लेकर आठ वर्ष तक की उम्र में होने वाली सब क्रियाएं बराबर हुई थीं। फिर उसे कलाचार्य को सौंपदिया। कलाचार्य के पास उसने लिखने से लेकर शुकुन पर्यन्त की ७२ कलाएं सीखीं। इन बहत्तर कलाओं में मानव जीवन की आवश्यक्ता सम्बन्धी सम्पूर्ण बातें आजाती हैं।

पहले जमाने में हर आदमी बहत्तर कलाओं में प्रवीण होता था। उसे सूत्रत अर्थत और कर्मतः इन कलाओं की शिक्षा दी जाती थी। सूत्रत का मतलब है पहले इन कलाओं का सामान्य अर्थ के साथ मुखपाठ कराया जाता था। बाद में उनका विवेचन समझाया जाता था। पुस्तकों द्वारा या मौखिक हर कला का सिद्धान्त बताया जाता था यह अर्थत. शिक्षण हुआ। तत्पश्चात् प्रयोग करके, परीक्षण करके उसका अभ्यास कराया जाता था, यह कर्मतः शिक्षा हुई।

आजकल कालेजों की पढ़ाई का ढग ही निराला है। बड़ी उम्र तक छात्र थ्योरी (सिद्धान्त) का अध्ययन करते रहते हैं मगर उस थ्योरी को प्रेक्टीस (अभ्यास) में उतारने की कोशिश नहीं की जाती। कोरी किताबी शिक्षा से क्या लाभ जो अमल में न लाई जाय। कॉलिजों में कृषि शास्त्र का अध्ययन करके खेती करने में विद्यार्थी शरम का अनुभव करें अथवा अपने नाजुक स्वास्थ्य के कारण ऐसा न कर सकें तो इस अध्ययन का क्या फलितार्थ हुआ। जब तक पढाई को क्रिया का रूप न दिया जाय तब तक वह बेकार है।

अत मुझे अपने युवक भाइयों से कहना है कि आप लोग केवल पुस्तकीय विद्याएं पढ़कर ही न रह जाना मगर उनमें सीखे हुए ज्ञान को आचरण में लाने की पूर्ण

कोशिश करना। आज भारत गारत इसी लिए हो रहा है कि उसके युवक थोडा पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करके ही अभिमान में फूल जाते हैं। पुस्तकों के ज्ञान से ही वे सन्तुष्ट हो जाते हैं मगर कोरे ज्ञान से उनका व उनके कुटुम्ब का तथा देश का पेट नहीं भर सकता। ज्ञान के अनुसार क्रिया करना आवश्यक है।

सुना है एक अमरिकन व्यक्ति भारत में सिविल (ऊँची नौकरी) करके पेंशन याफ्ता होकर अपने देश को लौट गया। वहां एक दिन उन का एक भारतीय मित्र भ्रमण करता हुआ उनके घर पर आ निकला, भारतीय ने उनकी स्त्री से पूछा कि साहब कहा गये हैं। स्त्री ने जवाब दिया, बैठिये अभी आये जाते हैं। थोड़ी देर बाद एक सज्जन जांघिया पहिने हुए, हाथ में कुदाला लिए हुए और मिट्टी में सने हुए आये जिन्हें पहिचान कर भारतीय मित्र मन में बडा अचरज करने लगा कि एक बहुत बडे पद पर कार्य कर चुकने वाला व्यक्ति, ऐसी शक्ल बनाकर खेत में काम करता है। वह साहब से मिलने के लिए आगे बढा मगर साहब बिना कुछ बोले ही सीधा स्नान घर में चला गया। स्नान करके कपडे पहिन कर अपने बैठक के कमरे में आकर भारतीय दोस्त को बुलाकर साहब बहादूर बातें करने लगे। बातचीत के दौरान में भारतीय ने पूछा कि कहां तो आपका वह रूआब और पोजिशन जो भारत में थी और कहा आज आप की यह दशा जो खेती करने पर उत्तर आये। साहब ने कहा ऐ मेरे दोस्त! तुम्हारे भारत देश में यही तो कमी है कि तुम लोग थोड़ासा ऊँचा पद पाकर फूल कर कुप्पा हो जाते हो। फिर उस मान मर्यादा के निर्वाह के लिए जीवन पर्यन्त कष्ट में पड़े रहते हो और शक्ति उपरान्त खर्च खाते रहते हो। तुम्हारी देखा देखी हम लोगों को भी भारत में उसी झूठे पोजिशन में रहना पडता है। मेरे पास धन की कोई कमी नहीं मगर हम लोग अपने काम को नहीं छोडते। जो धन्धा मेरे पूर्वज वंशपरम्परा से करते आ रहे हैं उसे क्यों छोड़ा जाय।

मित्रों! अमेरिका के धनवानों की तो यह बात है और भारत के धनवान् और शिक्षित लोगों की यह दशा है कि वे दूसरों के लिए बोझा रूप बन जाते हैं। भारत का सौभाग्य है कि अभी तक भारतीय किसान इस सभ्यता तक नहीं पहुँचे हैं कि खेती बाड़ी छोड कर ऐश और आराम का जीवन व्यतीत करें। नहीं तो भारत को बड़ी कठिनाई में पडना पड़ता। खान देश आदि में कुछ किसान ऐसे हैं, जो पढ़े लिखे है और चालाकी करने में मज़ा मानते हैं, श्रम कम करते हैं। मगर सब किसान ऐसे नहीं है।

शास्त्र कथित परिश्रम का खयाल कीजिये। ऐसा न हो कि पढे लिखे और बे पढ़ों के बीच एक मजबूत खाई तय्यार हो जाय। नये और पुराने लोगों के बीच मेल सधता रहे, इस बात का ध्यान रखना चाहिये। नहीं तो जीवन निर्वाह कठिन हो जायगा। और काम न चल सकेगा।

शास्त्र में कही हुई बहत्तर कलाएं द्रव्य उपक्रम में हैं। कोई भाई यह कहे कि महाराज हमें द्रव्य उपक्रम से क्या मतलब है. हमें भाव उपक्रम बताइये जिससे हम हमारी आत्मा का कल्याण करें। उसको मेरा कहना है कि द्रव्योन्नति के बिना भावोन्नति नहीं होती। जिसका शरीर और मन कमजोर है वह क्या भावोन्नति करेगा? उस पर धर्म की शिक्षा का क्या असर होगा? आज शरीर का परिश्रम न किया जाने के कारण शरीर सशक्त नहीं है। अहमदनगर में राममूर्ति पहलवान ने कहा था कि मुझे कैसा ही दुबला और कमजोर पाच वर्ष का बच्चा सौम्प दिया जाय मैं उसको बीसवें वर्ष में पहुचते हुए राम मूर्ति बना दूगा। परिश्रम से यह शक्य है। भाव परिश्रम के लिए द्रव्य परिश्रम आवश्यक है। यही कारण है कि शास्त्रों में सहनन (शरीर की मजबूती) को भी मोक्ष में निमित्त कारण माना है।

यह द्रव्य धर्म की बात हुई। भाव धर्म के लिए द्रव्य धर्म आवश्यक है। किन्तु केवल द्रव्य धर्म हो और भाव न हो तो वह द्रव्य धर्म आत्मा के लिए उपयोगी नहीं हो सकता। शास्त्र में कहा है—

'सव्वे कला धम्म कला जिणइ'

अर्थात्—धर्म कला सब कलाओं से बढ़कर है। आप कहेंगे कि जिन्दगी निभाने का सब काम द्रव्य धर्म से चल जाता है फिर भाव धर्म की क्या आवश्यकता है। भाव धर्म के बिना कौनसा काम अड जाता है। इसका उत्तर यह है कि जिसके लिए द्रव्य धर्म का पालन किया जाता है उसी को अगर न जाना तो द्रव्य धर्म का पालन व्यर्थ हो जायगा। आप जो कुछ करते हैं वह आत्मा ही के लिए तो करते हैं जब आत्मा को ही न पहिचाना तो जीवन धारण ही व्यर्थ हो जायगा। भाव धर्म से आत्मा की पहिचान होती है और वह अपना निजरूप प्राप्त करता है।

किसी भाई को आत्मा किसे कहते हैं यह भी न मालूम हो अतः बता देता हू कि आपका यह शरीर कार्य है या कारण। शरीर कार्य है। इसका कारण पंचभूत हैं।

घड़ी कार्य है और उसके कल पुर्जे कारण हैं।' यहां तक समझने में तो भूल नहीं होती है। भूल इसके आगे होती है। आगे समझिये कि यदि यह शरीर कार्य है तो इसका कर्त्ता कौन है। किसने पंच भूतों के साथ मेल साधा है। कई भाई कहते हैं कि जैसे पुर्जों के सम्बद्ध होने से घडी चलती है। उसी प्रकार पांच भूतों के मेल से शरीर चलता है। आत्मा नामक छठे तत्व की कल्पना करने की क्या आवश्यकता है। हमारा यह कहना है कि आखिर घड़ी के पुर्जे भी किसी के मिलाये बिना अपने आप नहीं मिल गये, मिलाने से मिले हैं। उसी प्रकार पच भूतों का मेल अपने आप नहीं हो जाता। मेल कराने के लिए किसी कर्त्ता की आवश्यकता है। जो कर्त्ता है वही आत्मा है। ईंट और चूना पृथक् पृथक् रखे पडे हैं। जब कोई कर्त्ता--कारीगर उनको मिलता है तब भवन बन कर खडा होता है। आप शरीर और पच भूतों को तो माने और शरीर के कर्त्ता आत्मा को न माने यह कैसे हो सकता है। आपको मानना पडेगा।

मैंने मेरी कोरेली नामक एक पाश्चात्य विदुषी के लेख का अनुवाद पढा था। उसमें उसने बताया कि ससार के पदार्थों का रूपान्तर होता है, एकान्त विनाश नहीं होता। मोमबत्ती के जल जाने पर यह खयाल किया जाता है कि वह नष्ट हो गई किन्तु दर असल वह नष्ट नहीं हुई, उसका रूपान्तर हो गया, यदि जलती मोमबत्ती के पास दो वैज्ञानिक यत्र रख दिए जाय तो उसके सब परमाणु एकत्रित हो जायगे। जिनको मिलाकर फिर मोमबत्ती बनाई जा सकती है। पानी सूख जाने पर भी लोग खयाल करते हैं कि पानी नष्ट हो गया, मगर पानी नष्ट नही होता। पानी दो हवाओं के सयोग से बनता है। सूखा हुआ पानी हवा में मिल जाता है। फिर दो हवाओं के सयोग से पानी बन जाता है। घड़े को फोड़ा जाय तो उसकी ठीकरियां हो जायगी। ठीकरिया फोड़ी जायगी तो बारीक रेत हो जायगी किन्तु पदार्थ बिलकुल विनष्ट न होगा। जब कि ससार की ये तुच्छ वस्तुएँ भी बिलकुल विनष्ट नहीं होतीं तब आत्मा जो कि सब का मेल साधने वाला है, कैसे नष्ट हो सकता है।

इस आत्मा को जिस धर्म की आवश्यकता है वही मानव धर्म है। मैं मानव धर्म को जैन, बौद्ध, वेदान्ती, ख्रीस्ती, इस्लाम आदि साम्प्रदायिक अर्थ में न लेनाकर, उसके सामान्य सर्व साधारण रूप को बताना चाहता हू। सामान्य रूप को कोई इन्कार नहीं कर सकता सब धर्मों ने सामान्य रूप को स्वीकार किया है जिस मजहब में धर्म की सर्व सामान्य बातें नहीं हैं वह एक पक्षी माना जायगा। पहले इस्लाम की बात कहता हू। कुरान में कहा है—

ला तो अजे वोम्बुल कुल्ला

अर्थात्—हे मुहम्मद ! तू दुनिया को आगाह करदे कि अल्लाह की खल्क को कोई न सताये ।

अब विचार करने की बात है अल्ला की मखलूक कौन है। क्या हिन्दु अल्ला की मखलूक नहीं है ? यदि केवल मुसलमान ही अल्ला की मखलूक हो तब तो अल्ला पक्ष पाती ठहरेगा और वह सारी दुनिया का मालिक न रहेगा। कोई मुसलमान किसी हिन्दू को सताये तो वह कह सकता है कि तू तेरे मालिक को पहिचानता है या नहीं ? वह सब का रक्षक है। वह किसी को न सताने की बात कहता है। हिन्दुओं के लिए भी यही बात लागू होती है। उनका परमात्मा मुसलमानों का भी परमात्मा है। एक परमात्मा की छत्र छाया में रहने वाले आपस में कैसे लड़भगड सकते हैं। यदि लडते हैं तो परमात्मा उपेक्षा करते हैं।

एक आदमी हाथ में माला लेकर फिरा रहा था। दूसरा उसके पास आकर गाली देने लगा। माला फिराने वाले ने कहा, देखता नहीं है, मैं माला फिरा रहा हू, मेरा परमात्मा तेरा नाश कर देगा। दूसेर ने कहा परमात्मा जैसा तेरा है वैसा मेरा भी है। मेरा क्यों नाश करेगा, तेरा नाश करेगा ?

परमात्मा किस की तरफदारी करे। किस का पक्ष ग्रहण करे और किस का नहीं। इन्ही बातों को लेकर आज के नवयुवकों की ईश्वर और धर्म विषयक श्रद्धा ढीली पड गई है। कोई तो ईश्वर का बायकाट करता है और कोई धर्म का। किन्तु इस में ईश्वर और धर्म का कोई दोष नहीं है। दोष है, ईश्वर और धर्म के स्वरूप समझने वाले व्यक्तियों का। धर्म, सब को आपस में प्रेम से रहने की बात कहता है।

अब हिन्दुओं की सर्व मान्य गीता में देखिये। उस में कहा है कि सब वेद पुराण का सार यह है.—

निर्वैरः सर्वभूतेषुयः स मामेति पाण्डवः ।

अर्थात्—जो सब प्राणियों के साथ वैरभाव रहित होकर वर्ताव करता है वह मुझ (परमात्मा) को प्राप्त होता है। जो बात कुरान में है वही भाषान्तर से गीता में है।

अब जिस शास्त्र का मैं जिम्मेदार हूं उसकी (जैन शास्त्र) बात बताता हू।
उस में कहा है—

अप्प समं मनिज्ञा छप्पि कायं

अर्थात्—प्राणी मात्र को अपनी आत्मा के समान मानो। जब प्राणी मात्र को आत्मवत् मान लिया जाय तब किसके साथ वैर विरोध किया जाय।

उदयपुर (मेवाड) में एक वकील ने मुझ से प्रश्न किया कि जब आत्मा अमर है, अविनाशी है किसी के मारने से मरता नहीं है, फिर किसी मारने या सताने से पाप कैसे हो सकता है। उत्तर में मैंने कहा था कि आत्मा अविनाशी है इसी लिए पाप लगता है और उसका फल भोगना पडता है। यदि आत्मा नाशवान् हो तब तो कोई झगडा ही न रहे। मारने वाला और मरने वाला दोनों खत्म हो गये फिर क्या झगडा रहा। व्यवहार में भी मरे हुए पर दावा नहीं होता दावा जिन्दे पर होता है। आत्मा सदा कायम रहता है। शरीर रूप खोलिया बदल जाती हैं। आत्मा ने शरीर धन कुटुम्ब आदि को अपना मान रखा है। उसके द्वारा प्रिय माने हुए पदार्थों को उससे जुदा करना यही पाप है, हिंसा है जो सबको अपनी आत्मा के समान समझेगा 'तत्र कः मोह क शोकः' उसको क्या मोह और क्या शोक हो सकता है। यह सर्व सामान्य मानन धर्म है।

ठाणाग सूत्र में दस धर्मों का वर्णन है। इन धर्मों पर मैंने लम्बे व्याख्यान दिए हैं, जो पुस्तकाकार में प्रकट हुए हैं, और जिनको लोगों ने खूब पसन्द किया है। इसी प्रकार मनु ने भी दस धर्म बताये हैं। ठाणाग सूत्र प्रतिपादित और मनु द्वारा कथित दस धर्म सामान्य धर्म है जो मनुष्य मात्र के लिए उपयोगी हैं। कोई कहीं भी रहे, किसी भी स्थिति में रहे, सामान्य धर्म का पालन करना आवश्यक माना गया है महाभारत में मानव का साधारण धर्म बताते हुए कहा है—

श्रद्धा कर्म तपश्चैव सत्यम क्रोध एवच।
स्वेषुदारेषुसंतोषः शौचं विद्या न सूयिता॥
आत्म ज्ञानं नितिक्षाच धर्मः साधारणो नृपः।

१ श्रद्धा रखना २ सत्कर्म करना ३ तपस्या करना ४ सत्य बोलना ५ किसी पर क्रोध न करना ६ अपनी स्त्री में सतोष मानना ७ पवित्र रहना ८ विद्याध्ययन करना ९ किसी से वैर न करना १० क्षमा धारण करना। ये दस सामान्य धर्म हैं। जिस घर में इनका पालन न होता हो वहा हाँ हा कार मच जाता है।

माताने सामान्य धर्म का पालन किया तब आज हम इस अवस्था में मौजूद है। यदि माता जन्मते ही हमको फेंक देती तो हमारी क्या दशा होती। हमारा जीवन धर्म ही के आधार पर टीका हुआ है। अतः जिस वृक्ष की शीतल छाया में बैठे हो उसकी डालियां अथवा जड मूल को मत काटो। धर्म के बल पर हमारा जीवन टिक रहा है। उसको उखाड़ फेंकना ठीक नहीं है। शरीर के लिए अन्न वस्त्र जितने जरूरी हैं आत्मा के लिए धर्म उतना ही जरूरी है।

आपकी शादी हो चुकी है। आप कैसी स्त्री पसन्द करते है। जो पति के अनुकूल वर्ताव करे उसे या जो पति को गालीयाँ देती हो उसे ? चाहते तो सभी अनुकूल आचरण करने वाली ही। बिना धर्म का पालन किये स्त्री अनुकूल वर्ताव नहीं कर सकती। धर्म का पालन किये बिना पिता सतान का पालन पोषण भी नहीं कर सकता। एक श्वास भी संसार में धर्म के बिना नही लिया जा सकता। धर्म का अर्थ नियम है विरुद्ध एक सांस भी न लेना मानव धर्म है। दूसरों से नियम पालन की आशा रखने वालों को स्वय भी नियम पालन करना चाहिए।

अब मैं धर्म का एक बारीक तत्व आपके सामने रखना चाहता हू। अभी तक सामान्य धर्म का कथन किया गया है और सामान्य धर्म और नीति में अन्तर नही है, यह बात कोई कह सकता है। दरअसल नीति धर्म की नींव है। नीति के आधार पर धर्म रूप भवन बनाने से वह स्थायी रह सकता है। नीति विरुद्ध काम करने वाला धर्माचरण नहीं कर सकता। नीति का सहारा लेकर उस पर क्या महल खड़ा करना चाहिए यह बात मैं हितोपदेश की एक कथा के सहारे बताना चाहता हू, ताकि सर्व साधारण को सुगमता से समझ में आ जाय।

कबूतरों की एक टोली विचरती थी। टोली के कबूतरों ने विचार किया कि मुहँ मुँह विचरने से ठीक नहीं रहता अतः किसी को नेता बनाकर उसके नियन्त्रण में रहना चाहिए। चित्रग्रीव नाम के कबूतर को अपना नेता चुन लिया। वैज्ञानिकों का कथन है कि लोग जिसको अपने से बडा मानते हैं उसमें कोई अलौकिक गुण भी होता है। कबूतरों ने गुण देखकर उसे अपना प्रेसिडेण्ट अथवा राजा बनाया। अब सब उसकी आज्ञानुसार विचरने लगे।

एक जगह एक पारधी ने जाल लगाकर चांवल बिखेर रखे थे। और स्वय झाड़ियों में छिपा बैठा था। चाँवल दिखाई देते थे मगर जाल न दीखता था। सब कबूतरों ने कहा देखे नीचे चाँवल बिखरे पड़े हैं, चलें और चुगें। नेता ने कहा अरे भाईयों !

'अत्र निर्जने वने कुत्र तन्दुल कणानां संभव: ? निरूप्यतां तावत्, भद्रं इदं न पश्यामि' इस निर्जन वन में चॉवल के दानों का कहाँ सम्भव हो सकता है, जरा देखो, मैं इसमें कुशल नहीं देखता।

नेता ने सोच समझ कर बात कही मगर वे कबूतर क्यों मानने लगे। आज के युवक माने तो वे भी माने। नेता चुन लिया मगर उसकी आज्ञा पालन करने में कठिनाई मालूम देती है। एक युवा कबूतर को नेता की यह चेतावनी अच्छी न लगी। उसने कहा वृद्धों की बात सकट के समय मानी जाती है। भोजन के समय मानने से भूखों मरने की नौबत आती है। साक्षात चॉवल दीख रहे हैं, फिर उन्हें न चुगना महज मूर्खता है।

आज के युवक भी यही बात कहते हैं कि यदि हम पुराने लोगों की बातें मानने लगें तो कोई सुधार नहीं हो सकता। लेकिन जो बड़ा या नेता होता है उसका क्या कर्त्तव्य है, यह ध्यान से देखिये।

कबूतरों के नेता चित्रग्रीव ने सोचा कि ये सब लोग एक हो गये हैं अत: इन से अलग रहकर आपस में फूट डालना ठीक नहीं है, कहा, चलो भूख तो मुझे भी लग रही है नीचे चलकर दानें चुगें। वह मन में जानता था कि इस कार्य में सकट है फिर भी उसने सब के साथ रहना ही उचित समझा। संकट में ये लोग अवश्य मेरी बात मानेंगे।

सब उडकर नीचे आ गये और दानें चुगने लगे। जब वापस उडने लगे तब सब के पैर जाल में फँस जाने से उड़ न सके। अब सब कबूतर इस युवा कबूतर को कोसने लगे कि तुमने नेता कहना न मानकर हम सब को फँसा दिया है। उस समय यदि नेता चाहता तो आपस में फूब डलवा सकता था। क्योंकि फूट डालने का सुन्दर अवसर था। किन्तु उसने ऐसा नही किया। उसने कहा इस युवा को दोष मत दो। जब आपत्ति आने वाली होती है तब मित्र भी शत्रु का काम कर बैठते हैं। इसका उद्देश्य सबको खिलाने का था फँसाने का न था। इस में यह क्या करे जो आपति आगई। इसने अपनी बुद्धि में जैसा जँचा वैसी सलाह दी थी। अब इसे गाली या उपालम्भ देने से क्या होता है। हमारी आफत उपालम्भ से नहीं मिट जाती। वह तो उपाय करने से मिट सकती है।

आजकल दूसरों पर दोषारोपण करने और उपालम्भ देने की प्रथा बहुत चल गई है मगर लोग यह नहीं देखते किसी बात के लिए हम उपालम्भ दे रहे है वह हमारे में तो

नहीं पाई जाती। मैंने एक लेख में पढ़ा है कि एक व्यक्ति भाषण खूब लम्बे लम्बे देता है मगर उसमें व्यभिचार करने की अपनी खुद की आदत नहीं सुधारी जाती। ऐसे लोग क्या सुधार करेंगे।

कबतरों के नेता ने कहा कि एक दूसरे की आलोचना को छोड़ कर आपत्ति में से निकलने के उपाय के विषय में सोचो। सब ने कहा, आप ही कोई उपाय बताइये। अब हमारी बुद्धि काम नहीं करती। नेता ने कहा, क्या मेरा कहना मानोगे? सब ने कहा, पहले न माना था जिसका फल अभी भोग रहे हैं अब अवश्य आपकी आज्ञा शिरोधार्य करेंगे।

कष्ट भी एक शिक्षा देता है। उस समय कोई विशेष बात भी हो जाती है। नेता ने कहा सब एक मत हो जाओ। एक भी व्यक्ति अगर अलग रहा तो सब की खेर नहीं है। सब एक साथ उड चलो और इस जाल को ही साथ ले चलो।

आज भारतवर्ष में एकता नहीं है इसी कारण से पारधी लोग मजा उडा रहे है। आपस में फूट डलवाकर अपने घरों में घी के चिराग जलवा रहे हैं। यदि सब भारतीय एक हो जायँ तो क्षण भर में परतन्त्रता की जाल को चीर कर फेंक सकते हैं।

सब कबूतर जाल को लेकर साथ में उड़ चले। पारधी देखता ही रह गया कि मैं इन्हें फँसाने आया था मगर ये तो मेरे जाल को ही ले उडे हैं। इस वक्त इन में एक मत्य है अत ये नीचे न गिरेंगे किन्तु जब इन में आपस में फूट पड़ जायगी तब ये अवश्य नीचे गिर जायगे और मेरा मनोरथ सिद्ध हो जायगा। यह सोच कर वह शिकारी उनके पीछे २ दौडने लगा। नेता ने सबको चेतावनी दी कि शत्रु पीछे भागा हुआ आ रहा है अतः खूब जोर से उडो। ऐसा मन में मत खयाल करना कि मैं क्यों जोर लगाऊ सब लगा रहे हैं। ऐसा सोचेंगे तो पुन परतन्त्रता में पड जाओगे। उडते उडते कबूतर बहुत आगे निकल गये। पारधी थक कर निरुत्साही हो गया और अपने घर लौट गया।

अब नेता ने कहा भाइयों! एक आपत्ति से तो छूट गये हैं मगर अभी इस जाल के टुकड़े हुए विना हम पूर्ण स्वतन्त्र नहीं हो सकते। हम लोग उडना मात्र जानते हैं।

हैं। जाल के टुकड़े हम से न होंगे। अतः गडकी नदी के किनारे मेरा हिरण्यक नाम का मूषक मित्र रहता है, उसके पास चलें। यद्यपि वह चूहा है और मैं कबूतर हू फिर भी समय कुसमय में काम आने के लिए हमने आपस में मित्रता कर रखी है। वह हमारे बधन काट देगा।

सब कबूतर जाल लेकर हिरण्यक के बिल पर पहुँचे। हिरण्यक ने दूर से देखकर कि आज यह क्या आफत आ रही है अपने बिल का आश्रय लिया। बिल के पास आकर चित्रग्रीव ने पुकारा मित्र! बाहर निकललो, या तो तुम्हा तो चित्रग्री हु। आवाज पहिचान कर चूहा बाहर निकला। उसने पूछा तुम इतने बुद्धिमान होकर इस बधन में कैसे फँस गये। चित्रग्रीव ने उत्तर दिया, भाई! समय की बात। जब अनिष्ट होने वाला होता है तब अच्छी बुद्धि नहीं सुझती। नेता ने भी अभी भी अपने साथियों का दोष नहीं बताया। उसे तो केवल अपने साथियों के बन्धन कटवाने की धुन थी। दोष देखने की वृत्ति उसमें न थी। जो लोग काम करना जानते हैं वे दूसरों के दोष नही देखा करते।

चीत्रग्रीव की प्रार्थना पर चूहा उनके बधन काटने के लिए तय्यार हो गया। चूहे ने कहा दोस्त! मैं पहले तेरे बधन काट दू बाद में शक्ति रही धीरे धीरे सब के काट दूँगा। चीत्र ग्रीव ने कहा, ऐसा नहीं हो सकता कि मैं मुक्त हो जाऊँ और मेरे अधीन रहने वाले मेरे भाई बधन में पड़े रहें। चूहे ने कहा प्रिय मित्र! इस में सकोच करने कोई बात नहीं है। नीति भी यही बताती है कि—

आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान्र सेद्धनरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारै रपि धनै रपि॥

अर्थ—आपत्ति के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए। धन से स्त्री की रक्षा करनी चाहिए। किन्तु जब अपनी आत्मा की रक्षा का प्रश्न हो तब स्त्री और धन देकर भी उसका बचाव करना चाहिए।

चित्रग्रीव ने उत्तर दिया, मित्र! नीति यह बात कहती है कि पहले अपनी रक्षा करनी चाहिए मगर धर्म कुछ और बात कहता है धर्म नीति से आगे बढा है।

'नीतिस्ताव दीदृश्यैव किन्त्वहमस्मदाश्रितानां दुखं सोढुं सर्वथा असमर्थ'।
नीति तो ऐसी ही है कि पहले आत्म रक्षा करनी चाहिए किन्तु मैं अपने आश्रितजनों का दुःख सहन करने में सर्वथा असमर्थ हूं। अत. पहले इनको बचाओ, बाद में शक्ति हो तो मुझे बचाना। नीति और धर्म में यही अन्तर है कि नीति कहती है अपनी रक्षा करो, धर्म कहता है अपने आपको तथा अपनी प्रिय वस्तुओं को जोखिम में डाल कर भी दूसरों की रक्षा करो। नीति कहती है लाओ लाओ, धर्म कहता है देओ देओ। नीति स्वार्थ देखती है, धर्म परमार्थ देखता है। अधिक हुआ तो नीतिवान् अपने स्वार्थ के वक्त दूसरों को हानि न पहुँचाने का खयाल रख सकता है। मगर धर्मात्मा अपना सर्वस्व बलिदान करके भी दूसरों को सुख पहुँचाने का प्रयत्न करेगा। नीति मगज की उपज है, धर्म हृदय की उपज है।

जिस प्रकार माता पिता का धर्म बालक को प्यार करने जितना ही नहीं है किन्तु उसका पालन पोषण और ठीक रास्ते लगा देने का है, उसी प्रकार आगे बढ़ते जाओ और धर्म का निर्णय कर लो।' चित्रग्रीव ने अपने मित्र चूहे से कहा, देखो।

जाति द्रव्य गुणानाञ्च साम्यमेषां मया सह।
मत्प्रभुत्वफलं ब्रुहि कदा किं तद् भविष्यति ॥

मेरी और इन कबूतरों की जाति एक है, द्रव्य भी एक है दो पंख मेरे हैं और दो दो पख इनके भी है तथा कबूतरों के सामान्य गुण भी हम सब में समान हैं। फिर क्या कारण है कि ये लोग मुझे अपना नेता मालिक या राजा मानें। मुझे नेता मानने का इन को क्या फल मिला और मैंने नेता बनकर क्या विशेषता की।

आज तो कहा जाता है कि बलवान् के दो भाग। दो भाग ही नहीं किन्तु बहुत से नेता या राजा बने हुए लोग उल्टा अपने आश्रितों का शोपण करते हैं। शोपण करने वाले लोग अपने पशु बल के सहारे '**मान न मान मैं तेरा मेहमान**' के अनुसार हठात् नेता या राजा या सरकार बने हुए है। किन्तु कर्त्तव्य का पालन किये बिना सच्चा नेतृत्व नहीं मिला करता।

चित्रग्रीव कहता है, दोस्त! मेरे दो शरीर हैं, एक भौतिक शरीर जो पंच भूतों से बना है और वापस उन्हीं में मिल जायगा, दूसरा यशः शरीर जो मेरी आत्मा के साथ

कायम रहेगा। मेरे बन्धन काटकर तू मेरे इस नाशवान् भौतिक शरीर की रक्षा कर सकेगा किन्तु मेरे साथियों के बंधन काटकर मेरे अविनाशी यश: शरीर की रक्षा कर सकेगा।

मित्र की उदारता पूर्ण बातें सुनकर चूहे को बड़ा हर्ष हुआ और हर्षावेश में आकर धड़ाधड़ सब के बंधन काटकर फेंक दिए। कहने लगा कि हे चित्रग्रीव! तेरे ये विचार त्रिलोक पति बनाने वाले हैं। जो केवल अपने बंधनों को न काटकर सब के बंधनों को काटने की कोशिश करता है वही तो त्रिलोक पति है। स्वयं कष्ट सहन करके दूसरों को सुख पहुँचाना यही मानव धर्म है। स्वार्थ से ऊँचा उठना ही मानव धर्म है।

चित्रग्रीव ने अपने साथियों को हिदायत दे दी कि बीती हुई घटना को याद करके कभी भविष्य में लड़ना मत **'बीति ताहि बिसारि दे आगे की सुधि लेहि'**

आप लोग भी दूसरों को सुख पहुंचाने का प्रशस्त मार्ग अपनाइये और परमात्मा से यह प्रार्थना करिये कि—

दयामय, ऐसी मति हो जाय।
औरों के सुख को सुख समझूं सुख का करूं उपाय।
अपने सब दुःखों को सहलूं, पर दुःख देखा न जाय॥ दया०॥

राजकोट
२६—७—३६ का
व्याख्यान

नोटः—आज का व्याख्यान काठियावाड़ युवक जैन परिषद् की प्रार्थना से मानव धर्म पर दिया गया है।



सच्ची साधुता



प्रणमुं वासुपूज्य जिननायक, सदा सहायक तू मेरो । प्रा० ।



प्रार्थना में विचित्र प्रकार के विधान करने से उस में विशालता आ जाती है। कोई भाई यह सोचकर प्रार्थना करना बन्द न करदे कि मैं प्रार्थना की विशालता नहीं समझता अत मैं क्यों इस झझट में पड़ू। जो हृदय से प्रार्थना करता है उसके मन में ऐसा विचार नहीं आता।

उदाहरण के लिए एक आदमी के हाथ में एक रत्न जटित अगूठी है, वह उसकी कीमत नहीं जानता है। किसी जौहरी ने अगूठी देखकर कहा, यह अगूठी तुझे कहां से मिल गई, यह बहुमूल्य है। यह बात सुनकर वह आदमी प्रसन्न होगा या नाराज ? प्रसन्न होगा। वह अगूठी को अपनी मानता है अत. उसे प्रसन्नता होती है। यदि अपनी न मानता होता और किसी दूसरे की खयाल करता तब तो उसे प्रसन्नता न होती। वह कीमत नहीं जानता तो क्या हुआ। जौहरी की बात पर विश्वास लाकर प्रसन्न होता है।

इसी प्रकार प्रार्थना की विशालता या गूढ़ार्थ समझ में न आये तो भी ज्ञानीजनों द्वारा उसकी महिमा सुनकर यदि प्रार्थना को अपनी मानते हो तो अवश्य आनन्द आना चाहिए।

भगवान् वासुपूज्य की प्रार्थना में क्या तत्त्व भरे हुए हैं, उनका रहस्य बताने की मुझ में सामर्थ्य नहीं है फिर भी अपनी अपनी शक्ति के अनुसार प्रयत्न करने का सब को अधिकार है। कोयल सब आम्रमजरियों का गुणगान नहीं कर सकती फिर भी समय पर अपनी शक्ति के अनुसार कुछ बोलती ही है। सच्चे भक्त भी, परमात्मा की प्रार्थना के सपूर्ण रहस्य को बताने में असमर्थ होते हुए भी, निन्दा स्तुति का खयाल किये बिना, अपनी शक्ति के अनुसार कुछ कहते ही हैं। प्रार्थना में कहा है ——

खल दल प्रबल दुष्ट अति दारूण जो चौतरफ करे घेरो ।
तदपि कृपा तुम्हारी प्रभुजी अरिय न होय प्रकटे चेरो ॥

ससार में जिनको दुष्ट कहा जाता है, जिनका उद्देश्य दूसरों को कष्ट देना ही है, ऐसे दुष्ट यदि भक्तजन को अपने घेरे में ले ले, तो भी वह नहीं डरता है। भक्त उस समय यह सोचता है कि इनका घेरा मुझे कुछ और ही शिक्षा देता है। जिस प्रकार सच्चा विद्यार्थी शिक्षक की छड़ी को अपने लिए सहायक रूप समझता है, यह मेरी विद्योन्नति करने में बहुत सहायता करती है, उसी प्रकार दुष्टो द्वारा आये हुए विघ्नो को भक्त लोग प्रसाद मानते हैं। दुष्टों की तलवारें हमें परमात्मा की तरफ धकेलती हैं, ऐसा मानते हैं हमारी आत्मा सदा अविनाशी है। दुष्ट अधिक से अधिक हमारा शरीर नाश कर सकते हैं। शरीर नाश से हमारा कुछ नहीं बिगडता वह तो नाशवान् है ही। एक दिन नष्ट होगाही। अहा! भक्तों का यह कितना ऊँचा खयाल है। वे हर हालत में निर्भय और दृढ चित्त रहते हैं। अत: आनन्द भी कभी उनका साथ नहीं छोडता। इस प्रकार की दृढता और निर्भयता रखने से कभी दुष्ट भी अपनी दुष्टता छोडकर मित्र या शिष्य बन जाते हैं। यह बात दूसरी है कि कोई इस भव में दास होता है तो कोई परभव में मगर दृढचित व्यक्ति का कोई कुछ नहीं बिगाड सकता। कामदेव का पिशाच कुछ नहीं बिगाड सका। प्रह्लाद का तलवारें कुछ न कर सकीं। घानी में पिले जाने वाले मुनियों का पीलने वाले क्या बिगाड सके। मुनि उनको अपना मित्र ही मानते रहे। आखिर उन्हीं को पश्चाताप करना पड़ा।

मतलब यह है कि जो कष्ट, उपसर्ग या परिषह को कसौटी मानता है, घबड़ाता नहीं है, वही परमात्मा की सच्ची प्रार्थना कर सकता है । जो ऐसी भावना रखकर अखड प्रार्थना करता है वह प्रार्थना के गुणों को समझ सकता है । वह दुःखों को दु.ख ही नहीं मानता। भयभीत व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता। जो कुछ करता है वह निर्भय और वीर व्यक्ति ही करता है । जो निर्भय होकर प्रार्थना करता है उसके द्वारा यह भूमि धन्य मानी जाती है । जो ऐसे व्यक्ति के दर्शन करता है या वाणी श्रवण करता है, वह भी धन्य है ।

शास्त्र चर्चा

राजा श्रेणिक मुनि के पास बैठा है। मुनि की योग्यता का अन्दाजा लगाकर ही उसने उनसे प्रश्न पूछा है। अयोग्य व्यक्ति को प्रश्न नहीं पूछे जाते। जो समाधान करने में समर्थ हों उन्ही से प्रश्न पूछने चाहिये। राजा ने पूछा, मुनिवर ! भोग भोगने की अवस्था में आपने सयम क्यों ग्रहण कर लिया।

राजा के प्रश्न से ऐसा मालूम होता है जैसे वह भोग भोगना अच्छा मानता है और सयम को बुरा मानता है। आजकल भी कई लोग सयम को बुरा बताते हैं और साधुओं की पेट भर के निन्दा करते हैं। वे साधुओं को समाज पर बोझा रूप समझते हैं। उनकी मान्यता में कुछ सचाई भी है। कारण कि बहुत से लोग साधुओं का साग ग्रहण कर लेते हैं, साधुओं के उचित आचरण नहीं करते। साधु वेष में रहकर बुरे काम करते हैं। इन भ्रष्टाचारी और केवल वेषधारी द्रव्य साधुओं का आचरण देखकर सच्चे साधुओं की निन्दा करना कदापि उचित नही है। खरे खोटे की जाच करनी चाहिए और सड़े पान को बाहर निकाल फेंकना चाहिए ताकि दूसरे पानों को न बिगाड सके। कदाचित् यह कहो कि खरे खोटे का हम कैसे निर्णय करें तो मेरा उत्तर है कि विवेक से काम लीजिये। जो सत्य और झूठ का दूध पानी की तरह निर्णय करता है वह विवेक है । विवेक से काम न लेकर साधु मात्र की निन्दा करना और कहना कि साधुओं से तो हम गृहस्थ ही अच्छे हैं, वाजिब नहीं है। सच्चे साधुओं की निन्दा करना गुणों की निन्दा करना है । कल्चर मोती चले हैं अत सच्चे मोतियों की भी उनके साथ निन्दा करना कहा तक उचित है । आप लोग आसानी से पता लगा सकते हो कि कौन साधु हैं और कौन असाधु। वर्ताव, आकार प्रकार

तथा चेष्टाएं देखकर साधुता असाधुता का निर्णय करना बडी बात नहीं है । '**आकृति गुंणान्कथयति**' शरीर की आकृति ही बता देती है कि कौन गुणी है ।

मैं साधुओं से भी अपील करता हूँ कि महात्मा लोगों जागो ! जागो । आपके कारण धर्म की निन्दा हो रही है अत: सम्भलो और विचार करो । साथ में श्रावकों से भी कहना है कि सब को एक धार से पानी मत पिलाओ । विवेक से काम लो ।

राजा श्रेणिक उन मुनि को साधु ही समझता था और इसी लिए उनको वंदना की और उनकी प्रशसा करके अपने मन की शका उनके सामने रखी। उल्टा प्रश्न किये बिना बात का रहस्य प्रकट नहीं होता । मुनि ने भी सीधा उत्तर दिया है । आजकल के साधुओं की तरह यह न कह डाला कि चल तुझे इन बातों से क्या मतलब । तेरा काम राज्य करना है तू साधुओं की बातों को क्या जाने । किन्तु अनाथी मुनि कैसा जबाब देते हैं । यह जैन साधुओं का चरित्र प्रकट करता है । मेरी ताकत नहीं कि मैं अनाथी मुनि का हूबहू चितार खींचकर आपके सामने रख सकू । यदि वे साक्षात् होते तो भी उन्हें देखकर इतना आनन्द नहीं आता जितना गणधरों की वाणी द्वारा उनका चरित्र सुनकर आ रहा है । अनाथी मुनि नें तो राजा श्रेणिक को ही सुधारा होगा किन्तु गणधरों की कृपा से उनके चरित्र द्वारा न मालूम कितनें लोग सुधरेगें । बहुत भाई इस अध्ययन की प्रातिदिन स्वाध्याय करते हैं । पूज्य श्री श्रीलालजी म० सा० इस अध्ययन का प्रायः नित्य स्वाध्याय किया करते थे । वास्तव में यह अध्ययन है ही स्वाध्याय के योग्य ।

राजा के प्रश्न का मुनि ने उत्तर दिया—

अणाहोमि महाराय ! णाहो मज्झ न विज्जइ ।
अणुकंपग सुहिं वावि, किंचि नाभिसमेमहं । ९॥

हे महाराज ! मै अनाथ था, मेरा रक्षण करने वाला कोई न था, न कोई मेरा पालन करने वाला था अत मैंने संयम धारण कर लिया । साधु बन गया ।

नाथ किसको कहते है, यह पहले जान लें । जो योग और क्षेम करे वह नाथ है । '**अलब्धस्य लाभो योगः, लब्धस्य परि पालनं क्षेमः**' अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करना योग है और प्राप्त वस्तु की रक्षा करना क्षेम है । जो नहीं मिली हुई वस्तुको दिलाये और मिली हुई का परिपालन करे वह नाथ है ।

अनाथी मुनि कहते हैं 'मेरा कोई नाथ न था, कोई मेरा रक्षण करने वाला न था, धर्म समझकर भी मेरी कोई अनुकम्पा दया करने वाला न था, सकट समय में काम आने वाला कोई मित्र भी न था अतः मैने सयम धारण कर लिया'।

मुनि का उत्तर सुनकर साधारण लोग यह खयाल करते हैं कि यह कोई रखडु आदमी होगा। खाने पीने सोने बैठने आदि की कठिनता होगी अत' दीक्षा लेली है। अथवा '**नारी मुई गृह सम्पत्ति नासी, मुण्ड मुण्डाय भये संन्यासी**' के कथनानुसार स्त्री चल बसी होगी, सम्पत्ति बरबाद हो गई होगी अतः सिर मुण्डा कर साधु बन गया है।

राजा को भी मुनि का उत्तर सुनकर आश्चर्य हुआ होगा। उसे मन में यह कल्पना आई होगी कि अभी तो इतना घोर कलियुगी समय नहीं आया है कि कोई आदमी रक्षण के अभाव में दूख पाये। आजकल भी यदि कोई दीन अनाथ जन हो तो उसे अनाथालय में भेज दिया जाता है। वह समय तो चौथे आरे का था। अतः राजा को मुनि का उत्तर सुनकर बडा अचरज हुआ ये मुनि ऋद्धि सम्पन्न मालूम होते है फिर इनके लिए ऐसी नौबत कैसे आगई इनका कथन ऐसा मालूम देता है जैसे चिन्तामणि रत्न कहता हो, मुझे कोई रखने वाला नही है, कल्पवृक्ष कहे कि जगत् में मेरा आदर नही है और कामधेनु कहे कि मुझे जगत् में कही स्थान नही। जिनका शरीर शख, चक्र, गदा पद्म आदि लक्षणों से युक्त हो, उनका कोई रक्षणहार नाथ न हो यह कैसे सभव हो सकता है।

हँसते और विचार करते हुए राजा ने मुनि से कहा, ऋद्धि सम्पन्न मालूम देते हुए भी आप अपने को अनाथ कैसे बता रहें है। कवि लोग कहते है कि विधाता हस से रुठ कर उसके रहने के कमल बन को नष्ट कर सकता है, मानसरोवर छुडा सकता है लेकिन दूध पानी को पृथक् पृथक् कर देने के उसकी चोंच के गुण को तो वह भी नहीं मिटा सकता। मैं नही जानता कि आप कौन थे किन्तु आपके देखने मात्र से स्पष्ट मालूम देता है कि आप ऋद्धि सम्पन्न व्यक्ति हैं। मै इस प्रश्नोत्तर को लम्बा करना नहीं चाहता, चलिये यदि आप अनाथ है तो मेरे साथ आइये। मैं आपका नाथ होता हू।

किसी बात को ऊपर से देखकर उसका उल्टा अर्थ नहीं करना चाहिए मुनि का उत्तर विश्वास करने लायक न मालूम होता था फिर भी राजा ने यह नहीं कहा कि आप अन्यथा भाषण कर रहे है। उसने सीधा कह डाला यदि नाथ न होने के कारण ही आपने

घर बार छोड़कर दीक्षा अगीकार की है तो मैं आपका नाथ बनता हू । आप मेरे साथ चलिये । मेरे राज्य में किसी बात की कमी नही है ।

राजा श्रेणिक ने विवेक रखकर जैसा सुन्दर उत्तर दिया वैसा विवेक आप लोग भी रखिये । कोई बात आपको ठीक न जॅचे अथवा आपकी समझ में न आये तो आप एक दम से किसी पर आक्षेप मतकर डालिये ।

अब मै जूनागढ के दीवान साहिब से कुछ कहता हू । मुझे दीवानसा से कुछ लेना देना नहीं है, न किसी मुकद्दमा में ही उनकी सिफारिश की मुझे जरुरत है । मगर उनपर आप लोगों की अपेक्षा बोझा अधिक है । उनका बोझा हलका करने के लिए कुछ कहता हू और जो कुछ कहूगा वह आपके लिए हितकारी होगा अतः ध्यान से सुनिये । पचीस व्यक्ति जारहे हों, उनमें से किसी के सिर भार रखादो तो सब का ध्यान उसीकी ओर आकर्षित होगा । दीवान सा पर ससार का बोझा अधिक है अतः इनको लक्ष्यकर के खास कहता हू ।

सुना है कि मलावार से सागवान आदि लकाड़ियां लाई जाती है । जब कि लकड़िया दरिया में (समुद्र में) पडी रहती है तब उनको एक डोरी से बाधकर एक बच्चा भी जिधर चाहे उधर उनको घूमा फिरा सकता है । किन्तु जब लकाड़िया बाहर निकाली जाती हैं तब उन्हें उठाने के लिए अनेक आदामियों की जरूरत होती है । इस अन्तर का कारण क्या है । जब तक लकाडिया दरिया में थी तब तक उनका आधार दरिया ही था । बाहर निकलने पर दरिया आधार न रहा । आप लोगों से मैं पूछता हू कि आप लोग ससार व्यवहार का सारा बोझा अपने सिर पर ही ले लोगे अथवा दरिया के समान किसी का सहारा ग्रहण करोगे । यदि सारा बोझा अपने ऊपर ही ले लोगे तो उसके भार से दब जाओगे अत परमात्मा रूपी दरिया पर अपना बोझा छोड दीजिये जिससे आपका काम पानी में लकडी के समान हलका हो जाय ।

ससार व्यवहार मे किस तरह रहना चाहिए यह बात एक उदाहरण से समझाता हू । वृक्ष पर बन्दर भी बैठते हैं और पक्षी भी बैठते हैं । जब वृक्ष के टूटने का अवसर आये तब किसको दुःख होगा । पक्षी तो कह सकते हैं कि हम वृक्ष के ही सहारे नहीं है, हमारे पख है, जब तक वृक्ष कायम है इस पर बैठते है जब वह टूट जाता है हम अपने पखों के सहारे उड़ जाते हैं ।

इसी प्रकार इस ससार रूपी वृक्ष के सहारे दो प्रकार के आदमी बैठे हुए हैं। एक धर्म को जानने वाले और दूसरे न जानने वाले। धर्म के जानने वालों को अपना ससार गिर जाने का भय नहीं होता उन्हें आत्म विश्वास होता है कि हम केवल स्त्री पुत्र धन कुटुम्ब जाति आदि के सहारे पर ही नहीं हैं, किन्तु हमें परमात्मा या अपनी आत्मा का भी सहारा है जो कभी नही टूटता। धर्मात्मा लोग ससार का सारा बोझा अपने ऊपर नहीं समझते। वे परमात्मा के सहारे पर रहते हैं अतः ससार का भार उन पर हो तो भी वह पानी में लकड़ी के समान बहुत हल्का होगा। आप लोग भी ससार को नाशवान् मानते हुए धर्म की सेवा करोगे तो यह ससार आपके लिए भार रूप न होगा और आप इसके नीचे न दब सकोगे।

सुदर्शन चरित्र—

धर्म का सहारा किस प्रकार लेना चाहिए यह बात सुदर्शन—चरित्र द्वारा बताता हू।

कला बहत्तर अल्पकाल में सीख हुआ विद्वान।
प्रौढ़ पराक्रमी जान पिता ने किया विवाह विधिठान ॥ रे धन०॥

ससार की सब ऋद्धि मिल जाय किन्तु यदि शील न हो तो सब ऋद्धि धूल समान है। दूसरी ओर केवल शील मिल जाय और दुनिया की कोई ऋद्धि न मिले तो भी कुछ हर्ज नहीं है। चिन्तामणी मिल जाने पर सेर दो सेर चनों की क्या कमी रह सकती है। दुःख है कि आज कल लोग शील को बड़ा नहीं मानते भोग को बड़ा मानते हैं। भोग की सामग्री न मिलने पर रोने लगते है।

शील का अर्थ है सदाचार। सदाचार का अर्थ है पापों से बचकर रहना। सक्षेप में हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार और मदिरापान ये पॉच पाप हैं। इन पाचों में प्राय सब पाप आ जाते हैं। जिसमें ये दुर्गुण नहीं होते उसमें दूसरा कोई पाप नहीं हो सकता। दीपक के होने पर अन्धकार नही रहता इसी तरह शील के होने पर कोई पाप नहीं रहता। मगर जो कुछ होता है वह पुरुषार्थ से होता है। यह कथा इसी तत्त्व पर अवलम्बित है। पूर्व भव में सुदर्शन ने अल्पकाल ही में विशेष पुरुषार्थ द्वारा बहुत विकास कर लिया था। सरसरी तौर से देखने से मालूम होता है कि नवकार के भरोसे रहने से उसकी

मृत्यु होगई । किन्तु बात यह नहीं है । आगे जिस ऋद्धि सिद्धि का वर्णन किया जायगा वह नवकार मन्त्र के प्रताप से ही सुदर्शन को प्राप्त हुई है ।

पांच धायों और अठारह देश की दासियों द्वारा उसका लालन पालन और सामान्य शिक्षण हुआ था । जब वह आठ वर्ष का हो गया तब उसके पिता ने विद्या पढाना आरंभ कर दिया । एक कवि ने कहा है—

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः ।
न शोभते सभामध्ये हंस मध्ये बको यथा ॥

वे माता पिता अपनी संतान के शत्रु है, जो उसे नहीं पढाते । वह संतान, हंसों की पंक्ति में बगुला जैसे शोभा नही पाता, वैसे ही सभा में शोभित नहीं होती । आप लोग अपनी संतान को हंस जैसी बनाना चाहते हो या बगुले जैसी । यदि हंस जैसी बनाना चाहते हो तो उसे विद्या पढाओ और संस्कारी बनाओ । आप लोग कह सकते है कि हमारे राजकोट में सब लोग पढ़े लिखे है यहा अनेक स्कूल्स हैं अत' यह उपदेश यहा व्यर्थ है । किन्तु जो पढ़े लिखें लोग है उनकी विद्या कैसी है, इस तरफ भी ध्यान देना चाहिये ।

सा विद्या या विमुक्तये

विद्या वह है जो मुक्त करे । बन्धन से छुडाये । किस के बन्धन से छुडाये ? विषय विकार और पाप के बंधन से । आधुनिक शिक्षा ऐहिक जीवन की रक्षा करने में भी समर्थ नहीं है वह पारमार्थिक जीवन की क्या रक्षा करेगी । इस ग्रेजुएट्स एक साथ जंगल में जा रहे हों, मार्ग में कोई बदमाश उन्हें लूटने लगे तो क्या वे अपना रक्षण कर सकते है ? भाग तो न जाएगे ? सुना है एक साप के भय से साठ आदमी मर गये । यदि उनमें एक भी आत्मा बली होता और अपना भोग देकर भी दूसरों को बचा सकता तो सब की मृत्यु न होती । आजकल बातें बनाने वाले बहुत है । कहा भी है—

'आओ मियांजी खाना खाओ, करो बिस्मिल्लाह हाथ धुलाओ ।
आओ मियांजी छप्पर उठाओ, हम बुढ्ढे जवान बुलाओ' ॥

इस कहावत में बताये हुए मियाजी खाना खाने के समय तो जवान थे मगर छत उठाने के वक्त बुढ्ढे बनगये । इसी प्रकार वाक्शूर बहुत हैं मगर काम करने वाले थोड़े हैं ।

बातें बनाने वाले शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक विकास कैसे कर सकते हैं। एक भाई कहते थे कि आजकल घर घर बुखार है। मैने उत्तर दिया कि जब बुखार को बुलाया जाता है तो वह क्यों न आये। खान पान, रहन सहन में सयम रखने का उपदेश दिया जाताहै उसपर तनिक भी ध्यान न दिया जाय तो बुखार क्यों न आये। यदि उपवास कर लिया जायतो बुखार न आयगा।

विद्या वह नहीं जो डराये, दिल को कमजोर बनाये। बन्धनसे छुड़ानेवाले सस्कार का नाम ही विद्या है। सुदर्शन में ऐसे ही संस्कार डाले गये थे। आठ वर्ष की उम्र होने से पूर्व बच्चे को पुस्तक देकर पढ़ाना उसकें विकासको रोकना है। शास्त्र में कहा है।

'साइरेगं अट्ठवास जायेणं कलायरियं उवणवइ'

जब बच्चा आठ वर्ष से अधिक उम्रका हो जाताहै तब कलाचार्य के पास ले जाया जाताहै। इससे पूर्व खेलखेल में ही शिक्षा दी जातीहै। सुदर्शन की घर की पढ़ाई पूरी होगई तब कलाचार्य के पास बैठाया गया। केवल शादी करदेने मात्र से माता पिता का कर्त्तव्य पूरा नहीं होजाता। बालकका सार्वत्रिक विकास करना उनका कर्त्तव्य है पहले ७२ कलायें। लड़के को और ६४ कलाए लडकी को सिखाई जाती थी। ज्ञातासूत्र में इनका जिक्र है। इन कलाओं से बच्चे का द्रव्य परिक्रम किया जाता था और उनको सुसस्कृत बनाया जाता था। युद्ध करना भी इन कलाओं में शामिल है।

किसी भाई को यह शका उत्पन्न हो कि युद्ध करना क्षत्रिय का काम है। सब को यह विद्या सीखाने से क्या मतलब। लेकिन शास्त्र में समुद्र पाल के लिए कहा गया है।

'बावत्तरी कलाविये सिखिए नीइकोविय जावणे नयसंपन्ने सुरुवे पिय दसणे'

अर्थात्—पालित नामक श्रावक ने अपने पुत्र समुद्र पाल को ७२ कलायें सिखाई और उसे नीतिवान् बनाया। शास्त्र कहता है कि पालित केवल नाम का श्रावक न था मगर निर्ग्रन्थ प्रवचन का पडित था। फिर भी उसने अपने पुत्र को सब कलाए सिखाई थीं। एक बात अवश्य थी। और वह यह कि सब कलाए धर्म के पाये पर सिखाई जाती थी पाया मजबूत हो तो उसपर चुनीजाने वाली बिल्डिंग भी मजबूत होगी। आजकल पाया

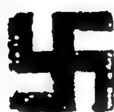
ही कमजोर है। जब धर्म की बात कही जाती है तब सिर चढ़ने लग जाता है। धर्म कोई गहन वस्तु नहीं है। विवेक पूर्वक बुरे कामों से बचना और अच्छे कामों से सबन्ध जोडना धर्म है। आंख और कान से अच्छे दृश्य और अच्छी बातें भी सुनी जा सकती है और बुरी भी। विवेक में धर्म है।

सुदर्शन थोडे अर्से में ७२ कलायें सीखकर होशियार होगया। बडी उम्र वाले जिस बात को बहुत समय में नहीं सीख सकते उसी बात को छोटी उम्र वाले जल्दी सीख सकते है। बडी उम्र वालों के दीमाग में सांसारिक प्रपचों का बहुत भार रहता है और छोटे बच्चों का दिमाग साफ रहता है। दूसरी बात पूर्व जन्म का संस्कार भी जल्दी विद्या ग्रहण करने में कारण है। जिसने पिछले जन्म में विद्याध्ययन किया है वह इस जन्म में थोडे परिश्रम से बहुत अधिक ग्रहण कर लेता है। बहुत से लोग घोर परिश्रम करके भी कुछ याद नहीं रख सकते। इस अन्तर का कारण पूर्व जन्म का संस्कार है। पूर्व जन्म के सस्कार के भरोसे इस जन्म के प्रयत्न को कभी न भूलाना चाहिए। इस जन्म में खूब प्रयत्न करना चाहिए ताकि भविष्य के लिए नींव बन जाय। निश्चय और व्यवहार दोनों को साथ रखकर चलना चाहिए। ऊपर चढ़ने के लिए सिढ़ी की जरूरत होती है, मगर पांव हों तब सीढ़ी काम देती है। दोनों के होने पर काम बनता है। जिस वृक्ष का बीज ही बिगडा हुआ हो उसका सुधार करना कठिन है। किन्तु जिसका बीज अच्छा है केवल वृक्ष में ऊपरी खराबी है उसका उपायों द्वारा सुधार शक्य है। यही बात संस्कार या पूर्व जन्म की पूंजी के विषय में भी है।

अब कोई यह कहे कि हमारा पूर्व जन्म तो बीत चुका है अतः इस जन्म में तो वही होगा जो रेख पड़ चुकी है। किन्तु यह बात ठीक नहीं है। आप आस्तिक है नास्तिक नहीं। आप मकान बनवाते हैं वह केवल अपने लिए नही बनाते मगर भावी पीढ़ी का भी खयाल रखते है। इसी प्रकार धर्म करते वक्त या विद्याध्ययन करते वक्त यह खयाल रखना चाहिए कि इस जन्म में नहीं तो आयन्दा जन्म के लिए सुकृत काम आयगा। **'कृतं न विनश्यति'** करणी का फल वृथा नहीं जाता। फल मिलने में देरी हो सकती है। सुभग द्वारा सीखा हुआ मंत्र उस जन्म में फलित न हुआ तो क्या हुआ। अगले जन्म में मंत्र के प्रभाव से ही उसे सब सुयोग मिला है। यदि सेठ भी उसे तुच्छ समझ कर मंत्र न

सिखाता, जैसा कि कुछ भाई कहते हैं शूद्र मंत्र के अधिकारी नहीं होते, तो क्या उसका अगला भव सुधर सकता है ? कदापि नहीं ! धर्मात्मा लोग ऐसा नहीं करते । वे खुद भी सुखी होते है और दूसरों को भी सुखी बनाने का पूर्ण प्रयत्न करते हैं । आप लोग स्वयं शुद्ध रहो और शुद्ध विचार रखो तथा दूसरों के लिए भी यही करोगे तो कल्याण है ।

राजकोट
२८—७—३६ का
व्याख्यान



राजा का आश्चर्य



रे जीवा विमल जिनेश्वर सेविये ॥ प्रा० ॥



परमात्मा की प्रार्थना करते समय भक्त को मन में कैसी भावना रखनी चाहिए, यह बात इस प्रार्थना में बताई गई है। कहा गया है, हे आत्मन् तू अपनी पूर्व स्थिति को याद कर। पूर्व स्थिति का स्मरण करने से बहुत लाभ होता है, उन्नति होती है। पहले कहां किस स्थिति में रहा, इसका विचार करने से मालूम होगा कि कितनी कठिनाई से यह भव प्राप्त हुआ है। वर्तमान भव की दस बीस, पचीस पचास वर्ष की आयु को व्यर्थ न जाने देकर उचित उपयोग में लगाने की बुद्धि, पूर्व भव का संस्मरण करने से पैदा होती है। ऐसी बुद्धि उत्पन्न होने पर यही विचार निश्चित रूप से आयेगा कि—

रे जीवा विमल जिनेश्वर सेविये।

हे जीव ! तू भगवान् विमलनाथ की सेवा कर। सेवा करने के लिये प्रार्थना में उपाय बताया है कि मोहनी कर्म को नष्ट करके—क्षय करके सेवा कर। प्रार्थना के समय मनमोहन वस्तुओं को तुच्छ मान। उदाहरणार्थ आपके पास एक रुपया है। आप उस रुपये का त्याग नहीं कर सकते। किन्तु यदि रुपये की एवज में मोहर मिलती हो तो आप रुपये का त्याग कर सकते हो। यदि रत्न मिलता होतो आप मोहर को त्यागने में भी हिचकिचाहट न करोगे। इसी प्रकार यदि परमात्मा की भक्ति मिलती होतो उसके लिए सर्वस्व सब कुछ त्यागने के लिए उद्यत रहना चाहिए। भक्ति के सामने जगत् की सब जड वस्तुए तुच्छ हैं। जो कुछ होता है करने से होता है कोरी बातें बनाने से कुछ नहीं होता। मैं करूंगा तो मुझे लाभ होगा और आप करोगे तो आपको। मैं तो जो बात है, आपके सामने रख रहा हू। एक आदमी परोसने का काम करता है। यदि वह सब को परोस दे और खुद न खाये तो वह भूखा ही रहेगा। परोसने वाले को क्या लाभ हुआ। इसी प्रकार परोसने वाले परोसदे और जीमने वाले ऊघते रहें भोजन का उपयोग न करें तो भी परोसना व्यर्थ हो जाता है।

मोहिनी कर्म नाश करके प्रार्थना करने से बचे हुए मोहिनी कर्म का भी नाश हो जाता है। पहले धन स्त्री पुत्रादि पर का मोह हलका करके भगवान् की प्रार्थना करिये। प्रार्थना करने से मोहनीय कर्म का अवशिष्ट अश भी नष्ट हो जायगा और आप भगवान् बन जाओगे। यदि आप सम्पूर्ण मोह को न छोड सको तो कम से कम सासारिक कामों को मुख्य मत मानो उन्हें गौण समझो। आज तो प्रभु प्रार्थना गौण हो रही है और दुनियादारी के काम मुख्य बन रहे हैं। यही भूल है। आप इस आदत को बदल दीजिये। प्रार्थना को मुख्य बनाईये और दुनियादारी को गौण। प्रार्थना के समय सासारिक पदार्थों में से ममत्व बुद्धि को हटा दीजिये।

शास्त्र चर्चा—

यही बात अब शास्त्र द्वारा बताता हू। राजा श्रेणिक अनाथी मुनि से पूछता है कि आपने भरे योवन में दीक्षा क्यों अगीकार की है। अनाथी मुनि ने उत्तर दिया कि मेरा कोई नाथ न था, मैं अनाथ था, अत दीक्षा ली है। मुनि का उत्तर सुनकर राजा बहुत चकित हुआ।

तओ सो पहसिओ राया, सेणिओ मगहाहिवो।
एवं ते इड्ढिमन्तस्स, कहं णाहो न विज्जई॥ १०॥

मगधदेश का अधिपति राजा श्रेणिक मुनि का उत्तर सुनकर हँसने लगा और कहने लगा कि इस प्रकार के ऋद्धिसम्पन्न तुम्हारे नाथ कैसे नही है । यहाँ श्रेणिक शब्द से राजा का परिचय हो जाने पर भी मगधाधिप शब्द का प्रयोग इस लिए किया गया है कि मुनि के उत्तर से हँसने वाला व्यक्ति कोई साधारण आदमी नही है किन्तु मगध देश का मालिक है । कुछ लोग पुनरुक्ति दोष को दूर करने की कोशिश में रहते हैं गणधरों ने जान बूझकर पुनरुक्ति का प्रयोग किया है । माता जिस प्रकार बडे प्रेम से बार बार एकही बात को अपने बच्चे को समझाती है उसी प्रकार गणधर भी बार बार एकबात को समझाते है जिससे जन साधारण भी शास्त्रों की गहन बातों को हृदयगम कर सकें । दूसरी बात साधारण और विशेष व्यक्तियों के हँसने में भी अन्तर होता है ।

हँसकर राजा कहने लगा कि आप जैसे समृद्धिसम्पन्न व्यक्ति को कोई नाथ न था यह बात मानने में नहीं आती । अब पहले यह जान लेना चाहिए कि ऋद्धि किसे कहते है । ऋद्धि दो प्रकार की होती है । १ बाह्य ऋद्धि २ अन्तरग ऋद्धि । बाह्य ऋद्धि में धन धान्यादि का समावेश होता है और अन्तरग ऋद्धि में शरीर की स्वस्थता और इन्द्रियों का पूर्ण विकसित होना है । मुनि के पास उस वक्त बाह्य ऋद्धि न थी किन्तु अन्तरंग ऋद्धि थी । उनकी आकृति बडी अच्छी थी । कहावत है कि '**यत्राकृतिस्तत्र गुणाः वसन्ति**' जहा सुन्दर आकृति हो वहाँ गुण निवास करते हैं। और आकृति गुणों को कह देती है '**आकृतिर्गुणान् कथयति**' । आकृति शुद्ध होने से गुण भी शुद्ध होते है । जिसकी आँखे बडी हो और उनमें लाल डोरे पडे हो, कान लम्बे, प्रशस्त वक्षस्थल, चौडा कपाल और यथायोग्य प्रमाण युक्त इन्द्रियाँ हो, वह गुणवान भी होगा । यही बात सोचकर राजाने कहा कि ऐसे व्यक्ति का कोई नाथ न हो यह कैसे संभव हो सकता है ।

इस विषय में टीकाकार ने अपना अभिप्राय जाहिर किया है कि जहा सुन्दर आकृति हो वहा गुण निवास करते हैं और जहा गुण हों वहा लक्ष्मी भी निवास करती है । लक्ष्मी गुणवान् को ही वरती है, गुण हीन को नहीं । आप पूछ सकते है कि बहुत से गुण हीन और निकम्मे लोगों के पास भी लक्ष्मी दिखाई देती है, इसका क्या कारण है । इसका सामान्य उत्तर यह है कि आपको उस व्यक्ति में गुण न दिखाई देते हों किन्तु कम से कम व्यावहारिक गुण तो उसमें होंगें ही । इसके बिना न तो वह लक्ष्मी अर्जन कर सकता है और न उसका रक्षण ही । यदि किसी लक्ष्मीवान् में दूसरों को अपनी मोटर की झपट में न आने देना जितना भी गुण न होतो उसके पास लक्ष्मी कैसे ठहर सकती है । फिर तो उसे

जेल की हवा खानी पडेगी। बहुत से पढे लिखे लक्ष्मीवालों की टीका किया करते हैं मगर उनमें नौकरी करने का ही माद्दा होता है, व्यापार करने के लिए जिस हिम्मत और गुणों की आवश्यकता होती है। वे उन में नहीं होते अतः विद्यावान् होते हुए भी धनवान् नहीं बन सकते। यहा व्यावहारिक गुणों की बात चल रही है, हेय उपादेय की बात नही चल रही है।

हां, तो जहां गुण हैं वहां लक्ष्मी है। जहा लक्ष्मी होती है वहां आज्ञा भी चलती है। लक्ष्मीवान् के अनेक नौकर चाकर आदि होते हैं जो उस की आज्ञाओं का पालन करते हैं। आज्ञा का पालन होना ही राज्य है। जिस की आज्ञा का पालन होता है वह राजा है। राजा मुनि से कहता है कि आपकी अनाथता मालूम नहीं पडती। बल्कि आप ऋद्धि सम्पन्न दीख रहे है। खैर मैं इस पचायत में नहीं पड़ना चाहता कि पहले आप कैसे थे। यदि आपने अनाथ होने के कारण दीक्षा ग्रहण की है तब तो दुःखी होकर सयम लिया है और दुःख पूर्वक लिए हुए सयम का निर्वाह कब तक हो सकता है। अतः

होमिणाहो भयन्ताणं, भोगे भुंजाहि संजया।
मित्तनाइपरिवुडो, माणुस्सं खु सुदुल्लहं॥ ११॥

हे मुनिश्वर! मै आपका नाथ बनता हू और आप मित्र ज्ञाति से परिवृत होकर भोग भोगिये। मनुष्य जन्म मिलना बडी दुर्लभ बात है। आपको यह मिला हुआ है अत सासारिक भोग भोगकर इसका सदुपयोग करिये। मै मगधाधिप हू। मेरे यहा पर किसी बात की कमी नही है। मेरे नाथ बन जाने से आपका सब दुःख दूर हो जायगा। जिस दुःख से दु.खी होकर आपने यह सयम धारण किया है, वह दुःख, आपका नाथ बन कर मै मिटा देना चाहता हू।

क्या राजा श्रेणिक पागल था जो एक सयम धारी मुनि को ससार के क्षुद्र भोग भोगने के लिए निमन्त्रित कर रहा है। राजा पागल न था। इस कथन का क्या रहस्य है और गणधरों ने इसे शास्त्र में क्यों स्थान दिया है, यह बात समझनी चाहिए। आज आप देख रहे है कि जिस व्यक्ति के पास भोग भोगने की सामग्री मौजूद है उसको भोगों के लिए कोई मनुहार नही करता किन्तु जिसने भोगों का त्याग कर दिया है उसकी मनुहार करने वाले बहुत मिलेंगे। वैसे अनेक आदमी इधर उधर टोला करते है, उन मे कोई नहीं कहता कि चलो हमारे यहां पर रहना किन्तु यदि कोई दीक्षार्थी आ जाय तो उस को सब ले

यहा ले जाकर यह कहा जाता है कि हम आपका इन्तजाम कर देंगे आप क्यों यह कठिन व्रत अंगीकार कर रहे हो। यह भोग के त्याग की महिमा है। जिसने दिल से भोगों का त्याग कर दिया है उसके इर्दगिर्द भोग चक्कर काटा करते हैं किन्तु सच्चे त्यागी महात्मा वमन किये हुए को पुनः नहीं अपनाते। जो भोगों के लिए लालायित रहता है भोग उससे दूर भागते हैं। जो लाओ, लाओ, करता रहता है उसे वह वस्तु नही मिलती और न वैसी मनुहार ही उसकी होती है।

राजाने मुनि से कहा कि आप चलिये और मेरे राज्य में ऐश आराम कीजिये। आप यह न खयाल कीजिये कि मैने घर बार और कुटुम्ब कबीला छोड दिया है अतः अब किनके साथ रह कर भोगोपभोग भोगूगा। आपको मित्र भी मिलेंगे और ज्ञाति भी। आपने दीक्षा लेकर कोई बुरा काम नहीं किया है जिससे कि मित्र और ज्ञाति वाले आप से घृणा करने लगें। मित्र और ज्ञाति के लोग आपको आदर की दृष्टि से देखेंगे और आपका सन्मान करेंगे। वे यही कहेंगे कि अच्छा हुआ सो सयम छोड दिया और हमारे में आ मिले हो। मै आपको यह बात किसी अन्यकारण से नहीं कह रहा हू किन्तु मनुष्य जन्म की दुर्लभता का खयाल करके कह रहा हू। इस दूर्लभ मनुष्यजन्म को भोगभोगे बिना वृक्ष खो देना ठीक नहीं मालूम देता।

आजकल भी अनेक लोगों का यह विचार है कि साधु बन कर जीवन का सत्यानाश करना है। अच्छा खाना पहनना और नवीन आविष्कार करना, इसी में जीवन की सार्थकता है। साधु तो इनके त्याग का उपदेश देते है अतः उनके पास जाकर वक्त जाया करना है। ऐसे लोगों की दृष्टि में भोग भोगना और दुनिया को अपनी कुछ देन दे जाना ही मनुष्य जन्म की सार्थकता है श्रेणिक राजा भी यही बात कह रहा है। वह विषय भोग में ही जीवन की उपयोगिता समझता है। यह बात तो सोलह आना सत्य है। कि मनुष्य जन्म परम दुर्लभ है। किन्तु इस बात में बडा विपाद है कि इसका उपयोग भोग भोगने में करना चाहिये अथवा भोगों का त्याग करके ईश्वरमय बन जाने में करना चाहिए।

एक पक्ष का है कि मनुष्य जन्म, अच्छे वस्त्र बनाने, कल कारखाने खोलकर जीवनोपयोगी साधन सामग्री बनाने तथा सुन्दर भवनों का निर्माण करके उनका उपभोग करने के लिए मिला है। यदि मनुष्य यह काम न करेगा तो क्या पशु करेंगे? क्या सुन्दर वस्त्रों और भवनों का निर्माण पशु करेंगे? हवाई जहाज और रेलगाडी का आविष्कार मनुष्य ही कर सकता है और वही उनका उपयोग कर सकता है।

दूसरे पक्ष में ज्ञानी कहते हैं कि मनुष्य जन्म की सार्थकता अच्छे वस्त्र मकान और दिगर आविष्कार करने मात्र में ही नहीं है । ये काम तो पशु पक्षी और कीड़े मकोड़े भी कर सकते हैं । मनुष्य जन्म की विशेषता इसी बात में है कि जो काम सृष्टि के अन्य प्राणी नहीं कर सकते वह काम करना । हवाई जहाज अभी चले हैं किन्तु पक्षी सदा से आकाश उड्डयन करते हैं और वह भी किसी की सहायता के बिना स्वतन्त्रता पूर्वक करते हैं । हवाई जहाज में पेट्रोल खत्म होते ही नीचे आकर गिरजाता है किन्तु पक्षियों को पेट्रोल की भी आवश्यकता नहीं होती । मनुष्य इधर उधर से कपास ला कर कपड़े बनाने में अपनी शेखी बघारता है किन्तु कई जीव-जन्तु ऐसे है जो अपने शरीर में से ही तन्तु निकाल कर मनुष्य कृत वस्त्र से सुन्दर वस्त्र बना लेते हैं । आप कितना भी घने पोत का कपड़ा बनाइये सूक्ष्म दर्शक यन्त्र से उस में छेद दिखाई देंगे किन्तु मकड़ी ऐसा जाला बनाती है जिस में छेद नहीं दिखाई देता । आपके भवनों से भी बढ़ कर कीड़े सुन्दर भवन बना देते है । दीमकों की बाबी इतनी ऊंची होती है कि मनुष्य का हाथ भी नहीं पहुँच पाता । दीमक कहा से मिट्टी निकाल कर कहाँ चढाती है और कितना सुन्दर घर बनाती है । चिंटी कैसा अच्छा मकान बनाती है । वह मकान में ऐसे २ हक रखती है कि देखकर दंग रह जाना पड़ता है । उसके मकान में प्रसूतिगृह अलग होता है, भोजन रखने का गृह अलग होता है और बच्चों का घर अलग होता है । आपका मकान आपके शरीर के प्रमाण से अधिक से अधिक दस गुना बड़ा होगा किन्तु उनका मकान उनके शरीर प्रमाण से कई गुना अधिक बडा होता है ।

अब रही कला और आविष्कार की बात । क्या शहद की मक्खी की कला मनुष्य से कम है ? उसकी कला देखकर आधुनिक वैज्ञानिक लोग भी दंग रह जाते है ! मक्खियां किस प्रकार एक घर बराबर बराबर बनाती है, मानों सूक्ष्म माप दण्ड लेकर ही बनाये हो । किस प्रकार मोम लगाकर उनमें शहद भरती हैं । कम से कम मोम लगाती है और अधिक से अधिक शहद भरती हैं । जब मोम लगाती है तब सब मिलकर एक साथ लगाती है और जब शहद भरती हैं तब भी एक साथ मिलकर ही । कितनी एक सूत्रता इनके काम में है । क्या आपकी कला इनकी कला से बढ़ कर है ?

इधर के पुद्गल उठाकर उधर रखना और अपनी कृति या कला पर अभिमान करना मनुष्य जन्म की सार्थकता नहीं है वस्तुतः मनुष्य जन्म की सार्थकता आत्मा से परमात्मा बनने की कला में है। यह काम मनुष्य जन्म के बिना नहीं हो सकता और यही कारण है कि ज्ञानियों ने मनुष्य जन्म को महान् दुर्लभ बताया है। यदि आत्मा से परमात्मा बनने के लिए प्रयत्न किया जाय तो मनुष्य जन्म सार्थक है अन्यथा उसकी कोई विशेषता नही है। भक्त तुकाराम कहते है।

अनन्त जन्म जरी केल्या तपराशि तरीहान पवसी मणे देह ऐसा हा निदान।
लागलासी हाथीं त्यांची केली माती भाग्यहीन ॥

अर्थात् अनन्त जन्म तक पुण्यराशी एकत्रित करने पर यह मनुष्य जन्म मिलता है। पुण्यबल से यह दुर्लभ मानव देह हाथ में आया है फिर भी भाग्यहीन व्यक्ति मिट्टी की तरह इसको खो देते हैं।

भगवान् विमलनाथ की प्रार्थना में कहा गया है कि जीव सूक्ष्म निगोद से बादर निगोद में, बादर निगोद से स्थावर योनि में अर्थात् पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति में जन्म लेता है। फिर बे इन्द्रिय, ते इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय में क्रमशः आता है। पचेन्द्रिय में भी मनुष्य की योनि बड़े भाग्य से ही प्राप्त होती है। मनुष्य योनि के साथ आर्य क्षेत्र और उत्तम कुल का योग मिलना और कठिन है। यदि यह भी योग मिल जाय तो सत्श्रद्धा और तदनुकूल आचरण होना सब से कठिन है। मनुष्य जन्म की सार्थकता इसी कठिन मंजिल को तै करने में है। धर्माचरण अथवा जीव से शिव बनने का काम इसी दुर्लभ देह से शक्य है अतः जीव से शिव बनने में ही मनुष्य देह की सार्थकता है। भोग भोगने में मनुष्य जीवन वृथा बरबाद हो जाता है कोई भी बुद्धिमान आदमी बावना चन्दन को चूल्हे में जलाना पसन्द नही करेगा। मानव देह के द्वारा भोग भोगना, बावना चन्दन को भट्टी में झोंकना है। यह इसका बेहतर उपयोग नहीं है। राजा श्रेणिक ने अपने विचारों के अनुसार अनाथी मुनि को भोग भोगने के लिए प्रार्थना की है। मुनि के उत्तर को सुनकर राजा आश्चर्य चकित होकर मुस्करा रहा है। और राजा की प्रार्थना सुनकर मुनि भी मुस्करा रहे हैं। अपना अपना पक्ष लेकर दोनों मुस्करा रहे हैं। मुनि तो यह विचार करके मुस्करा रहे हैं कि जो स्वय अनाथ हो वह दूसरों का क्या नाथ बनेगा। और राजा इस लिए मुस्करा रहा है कि ऐसे व्यक्ति को नाथ न मिलना बडी ताज्जुब की बात है। राजा के द्वारा नाथ बनने के लिए की गई प्रार्थना का मुनि क्या उत्तर देते हैं यह बात आगे बताई जायगी।

सुदर्शन-चरित्र !

अब मैं सुदर्शन की बात कहता हू। सुदर्शन की कथा साधुता की कथा है। उसे सुन कर आप भी भोगो से निवृत्त होने के लिये प्रयत्न कीजिये। एक दम प्रगति न कर सको तो धीरे २ आगे बढ़िये।

कला बहत्तर अल्प काल में, सीख हुआ विद्वान।
प्रोढ पराक्रमी जान पिता ने, किया व्याह विधि ठान ॥१६॥धन॥
रूप कला यौवन वय सरीखी, सत्य शील गुणवान्।
सुदर्शन और मनोरमा की, जोड़ी जुड़ी महान् ॥१७॥धन०॥

ससार की बातों को गौण और आत्म-कल्याण की बातों को मुख्य करके बनाना यह बताने के लिए ही यह कथा है। ससार में शारीरिक मानसिक और बौद्धिक विकास की शिक्षा की जरूरत पूरी है किन्तु शास्त्र कहते हैं कि इन सब शिक्षाओं को गौण बनाकर आत्म—कल्याण अर्थात् आध्यात्मिक शिक्षा की जरूरत को मुख्य बनादो। आजकल इस बात से उल्टा बर्ताव हो रहा है अत ससार बहुत दु खी है।

इस कथा का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है शील—सदाचार। कुछ लोग कहते हैं कि साधु लोग किस काम के। रोटी खाकर पडे रहते है। यदि कोई साधु खाकर पडा ही रहता है और आत्म—कल्याण नही करता वह सचमुच निकम्मा है किन्तु जो साधु आत्म कल्याण और जगत कल्याण के लिए अहर्निश प्रयत्न करते हैं वे भार रूप नहीं है। ऐसे महात्मा प्रकट रूप से न भी बोलते हों फिर भी वे ससार के लिए बड़े उपयोगी हैं। ऐसे महात्माओं का जहा चरण स्पर्श हो वहा आनन्द ही आनन्द है। आप चाहे महात्माओं को भूला दें मगर महात्मा आपको नही भूल सकते। लेकिन [illegible] यह है कि आप सच्चे साधुओं को न भुलाओ। साधुओं की कृपा से ही आज आप इस स्थिति में हो। इतने पर भी यदि कोई कहे कि साधुओं की जरूरत नहीं है तो मैं पूछना चाहता हूं कि चोर जार और व्यभिचारी की तो जरूरत है और साधुओं की जरूरत क्या नहीं है। साधुओं के होने से ही ससार में शान्ति बनी हुई है अन्यथा सर्प पृथ्वी को [illegible] ही बना डालेगा। साधुओं के सत्य के प्रभाव से पृथ्वी टिकी हुई है। 'सत्येन धार्यते पृथ्वी, सत्येन तपते रविः' सत्य से पृथ्वी टिकी हुई है और सत्य के प्रभाव से ही [illegible]

तपता है। साधुओं के प्रताप से ही आज सुदर्शन का चरित्र गाया जारहा है । साधु की कृपा से ही सुभग सुदर्शन बना है। अतः साधुओं की निन्दा करना छोड़कर उनके साथ अपना सम्बन्ध जोड लीजिये। साधु लोग ससार समुद्र में पुल के समान है। किसी नदी पर जब पुल बना दिया जाता है तब एक चींटी भी सुगमता से नदी पार कर सकती है नहीं तो हाथी भी कठिनाई से पार कर पाता है।

सुदर्शन बहत्तर कलाए सीखकर नौजवान हो चुका है। पहले के जमाने में जब तक लड़का कलाए न सीख लेता और उसके सोते हुए सातों अग जागृत न हो जाते तब तक उसका विवाह नही किया जाता था। इसके पूर्व विवाह कर देना बहुत हानिप्रद है।

बाल विवाह से न केवल आध्यात्मिक हानि होती है मगर व्यावहारिक और शारीरिक हानि भी होती है। मान लीजिये कि एक गाडी में पच्चीस जवान आदमी बैठे हैं और दो छोटे बछडे उसमें जुडे हुए है। क्या वे बछडे उस गाडी के भार को खींच सकते हैं ? और क्या ऐसी गाडी में सवार होने वाले दयावन् कहे जा सकते हैं ? कदापि नहीं। इसी प्रकार किसी का विवाह सम्बन्ध जोडना भी संसार व्यवहार का भार है। छोटे बच्चों को इस सम्बन्ध में जोड देना और बाराती बन कर विवाह कराना दयावानों का काम नहीं हो सकता। समझदार और दयावान् ऐसी शादियों में शरीक नहीं सकते। क्या कोई भाई इस विचारों का है जो इस बात की प्रतिज्ञा ले कि मैं सोलह वर्ष से कम उम्र के लड़के और तेरह साल से कम उम्र की लडकी की शादी में लड्डू न खाऊंगा ? कन्या और वर को बडी सुशिक्षा की जरूरत है। आजकल जाहिर तौर पर लग्न होने के पूर्व ही कन्या और वर का शारीरिक सम्बन्ध होने की बातें सुनने में आती हैं। यह भ्रष्टाचार है। यूरोप में कुमारिकाश्रम खुले हुए हैं, जहा विवाह के पूर्व होने वाली सतानों का पालन होता है तथा वहीं पर कुमारिकाएँ बच्चे पैदा कर डालती हैं। भारत में ऐसी बात तो नहीं है फिर भी कालेजों में कुछ किस्से बनते ही है। बाल विवाह निषेध का मकसद ही यह है कि असमय में वीर्य न नष्ट हो।

मेरे लिए कई लोग कहते हैं कि मै अग्रेजी भाषा की टीका करता हू। किन्तु वस्तुतः मेरा अग्रेजी भाषा से कोई विरोध नही है। बल्कि शास्त्र में भी यह बात आई हुई है कि बच्चे की शिक्षा के लिए अठारह देश की दासियाँ रखी जाती थी। अर्थात् भिन्न २ देशों की भाषाए सीखने का कोई विरोध नही है। विरोध इस बात का है कि किसी देश

की भाषा सीखने के साथ साथ उस देश की बुरी बातें न सीखना चाहिए। दूसरे देशों की अच्छाइयाँ ग्रहण करने में किसे एतराज हो सकता है? मेरा मतलब तो इतना ही है कि अंग्रेजी भाषा के साथ अंग्रेजों की वह सभ्यता और संस्कार अपने में प्रविष्ट न होने देने चाहिए जो हमारा धर्म कर्म भ्रष्ट करते हों। भारत देश सदाचार को जीवन का उच्चतम आदर्श मानता है। इस आदर्श की रक्षा करते हुए विद्यार्थी सब कुछ सीख सकते हैं।

दूसरी बात यह है कि मेरे खयाल से हमारी अपनी भाषा में और विदेशी भाषा में माता और दासी जितना अन्तर है। हमारी देशी भाषा माता के समान है और विदेशी भाषा दासी के समान। यदि कोई व्यक्ति माता का आदर करना छोड़कर दासी का आदर करने लगे तो यह ठीक न कहा जायगा। हिन्दू सभ्यता के अनुसार माता पिता और गुरु देव तुल्य माने गये हैं। वेदों में कहा है '**मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव**'। जैन शास्त्रों में भी कहा है '**देव गुरुजण सकासा**' अर्थात् मा देव और गुरुजन के समान है। माता का स्थान दासी से सदा ऊँचा रहता है। आज स्थिति विपरीत है। हमारी राष्ट्र भाषा जो कि माता के समान है दासी की हालत में हो रही है और अंग्रेजी भाषा उसके स्थान में माता बन रही है, यह देखकर भारत हितैषियों को दुःख होता है।

कोई भाई यह दलील पेश करे कि अंग्रेजी भाषा बहुत विकसित है अतः उसके अध्ययन में अधिक रस लिया जाता है और आदर भी किया जाता है तो मेरा उत्तर है कि मेम गोरी है और माता काली है अतः माता की अपेक्षा मेम का अधिक आदर करना क्या वाजिब है? यदि अंग्रेजी भाषा को मातृभाषा या राष्ट्र भाषा के स्थान पर माना जाता हो तो मेरा एक बार नहीं किन्तु हजार बार विरोध है। और यदि अंग्रेजी भाषा को मातृभाषा की दासी मानकर अध्ययन किया जाय तो मेरा कोई विरोध नहीं है। भारत का युवक युवतियों पर प्रभाव पड़ता है अतः इतना इशारा किया गया है।

तपता है। साधुओं के प्रताप से ही आज सुदर्शन का चरित्र गाया जारहा है। साधु की कृपा से ही सुभग सुदर्शन बना है। अतः साधुओं की निन्दा करना छोडकर उनके साथ अपना सम्बन्ध जोड लीजिये। साधु लोग ससार समुद्र में पुल के समान है। किसी नदी पर जब पुल बना दिया जाता है तब एक चींटी भी सुगमता से नदी पार कर सकती है नहीं तो हाथी भी कठिनाई से पार कर पाता है।

सुदर्शन बहत्तर कलाए सीखकर नौजवान हो चुका है। पहले के जमाने में जब तक लड़का कलाए न सीख लेता और उसके सोते हुए सातों अग जागृत न हो जाते तब तक उसका विवाह नही किया जाता था। इसके पूर्व विवाह कर देना बहुत हानिप्रद है।

बाल विवाह से न केवल आध्यात्मिक हानि होती है मगर व्यावहारिक और शारीरिक हानि भी होती है। मान लीजिये कि एक गाडी में पच्चीस जवान आदमी बैठे हैं और दो छोटे बछडे उसमें जुडे हुए है। क्या वे बछडे उस गाडी के भार को खींच सकते है? और क्या ऐसी गाड़ी में सवार होने वाले दयावन् कहे जा सकते हैं? कदापि नहीं। इसी प्रकार किसी का विवाह सम्बन्ध जोडना भी संसार व्यवहार का भार है। छोटे बच्चों को इस सम्बन्ध में जोड देना और बाराती बन कर विवाह कराना दयावानों का काम नहीं हो सकता। समझदार और दयावान् ऐसी शादियों में शरीक नहीं सकते। क्या कोई भाई इस विचारों का है जो इस बात की प्रतिज्ञा ले कि मैं सोलह वर्ष से कम उम्र के लड़के और तेरह साल से कम उम्र की लडकी की शादी में लड्डू न खाऊंगा? कन्या और वर को बडी सुशिक्षा की जरूरत है। आजकल जाहिर तौर पर लग्न होने के पूर्व ही कन्या और वर का शारीरिक सम्बन्ध होने की बातें सुनने में आती है। यह भ्रष्टाचार है। यूरोप में कुमारिकाश्रम खुले हुए हैं, जहा विवाह के पूर्व होने वाली सतानों का पालन होता है तथा वही पर कुमारिकाएँ बच्चे पैदा कर डालती हैं। भारत में ऐसी बात तो नहीं है फिर भी कालेजों में कुछ किस्से बनते ही है। बाल विवाह निषेध का मकसद ही यह है है कि असमय में वीर्य न नष्ट हो।

मेरे लिए कई लोग कहते है कि मै अग्रेजी भाषा की टीका करता हू। किन्तु वस्तुत: मेरा अग्रेजी भाषा से कोई विरोध नही है। बल्कि शास्त्र में भी यह बात आई हुई है कि बच्चे की शिक्षा के लिए अठारह देश की दासियाँ रखी जाती थी। अर्थात् भिन्न २ देशों की भाषाए सीखने का कोई विरोध नही है। विरोध इस बात का है कि किसी देश

की भाषा सीखने के साथ साथ उस देश की बुरी बातें न सीखना चाहिए। दूसरे देशों की अच्छाइयाँ ग्रहण करने में किसे एतराज हो सकता है ? मेरा मतलब तो इतना ही है कि अंग्रेजी भाषा के साथ अंग्रेजों की वह सभ्यता और संस्कार अपने में प्रविष्ट न होने देने चाहिए जो हमारा धर्म कर्म भ्रष्ट करते हों। भारत देश सदाचार को जीवन का उच्चतम आदर्श मानता है। इस आदर्श की रक्षा करते हुए विद्यार्थी सब कुछ सीख सकते हैं।

दूसरी बात यह है कि मेरे खयाल से हमारी अपनी भाषा में और विदेशी भाषा में माता और दासी जितना अन्तर है। हमारी देशी भाषा माता के समान है और विदेशी भाषा दासी के समान। यदि कोई व्यक्ति माता का आदर करना छोड़कर दासी का आदर करने लगे तो यह ठीक न कहा जायगा। हिन्द सभ्यता के अनुसार माता पिता और गुरु देव तुल्य माने गये हैं। वेदों में कहा है '**मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव**'। जैन शास्त्रों में भी कहा है '**देव गुरुजण सकासा**' अर्थात् मा देव और गुरुजन के समान है। माता का स्थान दासी से सदा ऊँचा रहता है। आज स्थिति विपरीत है। हमारी राष्ट्र भाषा जो कि माता के समान है दासी की हालत में हो रही है और अंग्रेजी भाषा उसके स्थान में माता बन रही है, यह देखकर भारत हितैषियों को दुःख होता है।

कोई भाई यह दलील पेश करे कि अंग्रेजी भाषा बहुत विकसित है अतः उसके अध्ययन में अधिक रस लिया जाता है और आदर भी किया जाता है तो मेरा उत्तर है कि मेम गोरी है और माता काली है अत. माता की अपेक्षा मेम का अधिक आदर करना क्या वाजिब है ? यदि अंग्रेजी भाषा को मातृभाषा या राष्ट्र भाषा के स्थान पर माना जाता हो तो मेरा एक बार नहीं किन्तु हजार बार विरोध है। और यदि अंग्रेजी भाषा को मातृभाषा की दासी मानकर अध्ययन किया जाय तो मेरा कोई विरोध नहीं है। भाषा का युवक युवतियों पर प्रभाव पड़ता है अतः इतना इशारा किया गया है।

स्त्री और पुरुष में बहुत कुछ साम्य भी होता है और बहुत कुछ वैषम्य भी। दोनों के सहयोग से काम ठीक होता है। कुछ विशेषता है। पुरुष कठोर कार्य करते हैं और स्त्रियाँ कोमल। पुरुष बाहर काम करते हैं स्त्रियाँ घर में। जिस प्रकार वृक्ष में कोमल और कठोर दोनों प्रकार के भाग होते हैं और दोनों के होने से ही वृक्ष की शोभा है उसी प्रकार स्त्री और पुरुष के सहयोग से सुन्दर जीवन बनता है। जिसने योग्य स्त्री

काम हो वही उसे करना चाहिए। आज स्थिति बदल रही है। पुरुषों का काम स्त्रियों को सौंपा जा रहा है। इससे हानि है। सुना है कि हानि को महसूस करके हिटलर ने स्त्रियों को घर लौटने और घर का काम करने की आज्ञा दी है। स्त्रियों की उन्नति अपने योग्य कार्यों के करने में ही है। इससे वे अपनी और भावी पीढ़ी महान् उन्नति साध सकती है।

स्त्रियों और पुरुषों को बहत्तर और चौसठ कलाए सीखना बहुत जरूरी है। यदि सूर्य और चन्द्रमा में कला न होतो वे किस काम के ? इसी प्रकार जिस स्त्री पुरुष में कला न हो वह किस कामका। कला सीखे बिना गृहस्थ जीवन की उन्नति नही हो सकती।

सुदर्शन बहत्तर कलाए सीखकर घर आया। उसके सोते हुए सातों अग जागृत हो चुके थे। घर आने से सब लोग बड़े प्रसन्न हुए। सेठने कलाचार्य को इतना पुरस्कार दिया कि उसकी कई पीढ़ीयां खाती रहें। केवल पुरस्कार ही न दिया किन्तु उसका उपकार भी माना। सेठने कलाचार्य से कहा, मैं आपका बडा एहसानमन्द हू। आपने मेरे पुत्र को ऐसा योग्य बना दिया है कि यह अपना जीवन सुख पूर्वक बीता सकेगा। आपने कोरी कला ही नहीं सिखाई है किन्तु विनय गुण भी सिखाया है मैने कच्चे सोने के समान उसे आपके सुपुर्द किया था आपने भूषण बना कर मुझे सौंपा है। आपका यह उपकार कदापि नही भूलाया जा सकता।

आजकल शिक्षा पूरी कर लेने के बाद लडके अपने पिता को ढोचर समझने लगजाते हैं। थोडा किताबी ज्ञान हासिल करके वे अपने को समझदार होंशियार और सर्व गुण सम्पन्न मानने लग जाते हैं अपने मां बाप का यथोचित आदर नहीं करते। यह शिक्षा का दोष है। उन्हें शिक्षा ऐसी मिलती है कि वे मॉ बाप से अपने को श्रेष्ठ समझने लगते हैं वे अपनी बुनियाद को भूल रहें हैं। सुदर्शन के चरित्र से युवा और वृद्धों को नसीहत लेनी चाहिए।

जब से सुदर्शन घर आया है तब से अनेक लोग अपनी अपनी कन्याओं के साथ सुदर्शन का विवाह करने की मशा सेठ के सामने रख चुके हैं। किन्तु सेठजी सब को टालते रहे। वे किसी योग्यतम कन्या की फिराक में है। आजकल सगाई सगपन के मामले में धन को प्रथम स्थान दिया जाता है। यदि कोई व्यक्ति धनवान् है तो बस अन्य बातों की तरफ खयाल न किया जायगा। '**सर्वे गुणाः कञ्चनमाश्रयन्ते**' दुनिया के सब गुण सोने में मान लिए जाते हैं किन्तु इस विषय में शास्त्र क्या कहता है सो जरा ध्यान देकर सुनिये। ज्ञाता सूत्र में कहा है—

सरिसवयाणं सरिसत्तयाणं सरिसलावण्ण रूव जोवण गुणों ववेयाणं

अर्थात्—विवाह या सगाई में वर कन्या में नीचे लिखी बातों का खयाल करना चाहिए। समान उम्र हो समान वर्ण और आकृति हो, समान लावण्य, रूप, यौवन और गुण हो। यदि माता पिता शास्त्र कथित बातों का खयाल रखकर कन्या या वर का चुनाव कर लिया करें तो जोडी बडी जुडेगी अन्यथा जीवन क्लेश मय बनजाने की आशङ्का रहती है। ऊपर लिखित बातों का खयाल न करके वर कन्या को जोड देने से तलाक देने तक का प्रश्न उपस्थित होता है अथवा ऐसा जोड़ा सदा खटपट में अपना जीवन पूरा करेगा। उस घर में सुख का निवास न होगा।

इन सब बातों का खयाल करके ही सेठ सुदर्शन की सगाई की बात टालता रहा। अन्त में मनोरमा नामक कन्या की बात उसके सामने आई। यह कन्या सेठ की दृष्टि में सुदर्शन के योग्य जान पड़ी फिरभी सेठ ने विचार किया कि सुदर्शन की इस विषय में इच्छा है यह जान लेना चाहिए।

सगाई करने के पूर्व लडके लड़कियों की इच्छा जान लेने की प्रथा बहुत अच्छी है। आजकल इसका पालन बहुत कम होता है। आज तो यह कहावत मशहूर हो गई है कि—**'होवे रोकड़ा तो परणे डोकरा'**।

मेरी जन्म भूमि थांदला नामक ग्राम में एक पुरुष की दो या तीन स्त्रिया गुजर चुकी थीं। वह दूसरी शादी करना चाहता था। जिस कन्या को उसने पसन्द किया था वह उससे शादी करने के लिए राजी न थी। बहुतेरा समझाया गया किन्तु वह न मानी। आखीर एक स्त्री के द्वारा यह युक्ति रची गई कि सोने चादी के बहुत से जेवर साफ सुथरे कराकर के एक स्थान पर सजा दिए गये और किसी बहाने से उस कन्या को वहां बुलाकर वे जेवर उसे दिखाये गये। उसे प्रलोभन दिया गया कि यदि इस व्यक्ति से शादी कर लेगी तो इतने जेवर पहनने को मिलेंगे। जेवर देखकर भोली कन्या जाल में फस गई। उसकी शादी उस व्यक्ति के साथ हो गई। थोड़े अर्से बाद वह कन्या विधवा हो गई और उसका जीवन बड़े कष्ट में व्यतीत हुआ।

इस प्रकार केवल गहनों के साथ विवाह होने से जीवन बडा दुःखी हो जाता है। पहले जमाने की बातें देखिये। सीता, द्रौपदी आदि का स्वयंवर हुआ था। कन्या अपनी इच्छानुसार वर को पसन्द करती थी। मा बाप की इच्छा उस पर लादी न जाती थी।

मनुष्य शरीर



"अनन्त जिनेश्वर नित नमू ॥ प्रा० ॥......... ।"



प्रार्थना के द्वारा परमात्मा की पहिचान कराने के लिए अनेक प्रयत्न किये गये हैं किन्तु जिनके मन में भ्रान्ति है उन्हें परमात्मा के होने का विश्वास ही नहीं हो सकता। जिसकी भ्रान्ति समूल विनष्ट होगई है उसे परमात्मा का विश्वास होता है। परमात्मा को स्वीकार करने का विश्वास ऐसा है जिसका कोई वर्णन नहीं कर सकता। जिसे परमात्मा के प्रति पूर्ण विश्वास होगया है, जो अध्यात्मिकता का पूर्ण अनुभव कर चुका है वह इस विषय में जबान द्वारा विवेचन नही कर सकता। जो परमात्म स्वरूप का विवेचन या वर्णन करते हैं वे अपूर्ण हैं। कोई भाई मेरे से ही पूछ बैठें कि जब परमात्मा के स्वरूप का वर्णन जिह्वा

भगवान् नेमीनाथ तीनसौ वर्ष की उम्र तक कुँवारे रहे थे क्या उन्हें कन्या नहीं मिलती थी ? ऐसी बात न थी। किन्तु बिना स्वीकृति विवाह करना उन्हें इष्ट न था। आज कल लड़के लड़कियों से कौन पूछता है कि तुम्हारा अमुक के साथ विवाह करें या नहीं।

सुदर्शन के पिता ने सुदर्शन से पूछा कि पुत्र ! तुम्हारे योग्य कन्या की सगाई की बात मेरे सामने आई है अतः तुम्हारी क्या इच्छा है सो बताओ। तुम्हारी स्वीकृति होते सगाई कर ली जाय। सुदर्शन क्या उत्तर देता है, यह आगे बताया जायगा।

राजकोट
२१—७—३६ का
व्याख्यान



मनुष्य शरीर



" अनन्त जिनेश्वर नित नमू ॥ प्रा० ॥......... । "



प्रार्थना के द्वारा परमात्मा की पहिचान कराने के लिए अनेक प्रयत्न किये गये हैं किन्तु जिनके मन में भ्रान्ति है उन्हें परमात्मा के होने का विश्वास ही नहीं हो सकता। जिसकी भ्रान्ति समूल विनष्ट होगई है उसे परमात्मा का विश्वास होता है। परमात्मा को स्वीकार करने का विश्वास ऐसा है जिसका कोई वर्णन नहीं कर सकता। जिसे परमात्मा के प्रति पूर्ण विश्वास होगया है, जो अध्यात्मिकता का पूर्ण अनुभव कर चुका है वह इस विषय में जबान द्वारा विवेचन नहीं कर सकता। जो परमात्म स्वरूप का विवेचन या वर्णन करते हैं वे अपूर्ण हैं। कोई भाई मेरे से ही पूछ बैठें कि जब परमात्मा के स्वरूप का वर्णन जिह्वा

द्वारा शक्य नहीं है तब आप क्यों विवेचन कर रहे हैं। इसका उत्तर यह ही है कि मै भी अपूर्ण ही हू। और अपूर्ण हू इस लिए वर्णन करता हू और आप लोग भी अपूर्ण है अतः श्रवण करते हैं। इस प्रकार कह सुन कर अपूर्णता से पूर्णता में प्रवेश करना है। पूर्णता में पहुंचने का यह प्रयत्न है। पूर्णता कही बाहर से नही लानी है। पूर्णता हमारे भीतर छिपी हुई है, उसे प्रकट करने की आवश्यकता है। सूर्य स्वय प्रकाशी है उसी प्रकार आत्मा भी पूर्ण है। सूर्य पर जैसे बादल आ जाते है तब वह छिपा हुआ मालूम होता है उसी प्रकार आत्मा पर भी राग द्वेष रूप आवरण आजाता है तब वह अपूर्ण ज्ञात होता है। आवरण हटते ही आत्मा पूर्ण बन जाता है। आत्मा स्वय चिदानन्द स्वरूप है।

आत्मा के ऊपर जो आवरण लगे हुए हैं उन्हें हटाने के लिए घबडाने की जरूरत नहीं है। उपाय और पुरुषार्थ के द्वारा यह शक्य है। उपाय और पुरुषार्थ करने से आत्मा के आवरण दूर होकर उसकी वास्तविक शक्ति प्रकट हो सकती है। जिन अनन्त नाथ की स्तुति की जा रही है वे भी एक दिन कर्म रूप आवरण से आवृत थे किन्तु पुरुषार्थ करके उन्होंने उस पर्दे को चीर कर दूर फेंक दिया। हम भी वैसा कर सकते हैं।

क्या पूर्णता प्राप्त करने के प्रयत्न में शरीर पालन की क्रिया को भूला दिया जाय ? शरीर पालन जरूरी चीज है। साधु भी शरीर पालन के लिए गोचरी करते है। गृहस्थों के पीछे ससार लगा हुआ है अतः सांसारिक कर्त्तव्यों को छोडकर पूर्णता प्राप्ति के प्रयत्न में कैसे लग सकते है।

भाइयों ! इस प्रकार शरीर पालन का नाम लेकर अपने असली ध्येय को भुला देना ठीक नही है। शरीर का पालन न किया जाय ऐसा कोई नहीं करता। किन्तु जो वस्तु जैसी है उसे उसी रूप में देखने की चेष्टा करनी चाहिए। मुख्य को मुख्यता और गौण को गौणता देनी चाहिए।

शरीर में ज्ञानी भी रहते हैं और अज्ञानी भी। आत्मा परमात्मा को मानने और न मानने वाले सभी शरीर में निवास करते है। दोनों प्रकार के लोगों का खान पान भी समान ही है। ससार व्यवहार की बातें भी समान है। फिर ज्ञानी और अज्ञानी में बडा अन्तर है। वह अन्तर कौनसा है और किस विशेषता के कारण, यह अन्तर है यह समझने की बात है। शरीर और इन्द्रिया समान होने पर भी ज्ञानी और अज्ञानी में बडा अन्तर है। और वह अन्तर है समझ का। ज्ञानी जगत को दूसरी दृष्टि से देखता है और अज्ञानी दूसरी

दृष्टि से । ज्ञानी संसार में रहकर सब व्यवहारों का पालन करता हुआ भी संसार के पदार्थों में आसक्त नहीं रहता किन्तु अज्ञानी फँस जाता है । ज्ञानी हेय को हेय और उपादेय को उपादेय मानते हैं किन्तु अज्ञानी उपादेय को हेय और हेय को उपादेय समझता है । समझ का ही फर्क है । साधु भी शरीर पालन करते हैं मगर उसके द्वारा पूर्णता प्राप्त करने के लिए ही शरीर पालन का नाम लेकर जो लोग असली ध्येय से दूर हटते हैं वे पूर्ण नहीं बन सकते । पूर्णता उनसे दूर भगती है । समझ प्राप्त हो जाने पर संसार व्यवहार पूर्णता प्राप्त करने में बाधक नहीं हो सकता । ज्ञानी को त्रिलोक का राज्य देने का लोभ बताया जाय तब भी वह अपने ध्येयको नहीं छोड़ता । वह अपने आत्मिक सुख के सामने तीनों लोक के राज्यसुख को भी तुच्छ समझता है । मतलब यह है कि अनन्त या पूर्ण बनने के लिए दिल की भ्रांति मिटाना आवश्यक है ।

शास्त्र चर्चा—

राजा श्रेणिक मुनि से कह रहा है कि हे मुने ! आपको यह दुर्लभ मनुष्य शरीर मिलता है, आप इसका अपमान क्यों कर रहे हैं । आपके इन सुन्दर कानों में कुण्डल कैसे अच्छे शोभेंगे । गले में हार कितना सुन्दर मालूम देगा । आप दिव्य शरीर को संयम धारण करके खराब क्यों कर रहे हैं । आप अनाथ हैं तो मैं आपका नाथ बनता हूं । चलिये मेरे राज्य में और भोग भोगिये ।

मुनि का शरीर औदारिक शरीर है । उनको बिना मांगे और बिना परिश्रम के भोग की सामग्री और सम्पत्ति मिल रही है । आप लोगों की दृष्टि में क्या कोई ऐसा मूर्ख व्यक्ति होगा जो ऐसे सुन्दर चांस (अवसर) को हाथ से खोयेगा । जिन भोगों के लिए मनुष्य लालायित रहता है और रात दिन जिनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न शील रहता हैं वे भोग अनायास ही प्राप्त हो रहे हैं । फिर भी मुनि उन ओर ध्यान नहीं दे रहे है । इसके विपरीत मुनि राजा से कहते हैं कि हे राजन् ! मनुष्य जन्म की सार्थकता भोग भोगने में नहीं है मगर भोग त्याग करने में है । भागवत में कहा है—

नायं देहो देह भाजां नृलोके, कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये ।

हे मनुष्यों ! तुम्हारी यह देह भोग भोगने के लिए नहीं है । भोग तो गन्दगी खाकर जीवन बीताने वाले क्षुद्र प्राणी भी भोगते हैं । वे भी यह दावा करते हैं कि

भोग हमारे लिए हैं। उनके द्वारा भोगे जाने वाले भोगों को तुम अपना समझ कर कैसे भोगते हो।

कदाचित् बाघ मिलकर एक कॉन्फरन्स करें और इसमें यह प्रस्ताव पास करें, कि मनुष्य हमारे खाने के लिए ही बनाये गये हैं अतः मनुष्य भक्षण करना हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है तो क्या आप इस प्रस्ताव को मजूर या पसन्द कर सकते हैं? कदापि नहीं। वाघ केवल हिंसा कर सकते हैं मगर मनुष्य में यह विशेषता है कि वह हिंसा और दया दोनों कर सकता है। दया करने में ही मनुष्य की मनुष्यता है। मनुष्य जीवन भोगों के लिए नही है। भोग तो पशु भी भोगते हैं और आनन्द मानते है

आप जिस सोने को पहिनकर अभिमान करते हैं क्या उस सोने की बनी जंजीर को कुत्ता नहीं पहिन सकता? आप जिस मोटर या बग्घी में बैठते है क्या उसमें कुत्ता नहीं बैठता? बडे २ लार्ड और राजाओं के साथ उनके कुत्ते भी बैठते हैं। क्या इस से जमीन पर चलने वाला मनुष्य नीचे दर्जे का गिना जा सकता है। कभी नहीं। कुत्ता, कुत्ता ही रहेगा और मनुष्य, मनुष्य ही। कुत्ता तो क्या पर देवता भी मनुष्य की समता नही कर सकते। जितने भी तीर्थङ्कर या केवल ज्ञानी हुए हैं वे सब मनुष्य योनि में ही हुए हैं। मुसलमानों में भी जितने पयगम्बर हुए हैं वे इन्सान ही हुए हैं, फरिश्ते नहीं। मनुष्य जन्म का बडा महत्त्व है, वह भोग भोगने मे पूरा करने के लिए नहीं है। तो क्या करने के लिए मनुष्य जन्म है? इसका उत्तर भागवत ने इस प्रकार दिया है।

तपो दिव्यं पुत्र कालयेन सत्वं सिद्धोयत् यस्मात् ब्रह्मसौख्यमनन्तम् ॥

ज्ञानी जन कहते है, यह मनुष्य शरीर भोग भोगने के लिए नही है मगर तप करने के लिए है। केवल अनशन करलेना अर्थात् भूखे रहजाना ही तप नही है। अनशन तो तप का भग है। आजकल कुछ लोग अनशन तप की निन्दा किया करते है। वे कहते हैं कि अनशन कर कर के ही जैन लोग दुर्बल और बुझादिल हो गये हैं। मेरा कहना इस का विपरीत है। मैं कहता हू कि जैनियों में जो शक्ति और तेज विद्यमान है वह अनशन तप के प्रभाव से ही है। इस विषय में अभी अधिक नहीं कहता। अभी तो यह कहता हू कि भोजन और मैथुन तो पशु पक्षी भी करते है। वे तप नहीं सकते। अज्ञान पूर्वक कष्ट सहन करते हैं, यह दूसरी बात है। मगर स्वेच्छा से कष्ट सहन करना और तपस्या करना उनके बूते के बाहर की बात है। क्रियात्मक धर्म मनुष्य ही कर सकता है। देवता भी नहीं कर सकते।

मुनि भी राजा श्रेणिक से यही बात कह रहे है कि हे राजन ! यह दुर्लभ मनुष्य देह भोग भोगने के लिए नहीं है। जो लोग इस देह को भोग भोगनेका साधन मानते हैं वे अनाथ हैं। तू देह को ऐहिक सुख भोगने के लिए साधन समझता है अत. स्वय अनाथ है। जो खुद अनाथ हो वह दूसरो का क्या नाथ बनेगा।

अप्पणावि अणाहोऽसि, सेणिया ! मगहाहिवा ! ।
अप्पणा अणाहो संतो, कस्स नाहो भविस्ससि ? ॥ १२ ॥

हे मगधाधीप श्रेणिक ! तू स्वय अनाथ है। स्वय अनाथ होता हुआ तू किसका नाथ बनेगा ?

'यह शरीर भोग भोगने के लिए है' ऐसी भावना आते ही आत्मा गुलाम और अनाथ बन जाता है। भोग की सामग्री इकट्ठा करने के लिए उसे अनेक खटपटें करनी पड़ती है। किसी की खुशामद, किसी की गुलामी, किसी के द्वारा भली बुरी बातें सुनना आदि सब कुछ करना पड़ता है। मनुष्य समझता है कि उसके पास जो ऐश और अशरत के साजो सामान मौजूद है उसके कारण वह नाथ है किन्तु ज्ञानी कहते हैं कि बात इससे ठीक उल्टी है। जिस साजो सामान के कारण वह अपने को नाथ मानता है उसीके कारण दरअसल में वह अनाथ अथवा गुलाम बना हुआ है। उदाहरणार्थ समझिये कि एक आदमी सोने के कड़े पहिन कर अभिमान में चकचूर हो रहा है। वह अपने को कडों का स्वामी या नाथ मानता है। क्या यहआदमी सचमुच अपने कडो का स्वामी है ? ज्ञानी कहते हैं, नहीं। वह कडों का स्वामी नहीं किन्तु कडों का गुलाम है। रात को कडे पहिन कर जब वह सोता है तब उन कड़ों की फिक्र में उसे नींद नहीं आती है। कहीं कोई चोर आकर हाथ में से कडे निकाल कर न ले जाय, हाथ ही न काट डाले अथवा इन कडों के कारण कहीं मुझे ही न मार डाले। आदि सकल्प विकल्प में नींद हराम हो जाती है। ये कडे उसके लिए हाथों में हथकड़ी और मन में भय के कारण बन गये ! कहिये, वह कडों का नाथ है अथवा उन का गुलाम ?

एक महात्मा और एक सेठ साथ साथ जगल में से होकर दूसरे गाँव जा रहे थे। महात्मा के पास अपना शरीर था किन्तु सेठजी के पास शरीर के उपरान्त अगुली में एक हीरे की अगूठी पहिनी हुई थी। महात्मा अलमस्त होकर चल रहे थे। उनको किसी प्रकार

का भय नहीं था । भय की कल्पना भी न थी । किन्तु बहुमूल्य अंगूठी के कारण सेठजी का कलेजा धक् धक् कर रहा था । जरासा कहीं पत्ता हिलता कि सेठजी सशंकित हो जाते, कहीं चोर तो नहीं आ रहा है । अहा ! हीरा जटित अंगूठी के नाथ बने हुए सेठजी के दिल की क्या दशा हो रही है, वह या तो वे खुद ही जानते हैं या कोई ज्ञानी ही जानता है । यदि कोई चोर आही जाय तो मुनि को भागना पड़ेगा या सेठजी को । अंगूठी के चले जाने से सेठजी को ही हाय तोबा करना पड़ेगा । जो नाथ होता है उसके दिल की दशा ऐसी नहीं होती । वह तो अपने निजानन्द की मस्ती में मस्त होकर बिना किसी प्रकार के भय या शंका के बेखटके अपने रास्ते चला जायगा । उसे किस बात का डर हो सकता है ।

आप लोग स्त्री को परणे हो या स्त्री आपको परणी है । यदि स्त्री को आप परणे हो तो स्त्री के मर जाने पर आपको दुःखनो नहीं होगा न ? यदि आपको स्त्री के मर जाने पर दुःखानुभव हुआ तो आप स्त्री के मालिक न रहे किन्तु उसके गुलाम बन गये । स्त्रियों के लिए भी यही बात है । जब स्त्री किसी को अपना पति मानती है तभी उसके मर जाने पर उसे रंडापा भोगना पड़ता है । यदि स्त्री किसी को पति न मानकर परमात्मा के साथ ही अपना सम्बन्ध जोडती तो उसे विधवा होने का दुःख कभी न होता । विधवा होने पर भी अनेक स्त्रियां परमात्मा से सम्बन्ध न जोडकर सोने के दागिने से नेह करती है । दागिनों के चले जाने पर फिर कष्ट उठाना पडता है । मतलब कि संसार के प्राणी एक प्रकार के भ्रम जाल में फँसे हुए हैं । अशरण को शरण और शरण को अशरण मान रहे हैं । राजा श्रेणिक भी अपनी ऋद्धि सिद्धि को शरण रूप मान रहाथा और अपने मन्तव्य के अनुसार मुनि को आमंत्रित कर रहा है कि आपभी मेरे साथ चालिये और संसार के सुखोपभोग करके जीवन को सफल बनाईये ।

मुनि ने साफ और सीधा उत्तर दे डाला कि हे राजन् ! तू स्वयं अनाथ है वैसी हालत में मेरा नाथ कैसे बन सकता है । मुनि के उत्तर पर हम लोग विचार करें कि क्या राजा के पास कुछ कमी थी जिससे उसको अनाथ कहा गया । उसको किसी बात की कमी न थी । वह विशाल मगध देश का नरपती था । फिर भी मुनि ने उसे अनाथ बताया यह आश्चर्य की बात है । मुनि झूठ भी नहीं बोलते यह हम विश्वास रखते हैं । वस्तुतः बात यह है कि हमारी नाथ और अनाथ की व्याख्या दूसरी है और मुनि के मन की व्याख्या जुदी ही है । जिस वस्तु को अपना कर मनुष्य उससे चिपक जाता हो, उसके विनष्ट होने पर खेद करता हो और मिल जाने पर खुशी मनाता हो, वह वस्तु उसे अपना गुलाम बना लेती है ।

ऐसी वस्तु का वह मनुष्य मालिक नहीं कहा जा सकता। व्यवहार में वह उसका मालिक या नाथ कहा जायगा किन्तु वस्तु स्थिति यह है कि वह दिल से उस वस्तु का गुलाम बना हुआ है। किसी वस्तु का कोई सच्चा मालिक तो तब गिना जायगा जब वह जिस क्षण चाहे उस क्षण उसका त्याग कर सके। त्याग करने में दुःख न हो किन्तु खुशी हो।

बन्धुओं ! जब श्रेणिक जैसा राजा भी अनाथ था तो आप किस गिनती में हैं। आप अपना खयाल कीजिये कि हम भोगों के गुलाम हैं या मालिक? संसार के पदार्थ किसी को कैसे नाथ बना सकते हैं। जो जिस वस्तु का मालिक नहीं होता वह यदि उस वस्तु को किसी दूसरे को दे डालता है तो वह चोरी गिनी जाती है। जो स्वयं नाथ नहीं है वह दूसरों को स्वामित्व प्रदान कैसे कर सकता है। क्या यह अन्याय नहीं है कि एक अनाथ दूसरे का नाथ बनने की कोशिश करें।

मीरा को उसकी एक सखी ने कहा कि तेरा सद्भाग्य है जो राणा जैसे पति मिले हैं। रहने को सुन्दर महल और सुख भोगने के लिए विशाल वैभव मिला है। मीरा तू उदास क्यों रहती है। क्या राणा और यह वैभव तुझे अच्छा नहीं लगता? उठ ! मैं तेरा और राणा का पारस्परिक मेल करादूं। राणा मेरी बात मानते हैं। सखी का कथन सुनकर मीरा हँसने लगी। सखी कहने लगी कि स्त्रियों का स्वभाव ही ऐसा है कि प्रणय सम्बन्धी अपना विचार वे स्वयं प्रकट नहीं करती। हँसी आदि चेष्टाओं से अपनी भावना बता देती है। मीरा ! तेरी हँसी से मुझे मालूम होता है कि तू मेरी बात को स्वीकार करती है। क्यों ठीक है न? मीरा ने यह सोचकर कि कहीं यह सखी मेरे अर्थ का अनर्थ कर डालेगी स्पष्ट शब्दों में उत्तर दिया कि—

संसारी नो सुख काचो परणी रंडावुं पाछो।
तेने घेर केम जइयेरे मोहन प्यारा ॥ मुखडा नी प्रीत लागीरे ॥

हे सखी ! राणा के लिए तू जैसा कहती है वे उससे भी बढ़कर हों मुझे इस में कुछ नहीं कहना है। मैं तुझ से यह बात पूछती हूं कि मैं अपने प्यारे माता पिता को छोड़ कर उन की दी हुई सम्पत्ति लेकर राणा के यहां जाऊँ, उनकी दासी बन कर रहूं किन्तु राणा मुझे रांड तो न बना देंगे? राणा से पहले पूछले कि वे मुझे अखण्ड सौभाग्य प्रदान करेंगे न? यदि राणा यह उत्तर दें कि यह बात मेरे हाथ की नहीं है तो मैं ऐसे किसी

आदमी को अपना पति नही बनाती । ऐसा पति क्यों न बनाऊ जो सदा अमर रहे । 'वर वरिये एक साँवरोजी, चूड़लो अमर हृे जाय' ।

मीरा के समान ही फक्कड़ योगी आनन्द घन ने भी कहा है:—

ऋषभ जिनन्द प्रीतम माहरा और न चाहूं कन्त ।
रीझयो साहिब संग न परिहरे भांगे सादि अनन्त ॥

केवल स्त्री के साथ ही विवाह नही होता किन्तु भगवान् के साथ भी होता है । बूढ़े जवान बालक धनी गरीब सब भगवान् से अपना सम्बन्ध जोड़ सकते हैं । भगवान् से सम्बन्ध करने में जाति पांति का भी खयाल करने की जरूरत नही होती । यह विवाह अलौकिक है । उस अलौकिक प्रीतम से प्रेम तभी किया जा सकता है जब लौकिक प्रीति से प्रेम छूट जाय । परमात्मा के साथ प्रेम जोडने से अखण्ड सौभाग्य प्राप्त हो जाता है । मैं तो लग्न जुडवा देने वाला पुरोहित हू अतः अधिक कुछ न कह कर जिनकी इच्छा हो उनका परमात्मा के साथ सम्बन्ध करादू । हमने तो खुद परमात्मा से लग्न कर लिया है । मैं अपने साधुओं से कहता हू कि हम लोग परमात्मा से मेल करने के लिए घरबार छोड कर निकले हैं अतः कहीं ऐसा न हो कि श्रावकों या क्षेत्र विशेष के मोह में फँस जायँ और अपने मूल उद्देश्य को भुला दें ।

आप लोग ससार की जिन वस्तुओं से सगाई करना चाहते हो पहले उन से पूछ तो लो कि हमें दगादेकर बीच में सम्बन्ध विच्छेद तो न कर लोगी ? सब से पहले अपने शरीर ही से पूछिये कि जब तक मेरी इच्छा मरने की न हो तब तक तू मुझे छोड तो न देगा ? हाथ कान नाक आंखे आदि सब अगों से पूछ देखिये कि मेरी मरजी के बिना तुम बीचही में दगा तो न करोगे ? यदि ये सब बीच ही में दगा दे सकते हैं तो इनके साथ आप कैसे बध जाते हो क्यों इनसे प्रेम करते हो । भक्त लोग इस बात को समझते है अतः ससारकी किसी भी वस्तु के साथ वे अन्तरग से प्रेम नहीं जोडते । अन्तरग से प्रेम एक मात्र परमात्मा से ही जोडते है, जो कभी जुदा नही होता ।

आप कहेंगे कि तब हम क्या करें ? मेरा उत्तर है कि आप इस शरीर को परमात्मा की सेवा में लगा दीजिये । मैं यह नही कहता कि आप शरीर को नष्ट कर डालिये या आत्म हत्या कर डालिये किन्तु प्रभु की प्राप्ति के लिए इसका उपयोग कीजिये । भोगों में इसका उपयोग मत करिये । परमात्मा से प्रेम ऐसा जोड़िये कि शरीर या प्रेम दोनों में से किसी एक

को छोड़ने का प्रसग आये तो शरीर छोडना पसन्द करियेगा मगर प्रभु प्रेम को छोडने की तनिक भी इच्छा मत करियेगा। शरीर अनन्तबार ग्रहण किये और छोडे हैं परमात्मा का सच्चा प्रेम प्राप्त करने का अवसर विरला ही मिलता है अत: इस शरीर को अनन्त जिनेश्वर के समर्पण कर दो। भगवान् से लग्न सम्बन्ध जोड लो। भगवान् से सम्बन्ध जोडने की बात कथा द्वारा बताता हूँ।

सुदर्शन चरित्र—

रूप कला यौवन वय सरीखी सत्य शील धर्मवान् ।
सुदर्शन और मनोरमा की जोड़ी जुड़ी महान रे ॥ धन०॥ १७ ॥

सुदर्शन बडा हो चुका है। वह सब विद्याओं में प्रवीन होगया है। अब उसके विवाह की बातें चल रही हैं। पहले नियमसा था कि जब लडका यौवन प्राप्त होता तभी उसका विवाह किया जाता था। '**काल अकाल चलाई**' अर्थात् काल और अकाल में चलने की हिम्मत जिसमें हो वह विवाह योग्य समझा जाता था। दिन में बालक जहा कहो वहा जा सकता है मगर अकाल अर्थात् आधी रात्रि में स्मशान में जाने के लिए कहा जाय तो वह न जायगा। जब बालक की उम्र इतनी हो जाय कि वह आधीरात में भी स्मशान में अकेला जासके तब वह विवाह योग्य समझा जाता है। जब बालक निर्भय युवक हो जाता है। तब विवाह लायक होता है। आजकल तो जो '**हाऊ**' से भी डरते हैं ऐसे डर क बच्चों की भी शादी कर दी जाती है। छोटे उम्र के बच्चों की शादी करना गोया उनके शरीर रूपी भवन की नीव में छेद करना। अज्ञान माता पिता कभी कभी अपनी अज्ञानता से बच्चों के लिए दुश्मन का काम कर डालते है।

एक दिन जिनदास सेठ ने अपने पुत्र सुदर्शन को अपने पास बुलाया और प्रेम से पूछने लगे कि अब तुम्हारी अवस्था विवाह योग्य हो गई है। हमारी इच्छा तुम्हारा सम्बन्ध कर देने की है। पुत्र! जब तुम इस घर में नहीं जन्मे थे तब यह घर सून सान था। मेरे लिए सारा ससार ही तब शून्य जैसा था। तुम्हारे जन्म लेने से हमारा वह सुनसानपन तो मिट गया है मगर अब हम तुम तुम्हारी शादी करके घर में बहूलाना चाहते है। पौत्र के दर्शन करना चाहते हैं। हमारे वंश की वेल वढाना चाहते हैं। पुत्र! इस में तुम्हारी भी शोभा है। तुम हमारी यह इच्छा पूरी करो।

पिता की बात सुनकर सुदर्शन स्वाभाविक रूप से शरमा गया न मालूम विवाह की बात में कौनसा जादू भरा है कि कितना भी उद्दण्ड से उद्दण्ड व्यक्ति होगा तो भी विवाह के नाम से एक बार झेंप जायगा । सुदर्शन तो सुशील और कुलीन था । उसने गरदन नीची कर ली और कहने लगा पिताजी ! यह घर मेरे से पूर्ण नही है, मेरे विवाह कर लेने पर पूर्ण बनेगा, ऐसा आपका विचार है, किन्तु क्या मेरे ब्रह्मचारी रहने से घर अपूर्ण और अशोभनीय गिना जायगा ? पूज्य पिताजी ! मेरी समझ के अनुसार तो ब्रह्मचारी का घर विशेष शोभास्पद होगा । जो ब्रह्मचर्य का पालन करके जगत् का निस्तार करते हैं वे तो महापुरुष गिने जाते हैं । जिनदास ने कहा, प्यारे पुत्र ! यह बात श्रावक होने के कारण मै भी मजूर करता हू कि ब्रह्मचर्य पालना बहुत उत्तम बात है, उसकी बराबरी कौन कर सकता है । मगर कभी कभी ऐसा होता है कि ब्रह्मचर्य का पालन भी नही होता और विवाह भी नहीं किया जाता । यह स्थिति अच्छी नहीं है । इससे तो यह बेहतर तरीका है कि एक स्त्री के साथ अपना सम्बन्ध जोड लिया जाय और गृहस्थी के गाडे को सुन्दर ढग से चलाया जाय । वे महापुरुष धन्य है जो आजीवन कठोर शील व्रत का पालन करके प्रभुप्राप्ति में अपने आपको खपा देते हैं । हमारे कुल में नीति विरूद्ध किसी काम का दाग न लगे अतः पचों की साक्षी से हम तुम्हारा विवाह करना चाहते हैं । तुम्हारी स्वीकृति के बिना हम नहीं करना चाहते । अतः स्वीकृति देओ । विवाह करना गृहस्थ का धर्म है । विवाह करके स्वदार संतोष व्रत का पालन किया जाता है । स्वस्त्री के सिवाय इतर प्रकार के सब मैथुन का त्याग किया जाता है । विवाह करने वाले को कोई पापी नहीं कहता । विवाह करना मध्यम मार्ग है । पापी तो वह गिना जाता है जो लोगों की दृष्टि में में अपने को अविवाहित दिखाकर अन्य तरीकों से अपनी वासनाओं की पूर्ति करता है ।

सुदर्शन ने विचार करके उत्तर दिया कि, पिताजी आप मेरा विवाह कर दीजिये । किन्तु मेरे लिए ऐसी कन्या ढूढिये जो अत्यन्त सुन्दरी न हो किन्तु कुरूप भी न हो, कोमल भी न हो कठोर भी न हो, स्वच्छन्द भी न हो डरपोंक भी न हो । मेरे काम में विघ्न डालने वाली न हो किन्तु जिसको मैं अच्छा मानता होऊ उसे वह भी अच्छा माने । मेरी रूचि के अनुसार उसकी भी रूचि हो । मै उसे देख कर सन्तोष पाऊँ और वह मुझे देख कर संतोष पाये । मै उसके सिवा दुनिया की सब स्त्रियों को मा बहिन मानू और वह भी मेरे सिवा सब पुरुषों को पिता भाई माने । मेरे काम वह कर सके और उसके मै । यदि ऐसी कोई कन्या

मिल जाय तो मैं विवाह कर लूगा अन्यथा अविवाहित रहना पसन्द करता हू किन्तु पिताजी आपको मैं इस बात की खात्री दिलाता हू कि अविवाहित रह कर मैं अपने कुल में किसी प्रकार का दाग न लगाऊँगा ।

सुदर्शन का उत्तर सुनकर सेठ बड़ा प्रसन्न हुआ । कहने लगा, तेरे विचारों मे मै ही प्रसन्न नहीं हू किन्तु सारा शहर प्रसन्न है । पुत्र ! तुम्हारे लिए वैसी कन्या की खोज में हू जैसी चाहते हो । सुदर्शन रात दिन इसी उधेड बुन में हैं कि ऐसी योग्य कन्या का कहीं से पता लग जाय । अनेक सम्बन्धियों को इसकी सूचना कर रखी है ।

उधर मनोरमा नामकी गुण सम्पन्न कन्या के माता पिता वर की तलाश में रात दिन एक कर रहे थे । मनोरमा सुर्दशन के समान विचार वाली थी । उसके माता पिताने भी उसे विवाह योग्य समझकर पूछा कि पुत्री ! तेरी विवाह किसके साथ किया जाय ।

बन्धुओ ! आजकल मा बाप अपने लडकों और लडकियों की इच्छा जाने विना सौदा तय कर लिया करते है जिससे उनका गृहस्थ जीवन बड़ा दु खी हो जता है । स्वभाव और रुचियें फर्क होने के कारण वह जोड़ा सदा असतुष्ट रहता है और येन केन प्रकारेण जीवन को पूरा कर देते हैं । पुत्र के समान कन्या से भी वर के सम्बन्ध में राय पूछना उचित है । और यदि किसी कन्या की इच्छा विवाह करने की ही नहीं है तो उसे आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत पालने देना चाहिए । यह बात नहीं है कि कन्याए आजीवन ब्रह्मचर्य न पाल सकें । भूत कालीन और वर्तमान कालीन ऐसे कई दृष्टान्त मौजुद है कि कुमारिकाओंने जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन किया था और कर रही है । कन्या की इच्छा के विना उसका विवाह नहीं किया जाता था ।

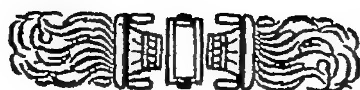
भगवान् ऋषभदेव की ब्राह्मी और सुन्दरी नामक दोनों कन्याए जब विवाह योग्य हुई तब उन्होंने उनके विवाह करने का विचार ते किया । भगवान के विचार को दोनों कन्याए ताड़ गई और उनके पास उपस्थित होकर कहने लगी कि पूज्य पिताजी आप हमारे विवाह की चिंता मत करिये हम आप की पुत्रिया हैं और सदा पुत्रिया ही रहना चाहती हैं । पुत्रिया मिट कर किसी की स्त्रिया कहलाना हमें पसन्द नहीं है । इस प्रकार दोनों कन्याएं आजीवन ब्रह्मचारिणी ही रही । कन्याए ब्रह्मचारिणी रह कर बडी उत्तम सेवाए कर सकती हैं । अहमद नगर में अमरीकन मिशन की कुमारी कन्याए ऐसी सेवाए करती हैं कि सब लोग उनकी

भूरि प्रशसा करते हैं। ऐसी कन्याए हमारे समाज में भी होतो क्या हर्ज है ? मैं जबरदस्ती ब्रह्मचर्य पलवाने की बात नहीं करता मगर कोई कन्या स्वेच्छा से ऐसा करना चाहे तो उस के लिए यह मार्ग खुला रहना चाहिए।

आखिर सुदर्शन और मनोरमा का सम्बन्ध हो गया। दोनों ने आपसी बातचीत से एक दूसरे को समझ लिया। आजकल विवाह में बड़ी धूमधाम होती है और वृथा खर्चा भी बहुत किया जाता है किन्तु पुराने जमाने में एक ही दिन में सगाई और विवाह हो जाता था। दक्षिण देश में अभी भी यह प्रथा चालू है। यदि कन्या के पिता की सामर्थ्य है तो वह बारातियों को रोकता है और उन्हें जीमाता है अन्यथा वे चुपचाप अपने घर चले जाते है।

सुदर्शन और मनोरमा का विवाह विधि पूर्वक सम्पन्न होगया। पुत्र का विवाह हो जाने पर माता पिता का क्या कर्त्तव्य है यह बात जिनदास और अर्हदासी के चरित्र से ज्ञात होगा।

राजकोट
३०—७—३६ का
व्याख्यान



परमात्म प्रीति



धर्म जिनेश्वर मुझ हिवड़े बसो, प्यारा प्राण समान ॥ प्रा० ॥

परमात्मा से अखड प्रेम रखना प्रार्थना का ध्येय है । कहने मात्र से ही यदि परमात्मा से अखण्ड प्रेम हो जाता होता तो अधिक खटपट की जरूरत न रहती । किन्तु ऐसा नहीं होता । परमात्मा से अखण्ड प्रेम करने के लिए सच्ची लगन की जरूरत है । लगन के बिना प्रेम नहीं हो सकता । संसार के पदार्थों के साथ प्रीति करना अन्य बात है और परमात्मा से प्रीति करना अन्य बात है । लौकिक और पारलौकिक प्रीति में बड़ा अन्तर है । लौकिक प्रीति ऊपरी भी हो सकती है । भीतर में कुछ और हो और बाहर कुछ और बात दिखाई जा सकती है और दुनिया को ठगा जा सकता है । दुनिया के लोग प्रीति का ऊपरी रंग ढंग देख कर उसे प्रीति भी मान लेते हैं । मगर परमात्मा के साथ की जाने वाली प्रीति में ढोंग या दिखावा नहीं चल सकता । परमात्मा के साथ कैसी प्रीति होनी चाहिए और वह किस प्रकार की प्रीति से प्रसन्न होता है, यह बात इस प्रार्थना में बताई गई है ।

प्रार्थना विषयक विवेचन में चाहे किसी को पुनरुक्ति दोष मालूम देता हो मगर यह मेरा प्रिय विषय होने से दोष की परवाह किये बिना मै इस पर कहता रहता हूं।

प्रीति सगाई जग मां सौ करे, प्रीति सगाई न कोय।
प्रीति सगाई निरुपाधिक करी, सोपाधिक धन खोय॥

योगी आनन्दघनजी कहते हैं कि प्रीति करने का रिवाज संसार में बहुत है। सब कोई प्रीति करते हैं और करने के लिए लालायित भी रहते हैं। मगर इस बात का निर्णय करना कठिन है कि यह प्रीति सोपाधिक है अथवा निरूपाधिक। प्रीति सकाम है या निष्काम। यद्यपि यह निर्णय कठिन है फिर भी सामान्य तौर से कहा जा सकता है कि संसार के पदार्थों के साथ किया जाने वाला प्रेम सोपाधिक होगा और परमात्मा के साथ किया गया निरूपाधिक।

संसार की प्रीति सोपाधिक कैसे है, यह जानने के लिये सब से पहले शरीर पर नजर डालिये। शरीर से मनुष्य प्रेम करता है किन्तु क्या मनुष्यों ने अनेक शरीर अग्नि की भेंट नही किये है? जिस शरीर को अपना मानते थे उसे जला देने में अपनापन कहा रहा? वास्तव में जो चीज कभी न कभी जुदा हो सकती है उससे किया हुआ प्रेम वास्तविक नही हो सकता। मनुष्य ने अज्ञानवश जड़ शरीर को अपना मान रखा है किन्तु एक दिन ऐसा आता है कि उसे अपना प्राणप्रिय शरीर को छोड देना पडता है। शरीर की प्रीति सोपाधिक प्रीति हुई। आत्मा के निज गुणों के साथ की प्रीति ही सच्ची और निरूपाधिक प्रीति है क्या आप लोगों कभी इस विषय पर विचार किया है।

लोग अपने कधे पर अर्थी को उठाकर सैकड़ों मुर्दे अपने हाथों से जला आते है और यह क्षणिक कल्पना भी करते हैं कि एक न एक दिन इस शरीर को छोड देना पड़ेगा फिरभी यह सोपाधिक प्रीति नहीं छुटती। किसी मनुष्य के हाथ में सोने की हथकडी डाली जाय तो क्या उसे दु.ख न होगा? सोने की होने पर भी, है तो हथकडी ही और हाथों में होने से बडी अडचन रहती होगी फिर भी सोने के मोह में फँसा हुआ मनुष्य उसे हथकडी न मानकर गौरव अनुभव करता है, यह आश्चर्य है। यदि मनुष्य मे सच्ची समझ आ जाय तो वह ऐसी वस्तुओं से कभी प्रीति न करे जो बीच ही में दगा देकर अलग हो जाय। प्रीति वही सच्ची है जो सदा कायम रहे। सच्ची और निरुपाधिक प्रीति करने के लिए उपाधि और उपाधि के कारणों को त्यागना पडेगा। जिस प्रीति में किसी प्रकार की लाग लपेट हो,

जो प्रीति पराश्रित हो, जिसमें किसी वांछा की पूर्ति की ख्वाहिश हो तथा जो कायमी न हो वह सोपाधिक प्रीति है । किन्तु जो प्रीति स्वाश्रित हो, आत्मिक गुणों के साथ हो अथवा परमात्मा के साथ हो और कभी साथ छोडने वाली न हो वह निरुपाधिक प्रीति है । परमात्मा से निरुपाधिक प्रीति करने से आत्मा की अनादि कालीन भूख मिट सकती है ।

शास्त्र चर्चा—

निरुपाधिक प्रीति कैसे की जाती है यह बात शास्त्र विवेचन द्वारा बताई जाती है । राजा श्रेणिक और अनाथी मुनि दोनों वृक्ष के नीचे बैठे हैं । दोनों महाराजा हैं, मगर भिन्न भिन्न प्रकार के । राजा सौपाधिक प्रीति को सच्ची प्रीति मानता है और मुनि निरुपाधिक प्रीति को । जो इष्ट है प्रिय है प्रत्यक्ष आनन्द दायक है उससे प्रेम करना प्रीति है यह बात मानकर ही राजा मुनि से कह रहा है कि आप मेरे साथ चलिए और ससार का मजा लूटिये । मैं आपका नाथ होता हू । किन्तु इससे विपरीत मान्यता वाले अनाथी मुनि उत्तर देते है कि राजन् तू भूल में है । जिन पदार्थों के कारण मनुष्य गुलाम बना हुआ रहता है उनके होने से वह नाथ कैसे हो सकता है । तू स्वय अनाथ है, मेरा नाथ कैसे बनेगा ।

मुनि का उत्तर सुनकर राजा बहुत आश्चर्यान्वित हुआ । वह सोचने लगा कि मैं इनका नाथ बनने गया तो उल्टा मुझे ही अनाथ बना दिया । आश्चर्य में आकर राजा क्या कहता है यह शास्त्रीय गाथाओं द्वारा सुनिये ।

एवं वुत्तो नरिन्दो सो सुसंभन्तो सुविम्हिओ ।
वयणं अस्सुय पुव्वं साहुणा विम्हयनीयो ॥१३॥
अस्सा हत्थी मणुस्सा मे पुरं अन्तेउरं च मे ।
भुंजामि माणुसे भोए आणा इस्सरियं च मे ॥ १४ ॥
एरिसे सम्पयग्गम्मि, सव्वकाम समप्पिए ।
कहं अणाहो भवइ, माहु भन्ते ! मुसं वए ॥ १५ ॥

मुनि के द्वारा यह कथन सुनकर कि 'राजन् तू स्वय अनाथ है मेरा क्या नाथ बनेगा' राजा को रोष आगया । वह क्षत्रिय था । क्षत्रिय अपमान नहीं सहन कर सकता । आज कई लोग मेरे सामने कहते रहते हैं 'आप मर्जी आये सो कहिये, नहीं

लगता है'। आपको बुरा नहीं लगता है यह अच्छी बात नहीं है। इसका अर्थ हुआ हमारे कथन का आप पर कुछ भी असर नहीं होता। यह बनियापन है। कहावत है कि— **'सिंह को बोल लगता है'** अर्थात् सिंह के सामने गर्जना की जाय तो वह सामने होता है।

बड़े घासीरामजी महाराज जो कि मेरे धर्मोपदेशक थे, मेवाड़ के एक ग्राम के रहने वाले थे। मेवाड़ में झाड़ियाँ बहुत हैं। उन्होंने बताया कि—'एक बार मैं करौंदे खाने के लिए जगल में गया था। वहाँ एक वाघ मेरे सामने दौड़ आया। मुझे तब भय लगा था किन्तु यह सुन रखा था कि—'वाघ की आंखों से आंखे मिलाये रहने से वह आक्रमण नहीं करता' मैं भी उस वाघ की आंखों से अपनी आखे मिलाकर खड़ा हो गया। सिंह मेरी ओर ताकता रहा और मैं सिंह की ओर। एक पलक भी न मारी। अन्त में वाघ हार कर धीरे २ लौटने लगा। मैंने यह भी सुन रखा था कि सिंह को बोल लगता है और वह ललकारने पर सामना करता है। इस बात की जांच करने के लिए मैंने ललकार लगाई कि तुरत सिंह वापस मेरा सामना करने के लिए आगया। मैं सोचने लगा कि अब की बार यह मुझे जिन्दा न छोड़ेगा किन्तु मैंने उसी प्रकार उसके समक्ष एक टकी लगा कर देखना जारी रखा जिस प्रकार प्रथम अवसर पर रखा था। अब यदि यह चला जायतो आयन्दा कभी ललकार न किया करूंगा। थोड़ी देर तक मुझ से दृष्टि मिला कर धीरे धीरे सिंह अपने रास्ते खिसक गया।

मतलब यह है कि सिंह को बोल लगाता है। आप लोगों को भी बोल लगना चाहिए मगर आप लोगों ने बनिया वृत्ति धारण कर रखी है अतः वचन नहीं लगता। राजा श्रेणिक क्षत्रिय था। वह यह बात सहन न कर सका कि 'वह अनाथ है'। 'किसी गरीब आदमी को अनाथ कहा जाता तो बात मानी जा सकती थी किन्तु मुझ जैसे ऋद्धि सम्पन्न व्यक्ति को अनाथ कह डालना कहा तक उचित है'। इस प्रकार सोचता हुआ राजा रजोगुण युक्त होगया। 'यदि अनजान में ये मुनि मुझे अनाथ कह देते तो भी मुझे दुःख न होता किन्तु जानते हुए इन्होंने मुझे अनाथ कहा है, यह कैसे सहन करू'।

शास्त्र राजा के मनोभावों का चित्र खींचता है। शास्त्र प्रतिपादित गाथाओं में जो रहस्य भरा है उसका उद्‌घाटन करने में मैं असमर्थ हू फिर भी मुझे जो बात मालूम होती है वह आपके समक्ष रखता हू। गाथाओं पर ध्यान देने से यह प्रकट होता है कि राजा शूर था मगर क्रूर न था। सिंह शूर भी होता है और क्रूर भी। सिंह साधु असाधु का खयाल

किये बिना जो भी सामने पड जाता है उस पर हमला कर देता है। उसमें विवेक की कमी होती है। श्रेणिक राजा शूर तो था ही किन्तु विवेकी भी था। यही बात बताने के लिए शास्त्र में कहा है कि राजा सम्भ्रान्त हुआ फिर भी कोई अनुचित लफ्ज न बोला। सभ्यता पूर्वक अपनी बातको मुनि के समक्ष रखी है। यह अर्थ मैं अपनी बुद्ध्यानुसार कर रहा हू। शास्त्र अनन्त अर्थ वाले हैं अत: कोई महापुरुष दूसरा अर्थ करें तो कर सकते हैं।

राजा श्रेणिक सुसम्भ्रान्त और बहुत विस्मित हुआ। यह विचारने लगा कि 'इस जीवन में मुझे अभी तक किसी ने अनाथ नहीं कहा था। जब मैं घर छोड कर चला गया था और विपत्ति में पड गया था तब भी मैंने अनाथता का अनुभव नहीं किया था बल्कि अपने पुरुषार्थ से सब विघ्न बाधाओं को पार करके आगे बढ़ता रहा। मुनि के वचन अश्रुत पूर्व हैं। या तो ये मुनि मुझे पूरी तरह नहीं जानते या जैसा कि इनकी आकृति से प्रकट होता है ये महान् ऋद्धि सिद्धि शाली रहे हों, और इनके सामने मैं अनाथ जँचता होऊँ'।

मनुष्य जब अपने से छोटी वस्तु को किसी के पास देखता है तब वह उसे तुच्छ मानता है। जिसके पास हीरे के दागिने हों उसे सोने के जेवर तुच्छ मालूम होते हैं। जिस के पास सोने के दागिने दिखाई देते है, वह चांदी वाले को और चांदी वाला पीतल वाले को अकिञ्चन तुच्छ मानता है। राजा भी इसी तरह विचार करने लगा कि 'कहीं ये मुनि मुझसे अधिक सम्पत्ति के स्वामी रहे हों और इस कारण मुझे अनाथ कहते हो। इन की शारीरिक ऋद्धि ने तो मुझे आश्चर्य में डालही रखा है। अत इनके समक्ष अपनी ऋद्धि का वर्णन कर के इनके भ्रम को मिटा देना चाहिए।

आप लोग समझते होंगे कि हम तत्त्वके जिज्ञासु हैं किन्तु मैं कहता हू अभी आप में तत्व समझने की योग्यता ही नहीं है। जो डरपोक है—हा मे हा मिलाता है, खरे खोटे का निर्णय नहीं कर सकता वह तत्व नहीं समझ सकता। किसी ने किसी को नीच कह दिया वह यदि चुपचाप उसको सहन करले तो इसमें कायरता है। किन्तु नीच कहने वाले से यह पूछना कि भाई ! आपने मुझे नीच कैसे कहा, मेरे में नीचता की कौनसी बात दिखाई दी है? यदि वह नीचता का कोई काम बतादे तो उसे दूर करने की कोशिश करना और नीच कहने वाले का उपकार मानना और यदि वह नीचताका कोई काम इसके द्वारा किया गया न बता सके तो आयन्दा ऐसे शब्द से न पुकारने के लिए हिदायत कर देना, वीरता है। ऐसे साहस वाला व्यक्ति तत्वका जिज्ञासु हो सकता है। कमजोर दिल के आदमी तत्वजिज्ञासु नहीं बन सकते।

राजा श्रेणिक साहसी व्यक्ति था अत मुनि से कहने लगा कि 'मुनिराज ! मैं मगधेश हूं। मैं मगधेश का नाम मात्र का राजा नही हूं किन्तु राजा होने के लिए जिन रत्नों की जरूरत होती है वे अश्व रत्न आदि मेरे यहां है। मेरे यहा हाथी झूम रहे हैं। जितना जनसमुदाय मेरी सेवा करने वाला है उतना शायद ही किसी के हो । मैं अपने घोड़ों का खर्च डाका डाल कर नहीं चलाता हू किन्तु बडे २ नगरों के आयकर से चलाता हूं। बडे २ राजाओं ने अपना अहोभाग्य समझ कर अपनी कन्या मुझे समर्पित की है। जो कन्याए मेरी रानी बनी हैं वे भी अपने भाग्य की सराहना करती हैं कि मुझ जैसा पति उन्हें प्राप्त हुआ है। कई राजा ऋद्धि सम्पन्न होने पर भी रोगी रहते हैं अत. सुखानुभव नहीं कर सकते किन्तु मैं मनुष्य सम्बन्धी भोग भी बखूबी भोगता हू। कई राजा (गूमडा) के समान होते हैं। फोडेपर दवाई लगाई जाती है और मक्खियाँ उडाई जाती हैं उसी प्रकार उनका राज्यभिषेक करके चॅवर उडाये जाते हैं। उनकी आज्ञा का कोई पालन नहीं करता। किन्तु मेरी आज्ञा अखण्ड चलती है। किसी की क्या ताकत है कि मेरी आज्ञा न माने। मुझे आपने अनाथ कहा है, इस बात का अचरज तो है ही, साथ में आप जैसे निर्ग्रन्थ मुनि भी झूठ बोलते हैं, इस बात का भी बड़ा ताज्जुब है। जिस प्रकार पृथ्वी द्वारा आधार न देना, सूर्य द्वारा प्रकाश न करना, आश्चर्यजनक है उसी प्रकार मुनि द्वारा झूठ बोलना भी आश्चर्यजनक है। मुनियों के लिये मेरे दिल में यह धारणा है कि वे झूठ नही बोला करते किन्तु आप मुझे अनाथ कह कर सरासर झूठ बोल रहे हैं। मुनिवर ! आपको झूठ न बोलना चाहिए'।

राजा ने मुनि से कहा तो यह कि आप झूठ मत बोलिये किन्तु कितनी विवेक भरी वाणी में। 'मा हु भंते ! मुस वये' 'हे भगवान् ! झूठ मत बोलिए'। वाणी में विवेक की बड़ी जरूरत है। आदमीकी पहिचान उसकी बोलीसे होती है। इसके लिए एककथा प्रसिद्ध है।

राजा भोजके समय में एक अन्धा आदमी था। वह राजासे मिलना चाहता था किन्तु अपने अन्धेपन और फटे पुराने कपडों की बात सोचकर चुप रह जाताथा किन्तु उसे राजासे मिलने की अत्युत्कट इच्छा थी अतः रात दिन इसी फिराक में रहताथा कि राजा से भेट हो जाय। एक दिन उसने सुनाकि राजा भोज इसी रास्ते से निकलने वालाहै वह मार्ग में जाकर खडा हो गया। अंधे को रास्ते में खडा देखकर राजाके सिपाहीने उसे दूर खडा होने की बात कही। वह थोडा इधर उधर खिसक गया और वापस बीचरास्ते में खड़ा हो गया। जो जो सिपाही उसे हटने के लिए कहता उसके देखते हट जाता और उसके वहां

मे चले जाने पर अन्धा अपने स्थान पर आकर खड़ा हो जाता। ऐसा होते २ राजा स्वय आ गया और अन्धे को देखकर पूछा कि कहो अन्धराज! मार्ग में कैसे खडे हो? अन्धे ने कहा महाराज! आपकी मुलाकात के लिए खडा हू। राजाने पूछा कि क्या तुम्हें दिखाई देताहै जिससे तुमने मुझे पहिचान लिया। अन्धेने कहा, हजूर! जरा भी नहीं दिखाई देता। राजा ने पुनः प्रश्न किया, तब मुझे तुमने कैसे पहिचान लिया कि मैं ही राजा हू। अन्धेने कहा 'आपकी बोली से जान लिया कि आप ही राजा होंगे। आपके पहले अनेक सिपाहियों ने मुझसे रास्ते में से हट जाके लिए **'चल बे अन्धे रास्ते में से हट जा'** शब्द कहे थे किन्तु जब आपके मुख से **'अन्धराज'** शब्द सुना तो मैंने अन्दाजा लगा लिया कि ये राजा ही होंगे। बड़े आदमी बडे आदरवाची शब्दों का प्रयोग किया करते हैं। दूसरों के लिए किये गये शब्द प्रयोग से प्रयोग करने वाले के छोटे बडे दिल का पता लग जाता है। राजाने उसकी इच्छा पूरी करके उसे विदाई दे दी।

राजा भोजने अन्धे को अन्धा तो कहा मगर कितने विवेकभाव आदर के साथ कहा। यही बात श्रेणिक के लिए भी लागू होती है। झूठ बोलने से रोकने के लिए कितने आदर वाची सबोधन से सबोधन किया। कहावत है कि—**'वचने का दारिद्रता'** अगर देने को कुछ न हो तो मीठे शब्द बोलने में क्यों कमी रखते हो।

तुलसी मीठे वचन तें, सुख उपजे चहुं ओर।
वशीकरण एक मंत्र है, तज दे वचन कठोर॥

फारसी में भी कहा है—

बन के अजीज़ रहना प्यारी जबां दहन में।

हे प्यारी जीभ! अन्य कोई मित्र हो या न हो मगर तू यदि मेरा मित्र बनकर रही तो शेष लोग अपने आप ही मेरे मित्र बन जायगे।

आप लोग दूसरे लोगों को अपना मित्र बनाना चाहते हो मगर पहले अपनी जीह्वा को अपना मित्र बनाइये। उसे काबू में करिये। आपकी जीह्वा को अपना मित्र बनाइये। उसे काबू में करिये। कहीं आपकी जीह्वा आपके लिए दुश्मन का काम तो नहीं कर रही है इस बात का पूरा ध्यान रखिये। आप लोग साधुओं के व्याख्यान सुनते हैं फिर भी आपकी जबान से यदि जहर के समान बातें निकलें तो इस में आपका दोष है या हमारा? आपकी जीह्वा से अमृत क्यों नहीं निकलता। मान लीजिए, आप के किसी

पूर्वज ने स्वप्न में आपको यह बताया कि आपके घर में एक तरफ सोना और दूसरी तरफ कोयला गड़ा है। देवयोग से आपके हाथ में कुदाला भी आगया। आप सोने की तरफ खुदाई करेंगे या कोयले की तरफ? यदि कोयले की तरफ खुदाई करेंगे तो कोयला हाथ पडेगा और हाथ काले होंगे सो अधिकाई में। हाथ मुँह में लगेंगे सो मुख भी काला होगा। आप कहेंगें हम सोना कहां छोडने वाले है, हम इतने मूर्ख नहीं है जो सोने को छोड कर कोयले की तरफ नजर करें। बन्धुओं! यही बात मैं भी आप से कहना चाहता हू कि आप अपनी जबान से हित, मित और मनोहारी शब्दों का उच्चारण करके सोना निकालिये। अहितकारी और दु:ख पहुँचाने वाले शब्दों का उच्चारण करके कोयला निकाल कर अपना मुख काला मत करिये।

बहिनों को भी मेरी खास आग्रह पूर्वक सूचना है कि वे गन्दे और भद्दे शब्द अपनी पवित्र जबान से न निकालें। कई स्त्रियाँ अपने लडके को 'खोजगया' 'लक्कड में गया' आदि शब्दों से पुकारती हैं। यदि लडके का खोज चला गया या वह लक्कड में पहुँच गया तो तुम्हारा क्या हाल होगा, यह तो सोचो। यह सब अज्ञानता का चिह्न है। आप लोग साधुओं की सत्सग करती हैं फिर भी ऐसे वचन बोलती है, यह जानकर दुःख होता है। भोजने अंधे को अन्धराज कहा था अतः वह राजा माना गया किन्तु-टुच्चे सिपाहियों ने '**ओ बे अन्धे**' कहा था अत: सिपाही ही समझे गये। जिसके पास जैसी वस्तु होती है वह दूसरों को वही देगा अन्य वस्तु कहा से लायगा। एक कवि कहता है—

ददतु ददतु गालीर्गालिवन्तो भवन्तः,
वयमिह तदभावात् गालिदाने ऽसमर्थाः।
जगति विदितमेतद्दीयते विद्यमानं,
नहि शशक विषाणं कोऽपि कस्मै ददाति॥

अर्थ—आप हमें गाली दीजिये, क्योंकि आप गाली वाले है। हमारे पास गाली नहीं है अत: हम आपको गाली देने में असमर्थ है यह बात जगत् में विदित है कि जो वस्तु जिसके पास होती है दूसरों को वही वस्तु देता है। खरगोश का सींग कोई किसी को नहीं देता क्योंकि उसके होता ही नहीं है।

जापे जैसी वस्तु है वैसी दे दिखलाय।
वाको बुरा न मानिये वो लेन कहाँ से जाय॥

कोई मुझसे आकर कहे कि अमुक आदमी गालियां दे रहा था तुम बदले में गालियां क्यों नहीं देते तो मैं उस भाई से यही कहूंगा कि मेरे हितैषी दोस्त ! मैं गालियाँ देने में असमर्थ हूं मेरे दिमागरूपी खजाने में गालियों का स्टाक नहीं है। जो चीज मेरे पास नहीं है वह मैं कहा से और कैसे दूं ? कोई खरगोश से कहे कि तू तेरा सींग मुझे दे दे। वह बेचारा सींग कहा से दे ? उसके सींग प्रकृति ने पैदा ही नहीं किये। गधे से कहा जाय कि गाय जैसे सींग मारती है वैसे तू भी मारा करतो वह कहा से मारेगा ? जिसके मगज में गालिया या दुष्ट शब्द भरे पडे हैं वही अनुकूल संयोग मिलने पर अपना स्टाक खाली करता है किन्तु जिस सत्पुरुष के मन में बुराई का अंश भी नहीं है वह गालिया कहा से देगा ? मतलब कि जिसके संस्कार अच्छे हैं वे लोग वाणी पर नियन्त्रण रखते हैं।

आप लोग हमारी संगति करते हो फिर गालियां बोलो यह अच्छी बात नहीं है। बचपन से आप लोग साधुओं की सेवा करते हैं। आपने क्या कभी साधुओं के मुख से गाली सुनी है ? फिर आप कहासे सीख गये। साधुओंके संस्कार आपमें क्यों नहीं आपाये।

वाणी पर काबू रखने के विषय में पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज एक दृष्टान्त दिया करते थे। वह यह है। एक लखारा गदही पर चूड़िया लादकर हाट में ले जाया करता था। आजकल तो अनेक प्रकार की रबर और कांच की चूड़ियां चली है और इस प्रकार बहनों के हाथ भी विदेशी माल ने पकड रखे हैं किन्तु पहले जमाने में लाख की चूड़िया पहनती थीं। जब गदही धीरे चलती और हाट पहुँचने में देरी मालूम देती तब वह लखारा उसे जल्दी चलाने के लिए कहता 'चल मेरी मा, चल मेरी बहिन, चल मेरी काकी आदि' लखारे के ये संबोधन सुनकर राहगीर लोग हसने लगते। एक श्रोताने पूछा कि ओ लखारे! तुम गदही को मा बहिन और काकी कह कर कैसे पुकारते हो ? उसने खुलासा किया कि 'भाई ! यदि मैं गाली देकर गदही हांका करूं तो मुझे गाली देने की आदत हो जायगी। तुम जानते हो कि मेरा धंधा चूडिया पहनाने का है। चूडिया पहिनने के लिए स्त्रियां ही आया करती हैं। यदि मेरे मुख से मा बहिन आदि शब्द न निकल कर अन्य बेजा शब्द निकला करें तो आनेवाली स्त्रिया मेरे यहां आना छोड़ देंगी और इस प्रकार मैं बेरोजगार हो जाऊंगा।

बहुत से लोग गाय, घोडे, बैल, ऊंट आदि को हांकते वक्त बड़ी बुरी गालियां निकालते हैं। यह बात गालिया बोलने वालों की मूढ़ता सूचित करती है। पशु गालियों का अर्थ नहीं समझ सकते। बोलने वाले अपनी मुराद पूरी करते हैं। कभी से मन की

सस्कारिता प्रकट होती है अतः अच्छी वाणी बोलनी चाहिए। आप लोग श्रावक और व्यापारी हो अतः ध्यान रखो कि कहीं आपकी वाणीसे आपके श्रावकत्व और व्यापारीपन में धक्कातो नही लग रहा है।

श्रेणिक राजाने मुनि को झूठ न बोलने के लिए उपालभ तो दिया है मगर उपालम्भ देने के लिए जिस सभ्यता, नम्रता और विवेक का प्रयोग किया है उसपर खयाल कीजिए।

सुदर्शन चरित्र

रूप कला यौवन वय सरस्वी सत्य शील धर्मवान्।
सुर्दशन् और मनोरमा की जोडी जुड़ी महान् रे धन ॥ १७॥
श्रावक व्रत दोनो ने लीना पोषध और पचखान।
शुद्ध भाव से धर्म अराधे, अढलक देवे दान रे धन ॥ १८॥

सुर्दशन और मनोरमा का विवाह सपन्न हो चुका है। आज विवाह प्रथा को महज एक सामान्य वस्तु माना जाता है किन्तु विचार करने से ज्ञात होता है कि इसके पीछे गहरे तत्व छिपे हुए है। यह प्रथा भगवान ऋषभदेव ने चालू की है। मनुष्यों को मर्यादित और समाज में शान्ति रखने के लिए ही भगवान ने यह रिवाज दाखिल किया कि सब कोई अपना जोड़ा चुन ले और जीवन पर्यन्त उसके साथ अपना निर्वाह करे। सब से पहला विवाह स्वय भगवान ऋषभदेवने सुमगला के साथ करके यह परम्परा जारी की है।

यह बात समझने की है। विवाह करने का अधिकार किसको है और किसके साथ है? आजकल रुपयों का रुपयों के साथ विवाह होता है। रूप; शील और गुण में जो समान नही होते है उनको केवल धन देखकर जोड़ दिया जाता है। कुजोड या बेजोड विवाह करके प्रेम की कैसे आशा रखी जा सकती है। प्रेम की जड में पहले ही आग लगादी जाती है। पुरुष मन माने कार्य करने लगे और कहने लगे कि पुरुषों को सब कुछ करने का अधिकार है तो यह पुरुषों की ज्यादती है। पुरुषों ने ही लग्न की मर्यादा को भग किया है। शास्त्र कहता है कि जो मर्यादा का पालन करता है वह पुरुषोत्तम हैं। जो मर्यादा का लोप करता है वह अधम पुरुष है विवाह में योग्य जोड़ा होना चाहिए। आजकल तो [illegible] जाता है कि 'लाकडा में माकडा जोडना है, कारीगर जैसे चाहे जोडदे'।

वर और कन्याओं का विवाह जोडने के लिए रुपयों की मांग करना कितना भद्दा और अनुचित रिवाज है यह लग्न है या विक्रय चाहे विलायत जाने के नाम पर चाहे पढाई के नाम पर, रुपये मागना वर विक्रय ही गिना जायगा। क्या जाति वाले इन बातों पर प्रतिबन्ध नही लगा सकते। लडकी वाला खुश होकर अपनी कन्या को कुछ भी दे यह बात दूसरी है मगर पहले से ही सौदा तै करना, बुरी बात है। इस प्रकार के सौदे में सतान के प्रति करुणा बुद्धि नहीं रह पाती। मुख्य बात लेन देन हो जाती है। रूप गुण और शील आदि गौण बन जाते हैं। भगवान् ने दूसरे व्रत में 'कन्नालिए' अर्थात् कन्या सम्बन्धी झूठ बोलने का निषेध किया है। इस में पुरुषों को पहले क्यों नहीं लिया, स्त्रियों को क्यों लिया गया! इसका कारण यह है कि नारी जाति माता का रूप लेती है। उसका आदर होना चाहिए।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

जहा नारियों का आदर सत्कार होता है वहा देवता रमण करते हैं। लक्ष्मी वहीं रहती है और वहीं आनन्द भी।

सुदर्शन और मनोरमा का विवाह हो गया है। विवाह इस लिए होता है कि जो काम स्त्री या पुरुष अकले नहीं कर सकते वह दोनों मिलकर करें। कोई भाई यह पूछे कि ऐसा कौनसा काम है जो स्त्री या पुरुष अकेले नहीं कर सकते तो उसके लिए दृष्टान्त के रूप में सब से प्रथम काम प्रश्नकर्त्ता की उत्पत्ति का ही रखता हू। क्या प्रश्न करने वाला भाई अकेली स्त्री या अकेले पुरुष से उत्पन्न हुआ है? कदापि नही। जगत् की भावी पीढी का निर्माण स्त्री पुरुष के जोडे से ही होता है। प्रकृति ने बडी खूबी के साथ स्त्री पुरुष को जोडा है। स्त्री और पुरुष एक दूसरे के पूरक है। दोनों मिलकर ही ससार चला सकते है।

यदि स्त्री और पुरुष के स्वभाव में मेल न हो तो घर जजाल बन जाता है। एक पुरुष बडा उदार है। किसी को अपने घर पर भोजन कराने के लिए ले आया है। यदि स्त्री भी उदार और सेवा भावी हो तब तो ठीक है नहीं तो वह कर्कशा नारी दूसरे पुरुष को देखते ही कहने लगेगी कि मैं क्या तुम्हारी दासी हू जो तुम्हारे अालतू फालतू लोगों के लिए रोटियाँ बनाती रहू ऐसे पुरुष को अपने दोस्तों या दया पात्र लोगों के लिए बाजार ही में व्यवस्था करनी पड़ेगी। बहुत सी स्त्रिया इतनी भली होती हैं कि उन्हें दूसरों को खिलाने में विशेष आनन्द आता है। इसी प्रकार स्त्री अच्छी हो और पुरुष खबीस हो तो भी काम नहीं चलता।

जैन रामायण में इस विषय की एक कथा है। राम लक्ष्मण और सीता वन में जा रहे थे। सीता ने लक्ष्मण से कहा कि लक्ष्मण मेरा मुँह कैसा हो रहा है, देखते हो। लक्ष्मण ने कहा जीहां देखता हू आप को प्यास लग रही है। इतने में एक घर दिखाई दिया। राम ने कहा, यहां तलाश करो, पानी मिल जायगा। तीनों उस घर में गये। यह घर ब्राह्मण का था। उस समय ब्राह्मण कहीं बाहर गया हुआ था। ब्राह्मणी घर में थी। वह तीनों को देख कर बड़ी प्रसन्न हुई। उसे इतना आनन्द मानों घर में देवता आगये हों ब्राह्मणीने एक चटाई डालदी और बैठनेके लिए प्रार्थनाकी। मीठी बातोंसे ही ब्राह्मणीने उनकी प्यास बुझादी। फिर ठडा जल भर कर लाई और सब को पिला दिया। सब बातें कर रहे थे कि इतने में ब्राह्मण देवता बाहर से घर आ गये। तीनों को देखकर ब्राह्मण बहुत क्रुद्ध हुआ। तीनों के कपड़े धूल में भरे हुए थे ही। उसने सोचा न मालूम ये कौन हैं। ब्राह्मणी से कहने लगा 'न मालूम किन किन को घर में बुलाकर बैठा लेती है। मैं अनेक बार हिदायत कर चुका हूँ मगर तू ध्यान नहीं देती। आज इसके लिए मैं तुझे दण्ड दूंगा' यह कहकर ब्राह्मण चूल्हे में से जलती हुई लकड़ी लाया और उससे ब्राह्मणी को जलाने लगा। ब्राह्मणी सीता के पीछे पीछे छिपने लगी और बचाव के लिए प्रार्थना करने लगी। रामचन्द्र ने ब्राह्मण से कहा कि भाई यह क्या करता है। मगर वह लातों का आदमी बातों से कैसे मान सकता था। जब वह न माना और ब्राह्मणी को जलाने के लिए भागता ही रहा तब लक्ष्मण की आंखें लाल हो गई और उन्होंने उसकी टांग पकड़ कर आकाश में फेंक दिया। राम कहने लगे, लक्ष्मण! यह ठीक नहीं किया। हम लोगों ने इस के घर आकर सत्कार पाया है और पानी पिया है। लक्ष्मण ने कहा, फेंक दिया है मगर वापस सभाल लूंगा, मरने न दूगा। ज्योंही वह ब्राह्मण नीचे गिरा लक्ष्मण ने झेल लिया। उनकी शक्ति देखकर ब्राह्मण का दिमाग ठडा हुआ।

कहने का भावार्थ यह है कि स्त्री भली हो और पुरुष नीच होतो भी काम नहीं चलता। राम जैसों का भी उस घर में अपमान हो जाता है। अतः विवाह में जोडी समान स्वभाव और गुणवाली होनी चाहिए। किन्तु पैसे के लोभी दलाल लोग जोडी नहीं देखते। वे तो अपनी दलाली सीधी करने के लिए मनमानी झूठी सच्ची बातें भिड़ाकर काम को पार लगा देते हैं। फिर बींद जानों या बींदनी। पूज्यश्री श्रीलालजी म० एक गांव में पधारे थे, जहा एक बूढा शादी करना चाहता था। पूज्यश्री ने उस बूढ़े को समझाकर शादी न करने की प्रतिज्ञा दिलादी। इस बात से दलाल लोग बहुत नाराज हुए और कहने लगे कि महाराज हमारी चालीस पचास हजार की रोजी पर आपने लात मार